



वक्तव्य ।

15

कथानुयोग के द्वारा लोकमें ज्ञान, उपदेश और शिक्षा का प्रचार करने की बहुत पुरानी परिपाटी है। इसी 'लिये अपने जैनाचार्यों ने कथानुयोगकी बहुतैरी पुस्तकें रच डाली हैं, जिनसे मनुष्य-समाजको सदा आशातीत लाभ पहुँचता रहा है। इस तरह के ग्रन्थोंमें सबसे बढ़कर खूबी यही है, कि इनसे विद्वान्से लेकर मूर्ख तक सभी समान भावसे लाभ उठा सकते हैं। वास्तवमें प्राचीन पुरुषोंके अद्भुत, अनुकरणीय और आदर्श चरित्रोंका पाठ करनेसे मनुष्य को विशेष लाभ होता हो है। दूसरे, कथा-कहानी सुननेमें सबका मनभी—खूब लगता है।

कोई कठिन विषयका ग्रन्थ देखतेही साधारण मनुष्योंका जी ऊब उठता है और वे कुछ ही अंश पढ़ या सुनकर भागनेकी राह देखने लगते हैं; परन्तु कथा-कहानी सुनने या पढ़नेमें इतना जी लगता है, कि आदमी खाना-पीना भूलकर उसे पढ़ता-सुनता है। मनुष्य-स्वभावकी इसी विशेषताको ध्यानमें रखकर अपने आचार्यों ने इस तरहके अनेक उप-देश प्रद ग्रन्थोंकी रचना की है।

वर्तमान ग्रन्थभी उसी ढंगका है। इस ग्रन्थमें छ प्रस्ताव दीये गये हैं। पहले प्रस्तावमें श्रीशान्तिनाथ स्वामीके पहले, दूसरे, और तीसरे भवका वर्ण आता है। दूसरे प्रस्तावमें चौथे और पाँचवें भवका वर्णन आता है। तीसरे प्रस्तावमें छठे और सातवें भवका वर्णन आता है। चौथे प्रस्तावमें आठवें और नवें भवका वर्णन आता है।

पाँचवें प्रस्तावमें 'सगरे' और 'स्यारहवें' मरका वर्णन आता है। और छठे प्रस्तावमें 'बारहवें' मरका वर्णन आता है। इस तरह भगवान् के बारह मरोंका सुविस्तृत वर्णन बड़ीही उत्तम रीतिमें दिया गया है।

इस शक्तिके आदिके दोन प्रस्तावोंमें, ईशान-कालशकी कथा, प्रत्योदरकी, मित्रानन्द भमरदलकी, पुण्यमारकी, और वत्सराजकी दो-दोनों कथायें बड़ीही मनोरञ्जक एवं शिक्षा प्रद है। और इनका विस्तार भी लंबा आता है। इनके अनिष्टिक और भी छोटी-मोटी रोचक कथायें आती हैं। छठे प्रस्तावमें तो कथाओंका सृजाना सर दिया गया है। छोटी मोटी बहुवर्णी कथायें आती हैं। प्रत्येक कथा कठोरार्थे भरी हुई है, पाठकोंमें हम अनुगोच करने हैं, कि उन्हें ध्यान देकर समझ लें।

आचार्य कृष्ण-वतिना—मरने लिये हम पुनर्जन्म अनुभव उपदेश में हुए हैं। इसका पाठ करने, हमके उपदेशोंको हृदयङ्गम करने और हमके भावों कर्तव्योंका अनुसरण करनेसे अनुग्रहका जीवन उन्नत, वैविध और अनुकरणीय हो जा सकता है। छोटे-बड़े, ली पुण्यमयी के लिये यह प्रथम अनिवार्य उपदेशावली है। इसी लिये विस्तृत अर्थ कर इनका सुन्दरताके साथ हमने इसे प्रकाशित किया है।

हम प्रत्येक पढ़ते हजारी छ पुस्तकें साथ सप्तर्षिके समस्त भेद हो चुकी है। आज यह सप्तर्षी पुस्तक भी आगे कर-कर्मलोंमें समावेश की जाती है। आज है, पढ़नेकी पुस्तकोंके अनुसार हमें भी सप्रेम करना कर हमारे उन्मुखको परिवर्तन करेंगे। हम प्रत्येक किसी किसी विषय के माध्यम से प्राप्त हो गया है, एवं शीघ्रताके कारण हमने ही जो अनेक अर्थ पर अनुसंधान रह गई है, उसके लिये पाठकों में हजारी छमा पानेवा है।

मार्च २३-६ १९२५

१९१६ ईस्वी, श्री

बनारस

भारत

मार्च २३-६ १९२५



संक्रमित निवास संन्यास
बाद संन्यास की हाकिम नेटवर्क
हाल बलकटा ।

शान्तिनाथ चरित्र



बाकानेर निवासी धर्मान् माननीय
 बाबू भस्मेदानजी हाकिम कोटारी
 हाल कलकत्ता ।

पैसेही बिरले सज्जनोमें कलकत्तेके सुप्रसिद्ध, व्यापारी मोसवाल कुल-भूषण श्रीमान् बाबू भैरोदानजी कोठारी भी हैं। यद्यपि आप बीकानेरके रहने वाले हैं, तथापि—आपका जन्म संवत् १९१८ वैशाख कृष्णा २ शनिवार को गुजरातके समीप दाहोद नामक स्थानमें हुआ था। आपके पिता वहीं पर कपड़े आदिका कार-बार करते थे, उनका शुभ नाम श्रीमान् रावतमलजी था।

आपकी अवस्था जिस समय केवल छ वर्षकी थी, उसी समय आपकी माताजीका परलोकपास हो गया था। इसलिये आपके पालन-पोषणका सारा भार आपके पिताजी पर ही आ पड़ा। आपके एक सुशीला बहिन भी हैं, जिनका शुभ नाम ज़ेदार कुंवर है।

दाहोदमें ही आपकी शिक्षा हुई। उसके बाद आप व्यापारकी ओर झुके। संवत् १९५५ की सालमें आप कलकत्ता पधारे। यहाँपर आपने पहले-पहल १० रुपये की नौकरी पर काम करना आरंभ किया। इसके बाद आपने बिलायती कपड़ेका व्यापार करना शुरू किया। पर इस काममें आप पूरी तरह सफल न हुए। फिर इसके बाद आपने सन् १९६४ की सालसे स्वदेशी कपड़ेकी दुलालीका काम करना आरंभ किया। इस कार्यमें आपने उत्तरोत्तर उन्नति की और एक बड़े नामी-गरामी व्यापारीमें आपकी गणना हो गई।

इस बीचमें संवत् १९५६ के वर्षमें आपका शुभ विवाह हुआ आपकी धर्मपत्नी बड़ीही सुशीला, सुशिक्षिता, धर्मपरायणा, पतिप्रिया और शास्त्रस्वभावा है। धार्मिक शिक्षाका ज्ञानभी यथेष्ट प्राप्त किया है और अपना प्रायः अधिक समय ज्ञान-ध्यान एवं धार्मिक क्रियामें ही व्यतीत करती हैं। उनके धर्म-कार्यमें आप सदैव साथ दिया करते हैं। अभी कुछ वर्षोंके पहलेकी बात है, आपकी धर्मपत्नीने नक्षत्र ओलीका बड़ा तप किया था। उसकी समाप्तीके उपलक्ष्यमें आपने एक बड़ा भारी उद्यापन (उद्घमणा) किया, जिसमें अतुल्य धन-श्रम कर आप अपूर्व पुण्यके भागी बने।

बाबू भैरूदानजी

हाकिम कोठारा

सिद्धि लोचन मरिच

किसी बिमारे कोकरी कहते हैं कि—

मरेकौं मरेकौं मरेकौं, दुःख कोय न जायते ।

न मरते मरे जायते, मरे जाते मरनायते ।

इस लोचन, जिसके रंग लाल रहते रहते हैं, जिसमें बहुत-सा
गंधरुपोंके दूध दूधेवाले लगते हैं। पैदा होकर और मर जाकर
किसका होता है। उसमें सबका जन्म मरण करता होता है,
जिसके द्वारा मरने जातेके कुछ भलाई हो, मरने मरणका सौदा हो,
मरने हुलका बन्ध लंबा हो, बाहे हो इस लोचनके रोखते हुमाते
लाखों पैदा होते और मरते रहते हैं। उनको मरे मरे मरण होता
है। और इस जातेके उद्वार करते जातेका बन्ध मर उद्वार मरे
इस लोचनके मरेमर कर दिखाने रहता है। इनके मर-मरे मरने
कते दुःख काता है, न मरने मरण करतें हैं। वे मरने, मरे
मरने मरने होते रहते हैं। ऐसे मरने मरे मरनेका नाम लोचन
है, मरे मरने लोचन कहते हैं।

परम श्रद्धेय श्रीमान् नान्दनीय

बाबू भैरूदानजी

हाकिम कोठारी

संक्षिप्त जीवन-परिचय

किसी विद्वान्ने ठीकही कहा है, कि—

परिवर्तिनि संशारे, नृतः क्षोवा न जायते !

स जातो येन जातेन, याति जातिः समुन्नतिन् ॥

इस संसारमें, जिसके रंग नित्य पलटते रहते हैं, जिसमें मनुष्यका जीवन पानीके बुल बुलकेही समान है। पैदा होना और मर जाना नित्यका खेलता है। उसमें उर्तीका जल प्रदूष करना ठीक है, जिसके द्वारा अपनी जातिकी कुछ मलाई हो, अपने वंशका गौरव हो, अपने कुलका नाम ऊँचा हो, नहीं तो इस संसारमें रोझही हज़ारों लाखों पैदा होते और मरते रहते हैं। उनकी ओर कौन ध्यान देता है। और इन जातिके उपकार करने वालोंका नाम मर जानेपर भी इस संसारके परदेपर सदा विराजमान रहता है। उनके दश-रूपी शरीर को नवो युद्धापा जाता है, न मृत्यु प्राप्त करती है। वे अपनी कीर्ति के द्वारा बनर हो जाते हैं। ऐसे बनर कीर्ति सत्पुरुषोंका नम्र सभी लोग यही धर्मके साथ लिया करते हैं।

पेसेही विरले सज्जनोंमें कलकत्तेके सुप्रसिद्ध, व्यापारी मोसवाल-कुल-भूषण श्रीमान् बाबू मैतोंदाजी कोठारी भी हैं। यद्यपि आप बीकानेरके रहने वाले हैं, तथापि—आपका जन्म संवत् १९३८ वैशाख कृष्ण २ शनिवार को गुजरातके समीप दाहोद नामक स्थानमें हुआ था। आपके पिता वही पर कपड़े बाढ़िका कार-बार करते थे, उनका शुभ नाम श्रीमान् रायतमलजी था।

आपकी व्यवस्था जिस समय केवल छ वर्षकी थी, उसी समय आपकी माताजीका परलोकवास हो गया था। इसलिये आपके पालन-पोषणका सारा भार आपके पिताजी पर ही आ पड़ा। आपके एक सुतीला बहिन भी हैं, जिनका शुभ नाम सुभार कुँवर है।

दाहोदमें ही आपकी शिक्षा हुई। उसके बाद आप व्यापारकी ओर झुके। संवत् १९५५ की सालमें आप कलकत्ता पधारे। यहाँपर आपने पहले-पहल १० रुपये की नौकरी पर काम करना आरंभ किया। इसके बाद आपने गिर्याही कापड़ेका व्यापार करना शुरू किया। पर इस काममें आप पूरी तरह सफल न हुए। फिर इसके बाद आपने सन् १९६४ की सालसे स्वदेशी कापड़ेकी दुकानोंका काम करना आरंभ किया। इस कार्यमें आपने उत्तरोत्तर उन्नति की और एक बड़े मन्नी-गरामी व्यापारीमें आपकी गणना हो गई।

इस बीचमें संवत् १९५९ के वर्षमें आपका शुभ विवाह हुआ आपकी धर्मपत्नी बड़ीही सुशीला, सुशिक्षिता, धर्मपरायणा, परिश्रमा और शक्तस्वभावा है। धार्मिक शिक्षाका ज्ञानभी विशेष प्राप्त किया है और अस्या प्रायः अधिक समय ज्ञान-ध्यान एवं धार्मिक क्रियामें ही व्यतीत करती है। उनके धर्म-कार्यमें आप सर्वत्र साथ दिया करते हैं। अभी कुछ वर्षोंके पहलेकी बात है, आपकी धर्मपत्नीने मन्मथ मोदीका बड़ा लाल किया था। उसकी माताजीके कष्टमें आपने बच बड़ा भारी उपायन (उद्धारणा) किया, जिसमें बहुत धन-व्यय कर भोग भोग्य पुण्यके प्राप्ति बने।

‘उद्यापनका मण्डप बीकानेरके बड़े उपाश्रयमें सजाया गया था। मण्डपकी सजावट अत्यन्त रमणीय एवं दर्शनीय थी। जो सज्जन सजावटकी ओर निहारता वही आश्चर्य-चकित हो जाता था। उसकी मनोभाषना अत्यन्त निर्मल बन जाती थी, उसके विचार में विकास हो जाता था। जो सज्जन एक बार दर्शन कर लेता, वह प्रति-दिन भाये बिना नहीं रहता था। इस तरहको मण्डप-रचना बीकानेरमें शायद ही किसी समय हुई होगी। हम ऊपर लिख भाये हैं कि, श्रीमान्ने अपने न्यायोपाजित धनको स्वर्धकर माना प्रकारकी सोने-चाँदीकी उत्तमोत्तम चीज़ें बनवायीं, ये सब चीज़ें इस परम रमणीय शोभायमान मण्डपमें स्थापित की गईं।

महार्क महोत्सव आरंभ होनेके पहले आपने कलकत्ता एवं अनेक शहरोंके सज्जनोंको आमन्त्रण भेजा था। अतएव सब जगहके बड़े-बड़े धनी लोग इस सुभयसर पर पधारने लगे। उनके आतिथ्य-सत्कारके लिये आपने बड़ाही सुप्रबन्ध किया था। जिनने सज्जन भाये हुए थे उन सबकी सुधुपाकेलिये आप हरसमय उपस्थित रह कर रहे थे। “सेवा करना परम धर्म है” इस मन्त्रको आपने बालावस्थासेही सोच लिया था। आपने इस बातका भी ज्ञान कर लिया था कि, फिर ऐसा सु-भयसर स्वामी भाइयोंकी सेवा का कब मिलेगा ? इसलिये आप अत्यन्त हयान्वित होकर तन मन और धनसे स्वामी भाइयोंकी सेवा करते थे। आपके इस मसाधारण आतिथ्य-सत्कार को देखकर भाये हुए सर्व सज्जनोंको अपार आनन्द होता था।

प्रिय पाठको ! आनित्य-सत्कार महज़ मामूली काम नहीं। इस कामके करनेवाले दिरलेही सज्जन होते हैं। लाखों करोड़ों रुपये पासमें होने पर भी इस कामको करनेमें असमर्थ रहते हैं शास्त्रकारोंने भी सर्व गुणोंमें इसी गुणको प्रधान बतलाया है। कहा भी है, कि “सर्वस्याम्यागतो गुरु” अर्थात् अतिथी-महिमान सब किसीको पूजनीय होता है। अतएव सौ काम छोड़कर भी अतिथीका

होते थे । जिस सवारोके सजावटमें हजारों रुपैया खर्च किया गया हो वह सवारी मला कैसे दर्शनीय न होगी ?

इसके अतिरिक्त इस सुप्रवसर पर तीनों समुदायके सज्जनोंने सम्मिलित हो कर बड़ेही आनन्द मंगल पूर्वक जल यात्रा एवं स्वामीवत्सल का उत्सव मनाया ।

आपने संसारमें अच्छा धन, मान और वैभव प्राप्त किया । बचपनसे ही आपके हृदयमें धार्मिक भावना, लोकोपकारी प्रवृत्ति और जाति हितकी सालसरा बनी रहती थी । अवस्थाके साथ-ही-साथ आपके ये गुणभी बढ़ते गये । धार्मिकता, सच्चरित्रता, उदारता, और जाती हितैषिता ही आपके जीवनके प्रधान गुण हैं । इन्हीं गुणोंने आपके जीवनको अनुकरणीय बना दिया है ।

आपके इन बलौकिक गुणोंकी ओर आकर्षित होकर व्यापारी समाज एवं जातीय सज्जन आपका बड़ाही आदर-सम्मान करते हैं । आप न्यायमार्गके पूर्ण पक्षपाती हैं । आपकी व्यवहार दक्षता एवं न्याय प्रियता अतीव प्रशंसनीय एवं अनुकरणीय है । आप स्पष्टवक्ता एवं मिष्टभाषी हैं । अतएव जनतामें आपका बड़ाभारी प्रभाव पड़ता है ।

आपका धर्म-प्रेम, जाती-प्रेम, समाज-प्रेम, और देश प्रेम परम प्रशंसनीय है । आपका सारा वैभव आपके अपने धातुबलका उपार्जन किया हुआ है, इसलिये आप स्वनाम धन्य पुण्य हैं । आपके अध्य-यसाय, साहस, धैर्य आदि गुण सबके अदर्श होने योग्य हैं । आपकी दान शीलताकी जहाँतक प्रशंसा की जाये कम है । आप योंतो सदैव गुप्तदान करते रहते हैं, और अनेक मनायों, निराधार और निःसहा-योंको सहायता पहुँचाते ही रहते हैं । तथापि आपके दान और भोदार्यके बहुतसे ऐसे उज्ज्वल उदाहरण भी हैं, जो आपकी कीर्ति-को चिरस्मर्य बनाये रहेंगे ।

आपने निम्न लिखित संस्थाओंको आर्थिक सहायता प्रदान की है, और नियमित मासिक सहायता भी दिया करते हैं । बीकानेर जैन

पाठशालाको ५१०० रुपये, कलकत्ता जैन श्वेताम्बर-मित्र-मण्डल-विद्या-लयको ३१०० रुपये। पूना भण्डारकर पुस्तकालयको १००० रुपये और ओसियां जैन बोर्डिंग-विद्यालयको भी आप यथासमय सहायता दिया करते हैं। इस तरह आप अपने परिश्रमोपार्जित धनका सदा सदुपयोग भी खूब किया करते हैं।

आपने अभी कलकत्तामें दादाजीके मन्दिरमें मार्बल पत्थरकी स्मृतीय फरश भी बनवाई है जिसमें अन्धाजन डेढ़ हजार रुपये लगाया है। इसके सिवा ज्ञान-प्रचार के काममें भी आप यथा समय धन व्यय कर पुस्तकें छपवाकर वित्तिर्ण किया करते हैं।

प्रायः देखा जाता है, कि लोग धन और धैर्य पा कर अभिमानमें मग्न हो जाते हैं, अपने सामने दूसरेको तुच्छ समझते हैं, परन्तु आपमें अभिमान तो नाम मात्रको भी नहीं है। आप बड़े ही विनयी हैं, और धर्मका भाव आपके हृदयमें सोलह आने भरा रहता है। आज तक आपने अनेक धार्मिक कार्योंमें बड़े उत्साहसे दान दिया है, और शिक्षा-प्रचारके लिये भी मुक्त हस्तसे दान करते रहते हैं। आपकी इस दान शीलतासे बहुतसे दीन-दुःस्त्रियोंका उपकार हुआ है। और कितनोंको नीचेसे ऊपर चढ़ाया है, शासन देव आपकी दीर्घ जीवो करें और आपके चित्तमें सदैव धर्मकी प्रभावना उत्तरोत्तर बढ़ती रहे, यही हमारी आन्तरीक अभिलाषा है।

श्रीमान्का सम्पूर्ण जीवन-चरित्र बड़ा ही शिक्षाप्रद एवं आदर्श है। हमारी इच्छा थी कि इस पुस्तक में आपका सारा जीवन-चरित्र प्रकाशित कर दिया जाय; पर हमें आपके सम्पूर्ण जीवन-चरित्र की यथेष्ट सामग्री न मिली। इसके लिये श्रीमान् से हमने अनेक बार निवेदन किया; पर श्रीमान्ने जीवन चरित्र देना ही नापसन्द कर दिया अतएव हम निराश हो गये; किन्तु आरंभ से ही हमने निश्चय कर लिया था कि इस पुस्तक में आपका ही जीवन-चरित्र एवं चित्र देना चाहिये। अतएव हमने पुनः साहस कर श्रीमान् से सामग्रि निवेदन

किया, इसपर आपने केवल चित्र देना ही स्वीकार किया और जीवन चरित्रके विषय में सर्वथा निषेध कर दिया ।

चित्रके साथ-साथ आपके आदर्श जीवन-परिचयको भी दे देना अधिक उपयुक्त प्रतीत हुआ । अतएव हमने आपके जीवन घटनाओंका विवरण जाननेके लिये अपने दो चार मित्रोंसे कहा सुनी करी । एक दो मित्रोंने आपको जीवनोका परिचय भी दिया, पर उससे हमें पूर्ण सन्तोष लाभ न हुआ । हमने बाद हमने अपने परम प्रिय मित्र बाबू अमरचंद्रजी वरु-तरीसे इसके लिये निवेदन किया । उन्होंने कतिपय उल्लेखनीय बातें मालूम कीं । इस तरह हमने इधर उधरसे आपके जीवन घटनाओंका विवरण जानकर इस जीवन परिचयको लिखा है, इस लिये संभव है, कि इसके लिखने में त्रुटि रह गई हो । अतएव हमारी क्षमा माचना है ।

इसमें हम अपने प्रिय मित्र साहित्य में भी बाबू अमरचंद्रजी वरु-तरीको महर्षि धन्यवाद देने हैं । जिन्होंने आपके जीवन-परिचयके सम्बन्धमें कुछ बातें मालूम कर हमें पूर्ण अनुमति दी ।

२०१ हरिमन रोड,
बम्बई ।

{

आपका
काशीनाथ जैन

श्रीशान्तिनाथ-चरित्र

श्रीशान्तिनाथाय नमः

प्रथम प्रस्ताव

प्रतिश्रव्यार्हतः सदा नमः, धामदुर्गो नमःगुरुनमः ।

महदभ्येन दद्यामि, श्रीशान्तिनाथचरित्रं मुदा ॥१॥

श्रीशान्तिनाथचरित्रं, महादभ्येन दद्यामि, धामदुर्गो नमःगुरुनमः के प्रस्ताव
का, के दहे दहे के माह दहे नमः श्रीशान्तिनाथचरित्र के प्रस्ताव
दद्यामि ॥१॥

मो महादभ्येन दद्यामि, धामदुर्गो नमःगुरुनमः के प्रस्ताव
का, के दहे दहे के माह दहे नमः श्रीशान्तिनाथचरित्र के प्रस्ताव
दद्यामि ॥१॥

मो महादभ्येन दद्यामि, धामदुर्गो नमःगुरुनमः के प्रस्ताव
का, के दहे दहे के माह दहे नमः श्रीशान्तिनाथचरित्र के प्रस्ताव
दद्यामि ॥१॥

जिनेश्वरों को भी समकित प्रासिके समय से ही। सबकी संख्या मानी जाती है। इस प्रकार भी शान्तिनाथ जिनेश्वर के बारह भव हुए हैं। उनमें से पहले भव की कथा इस प्रकार है:—

इस जम्बूद्वीप के भरत-क्षेत्र में अनन्त रत्नों की खान के समूह श्रीरत्नपुर नामका एक नगर था। उसमें श्रीपेण नामके एक राजा रहते थे। वे व्याप धर्म में निपुण, परोपकार करने में तत्पर, प्रजा का पालन करने में चतुर, शत्रु-हारी वृत्तों को उन्माद फेकनेमें हस्ती के समान और औदार्य, धैर्य, सामर्थ्य आदि गुणोंके आधार थे। उनके हाथे धर्म की अधिकारिणी और हीन स्त्री अशक्तार में भूमि हो शिवों थीं। पहली का नाम अभिनन्दिता और दूसरी का नाम सिंहनन्दिता था। एक समय की बात है, कि पहली रानी जन्म-खान कर, राज के समय अपनी छत्र चर्या पर सो रही थी। इसी समय उसने स्वप्न देखा कि, किरणों में भोमिन मूय और चन्द्रमा, अश्वधार को गुर करने हुए, उसकी गोद में बैठे हुए हैं। वह देखने लगी रानी की गोद दृढ़ गर्वी उठने अपने मनमें कहा एवं माना। इसके बाद वह आप ही आप विचार करने लगी,—“शासकों ने कहा है, कि शुभ स्वप्न देखकर किसी ने कहना नहीं चाहिये और फिर सोना भी नहीं चाहिये।” इतना सोच-विचार कर वह रात भर जगी ही रही। सोचा होने ही उसने अपने इस स्वप्नकी बात अपने स्वामी ने कही। वह उस, राजा ने अपनी बुद्धि और साध की वृद्धि विचार कर इस स्वप्न का कब अपनी पत्नी को इस प्रकार प्रसन्नता भर वक्तों में कह सुनाया। “हे देवी! इस स्वप्न के प्रभाव से मुझारे दो पुत्र होंगे जो पृथ्वी भरमें प्रसिद्ध और कृष्ण का नाम कैसा करने वाले होंगे।” वह इस रानी बड़ी हर्षित हुई। इसके बाद ही वह गर्भवती हुई और उसके मुँह पर सोमा बरसने लगी। गर्भका समय पूरा होने पर छन्दर लग्न-नक्षत्र में उसके दो पुत्र उत्पन्न हुए। पिता ने दस दिनों तक बड़ी भूमिधाम में महोत्सव मनाया। इसके बाद उन्होंने एक का नाम इन्दुपेण और दूसरे का दिन्दुपेण रक्खा। अर्धमासि अभिन-वासि होजे हुए वे दोनों राजकुमार बड़े होते गये। जन्म, वे आठ वर्ष के हुए। अब राजाने उन्हें कलापाय के पास निज निमित्त भेज दिया। वहाँ उन्होंने सब कलाओं को सिखा पायी। भद्र-भद्र वे पुत्र हो गये।

उन दिनों मगध क्षेत्र में प्रसन्न नामक प्रहस्य भव्य नामका एक ग्राम था, शिव-देव और वेणोमि निपुण ‘परनिष्ठ’ नामक एक साधक रहता था। उन्हीं वर्षों का नाम यशोमती था, जिसका गर्भमें उसके दो पुत्र उत्पन्न हुए

एक दिन रातको देवकुशमें भाटक देखने गया । वहाँ नाटक और संगीतका आनन्द लेने हुए बड़ी रात बीत गयी । नाटक समाप्त होने पर सब लोग अपने-अपने घर चले गये । कपिल भी अपने घर की तरफ चला । रात्रिका समय था, तिमिर बाज़लोंके मारे और भी गहरी अँधियारी छाई हुई थी और पानी बरस रहा था । इसी लिये रास्तेमें कोई आना-जाना नहीं नज़र आता था । कपिलने सोचा— मैं स्वयं ही अपने वस्त्रको क्यों भिगाऊँ ! रास्तेमें तो कोई आदमी अपना-फिरता नहीं दिखाई देता ! यही सोचकर उसने अपने सारे कपड़े उतार कर उनकी पोछनी बौध ली और उसे कौश लगे दबाये गंगा ही अपने घर पहुँचा । द्वार पर आते ही उसने अपने कपड़े पहन लिये और तब उसके अन्दर घुसा । उसकी मित्र मूढ पट उसके अन्दरमे अन्य सूत्रे बन्ध लाकर बोली “प्राणेश” ! अपने भीगे कपड़े उतार डालो और इन सूत्रे बन्धोंको पहन लो ।” यह सुन, कपिलने कहा,—“प्रिये ! मन्त्रके प्रभावसे इस वरमातमें भी मेरे कपड़े नहीं भीगने पाये । यदि तुम्हें मन्देह हो तो देखकर परीक्षा कर लो ।” यह सुन, वह बड़े आश्चर्यमें पड़ी और हाथ बढ़ाकर कपड़ोंकी परीक्षा कर, उन्हें सूखा देख, मनही मन अचम्भित हो ही रही थी, इसी समय बिजली चमक उठी । उसके उँजियामे मैं यह देख कर कि, उसकी देह तो पानीसे तर है, वह सूख-बुद्धिवाली सत्यभामा मनमें विचार करने लगी,— “अब समझी ! वह वर्षाके भयसे बन्धोंको दिखाये हुए रास्ते भर गंगा ही आया है और अब मुझसे स्वयं की रिंग होक रहा है । भला यह हरकत कहीं भवेमानसोंकी हो सकती है ? यह कदापि कुलीन नहीं है । इसके साथ गृह-धर्मका पालन करना विद्वम्बना मात्र है । ऐसा विचार मनमें उत्पन्न होते ही कपिल पर उसका अनुराग कम हो गया । ईं, भोक-दिवाले के लिये वह गृहस्थीके काम-धन्धोंको सराकी तरह करती रही ।

इसी समय कपिलका पिता, जो ब्राह्मण और बड़ा भारी पंडित था, कमलेश्वर, समय के फेरसे, निर्धन हो गया । उसने जब सुना, कि उसका कपिल नामक पुत्र रत्नपुरमें जाकर बड़ा वैभवशाली और भोक समाजमें माननीय हो रहा है, तब वह धनकी इच्छामे रत्नपुर आ पहुँचा और कपिलके घरपर आतिथिकी भाँति ठहरा । भोजनके समय कपिल किसी बहानेसे पितासे अलग जा बैठा । यह देख सत्यभामाके मनकी चोका और भी प्रबल हो गयी । उसने ब्राह्मणको एकान्तमें ले जाकर शपथ देते हुए पूछा,— “पिताजी ! सब कहिये, यह आपका पुत्र आपकी धर्म-पत्नीसे उत्पन्न है या नहीं ? इसपर उपाध्यायने उससे सारा कच्चा खिड़ा कह सुनाया, यह सुनकर उसे यह निश्चय हो गया, कि

यह किसी नीच जातिकी मन्तान है । इसके बाद कविने अपने पिताको बुलाने के लिये कहा और वह अपने घर बना गया । इधर मन्थभामा ने कविनि के लिये अपना मन फेर दिया और उसके अनजाने में अपने बाहर ही, श्रीरंग राजाके पास जा, दोनों हाथ जोड़कर बोली,—आप पृथ्वीनाथ हैं—पाँचवें लोक-पाम हैं—हीन और अनाथ मनुष्योंको मरक देने वाले हैं, आपकी मरकी गति है, हमलिये मेरे ऊपर दया कीजिये ।”

उसका बचन सुन, राजाने कहा,—“पुत्री ! तुम्हारा पिता मन्थकि मेरे पुत्र है । तुम उनकी पुत्री और कविनीकी पुत्री हो, हमलिये मेरी हर तरहसे माननीय हो । तुम हीन बनवाओ, तुमको कौनसा दुःख है ?”

वह बोली,—“हे राजन ! मेरा कविप नामका जो स्वामी है, वह अपने कुममें उत्पन्न नहीं होनेके कारण निन्दनीय है ।”

राजाने पूछा,—“तुम्हें वह कैसे मालूम हुआ ?”

यह सुन, उसने कविनिके पिताकी कहोहुई बुन बाते राजाको कह सुनायी । अन्तमें बोली,—“महाराज ! आप ऐसा करें, जिनमें मैं हमारे घर में अनाथ हो जाऊँ और पृथक् रहती हुई भी निर्मय हीनका पामन कर सकूँ । मैं आपकी मरकी आँ हैं ।”

उसने ऐसा कहने पर राजाने कविनि को बुलवा भेजा और जाने पर उसने कहा,—“कवि ! मेरी पुत्री मन्थभामा मेरे ऊपर प्रीति नहीं रखती, हम लिये हूँ हम स्पष्ट हीन स्त्रीको छोड़ दे । बाप से यह करने लिख गृहकी भीति में ही जाने दो और हीन-स्त्री अपनेका को धारक कर, कुमोचित धर्मिक पामन करती रहे, हम बातको हमें जाना दे दाम ।”

राजाकी यह बात सुन, कविने कहा,—“स्वामी ! तुमसे तो हमारे पिता बहुत भी बँद नहीं जानेका, मैं इसे छोड़कर रह नहीं सकना; किं अनाथ आन हो बनपावने, मैं इसे कैसे छोड़ दे सकना हूँ ?”

कविनीकी बातें सुन, राजाने मन्थभामासे पूछा,—“अरे ! यदि कविप तुम्हें छोड़नेको तैयार नहीं हो, तो हूँ क्या करोगी ?”

वह बोली,—“यदि हम नीच कुपोषक पुत्रसे मेरा पितृ नहीं छूट तो मैं क्या कर सकूँ ?”

यह सुन, राजाने फिर एक बार कविनिसे कहा,—“कवि ! यदि हूँ हम स्त्री को न छोड़ना, तो तुम्हें कहना ही कि हमका घर छोड़ो । क्या तुम्हें हम घर का धर नहीं है ? हमलिये यदि तुम्हें स्वीकार हो, तो उसे बुद्धिमान्ति निम्न विधि मानके स्वीकार जहाँ है, वही ही हमें भी बुद्धिमान्ति हो पावेगी मरकी पाम मने है ।”

कपिलने यह बात स्वीकार कर ली । तब विनय तथा शीपमें उत्तम मन्य-
भामा राजाकी प्रियाके पास धर्म आर्या और सुमने रहने लगी ।

एक दिन उन्हीं नगरके उद्यानमें श्री विमलबोध नामके मूर्ति पृथ्वी पर विहार
करते हुए आ पहुँचे और एक पवित्र स्थानमें रहे । मूर्तिक आगमन का
हाम लोगों के मुँहमें सुनकर शीपम्ब राजा अपने परिवारके साथ उनकी वन्दना
करने को आये । वहाँ पहुँच कर, मूर्तिको प्रणाम कर, राजा एक उचित स्थान में
जा बैठे । तदनन्तर मूर्तिने राजाको सुनाने के लिये धर्म-देशना आरम्भ की । “हे
राजन् ! जो मनुष्य-जन्म आदि सामर्थ्यों को पाकर भी प्रमादके कारण धर्म
महीं करता, उसका जन्म निरर्थक ही जानना और जिन प्राणियोंने जिन-धर्मका
आराधन और सेवन कर, वैभव तथा मोक्ष-सुख पा लिया है, उनका जन्म सा-
र्थक समझना । वे मगल-कलशकी भाँति मदा प्रणमाके योग्य हैं ।”

यह सुन, शीपम्बने पुत्रा,—स्वामिन् ! मंगल-कलश कौन था ? कृपाकर
मुझे उसकी कथा सुनाइये ।

मूर्ति महाराजने कहा,—“राजन् ! स्व मन लगा कर उसकी कथा सुनो ;
मैं तुम्हें उसकी कथा सुनाना हूँ ।

मङ्गल कलशकी कथा ।



अपिनी नामक विनायक नगरी में वैरेसिंह नामक एक राजा राज्य
करते थे । उनकी सौमचन्द्रा नामक थी उन्हें प्राणमि भी बहुत
प्यारी थी । उन्हीं नगरी में धनदत्त नामका एक बड़ा भारी मेठ
रहता था । वह बड़ा ही विनयी, मन्य-वारी, दयावान्, गुरु तथा देवताकी
पुत्रामें तत्पर और परोपकारी मनुष्य था । उसके सत्यभामा नामकी एक
बी थी । वह बड़ी ही शीपवती तथा पति पर प्रेम रखनेवाली थी ; पर
बेचारीकी गोद सूनी थी । एक दिन पुत्रकी चिन्तामें उताव
बने हुए मेठको देखकर उसकी बी ने पूछा,—“बाप ! आप आज इनने दुर्लभ कपो
दिखाइ देते हैं ?” मेठने सब बात बतला दी, वह सुन कर बीने कहा,—

“ प्रादुनाथ ! चिन्ता न कीजिए । इस लोक और परलोक में केवल धर्म ही अनुन्मोहों का निवारण करने वाला है । इसलिये आपको सुखी मनसे उसी धर्मका विशेष रूपसे पालन करना चाहिये । “इसपर मेठने कहा,— प्रिये ! मैं किस तरह धर्मका आचरण करूँ, वह तुम्हीं बताओ । “वह बोली,— “स्वामी ! देवाधिदेव श्रीजिनेश्वरजीकी पूजा करो, मङ्गुरकी भक्ति करो, सप्रायोंको दान दो और मिद्वान्तके दण्डोंका अध्ययन करो । इसप्रकार धर्म-ध्यान करते हुए यदि पुत्र प्राप्त हो जाय, तो अच्छी ही है, नहीं तो परलोकमें निम्न और अक्षयिदत्त सुख नो अवाप्त ही होगा ।”

वह सुन, मेठने परम प्रसन्न होकर कहा,—“प्रिये ! तुमने बहुत ठीक कहा । भर्षा भीति पालन दिया हुआ धर्म विस्तारान्ति और कल्पवृक्ष के ही समान होता है ।”

इस प्रकार मनमें निश्चय कर, उस अच्छे विचारवाने मेठने मालीको बुलाकर देव पूजाके निमित्त पूज मंगवाये और उसे बहुत सा धन दान किया । इसके बाद वह प्रतिदिन सबेरे उठकर अपने बगीचेमें जाता और सुतल्लके खिमे हुए पूज मोड़ साकर उनसे अपने घरमें रखी हुई प्रतिमाका पूजन करता । इसके बाद नगरके मध्यमें बने हुए जिन-वैन्द्य (जैन मन्दिर) में चला जाता । उसके द्वारके भीतर प्रवेग करते समय नैवेधिकी आदि कई ज्ञानेवासे दसों त्रिकोंका उचित रीति में ध्यान रखते हुए बड़ी भक्तिके साथ वैन्द्यवन्दन करता था । इसके बाद माधुओंको वन्दना तथा विधिपूर्वक प्रत्याख्यान कर, वह उत्तम मुनियोंको दान देता था । इसी प्रकार सारा दिन और सारी रात, सब सुखको देनेवाले धर्म-कायों का ही अनुष्ठान करते रहनेके कारण, यामनकी अधिप्राया देवी उस मेठ पर प्रसन्न हो गयी और उन्होंने उसे प्रत्यक्ष दर्शित देकर पुत्र-प्राप्तिका वरदान दिया । इस वरदानमें मेठ बड़ा ही प्रसन्न हुआ । इसके बाद पुत्रके प्रभाव तथा देवीके आशीर्वादसे उसी रातको नेत्रनीकी गर्भ रहा और उसने स्वप्नमें गंगान सहित सुवर्ण-पूर्य कृत्य देखा । वह देखने ही वह जग पड़ी और इसे पुत्र प्राप्ति का मंगुन समझ कर हर्षित हुई । कल्पने समय पूरा होने पर भर्षा मापनमें उसके पुत्र पैदा हुआ । उस समय उसके पिताने बड़ी धनधान्यसे उन्मव किया और दोन-हीन जनोंको स्वर्ण और रत्नोंका दान देकर, अपने सब स्वजनको इकट्ठा किए और सबके सामने ही स्वप्नके अनुसार उसका नाम मंगल-कन्या रखा । धीरे-धीरे बड़ता और विद्याभ्यास करता हुआ वह लड़का कन्या काट बरका हुआ ।

एक दिन मंगल कन्याने अपने पितासे पूछा,—“पिता ! तुम सबके ही उद-
कर प्रतिदिन कहाँ चले जाते हो ? “उसके पिताने कहा,— मैं देव पुत्रके मन्द-

कूल लाने जाता हूँ । वह छन पुत्रने कहा;—“अच्छा, तो आज मैं भी तुम्हारे साथ ही चलूँगा ।” वह छन, पिताने लाने मना किया, तो भी वह पिताके पीछे-पीछे चला ही गया । मार्सीने उसे अपने मानिकका पुत्र समझ कर उसे प्रमथ करनेके लिये नीबू और नाखी आदि सुन्दर स्वाद्वार्म फल लाकर दिये । इसके बाद मेढ कूल से, पुत्रके साथ ही घर लौट आया । उस दिन मेढने पुत्रके साथ ही स्नान, पूजन और भोजन आदि सभी कार्य किये । इसके अनन्तर बामक पाठ्याभ्यास चला गया । दूसरे दिन मंगमकलन बड़ी हठकरके अकेला ही कूल लानेके लिये बगीचेमें चला गया और मार्सीने सुन्दर-सुन्दर फूल लेकर घर लौट आया । घर आकर उसने पिताने कहा,—“अब आजमें मैं ही प्रतिदिन बाग में जाकर फूल ले आया करूँगा, तुम घर ही रहकर धर्म-ज्ञान किया करो ।” मेढने उसकी यह बात स्वीकार कर ली । इसके बाद वह प्रतिदिन बगीचे जाकर फूल ले आने लगा और मेढ सुबह पूर्वक देव-पूजा करने लगा । इसी अवसर में क्या क्या घटनाएँ हो गयीं अब उन्हींकी कथा सुनाता हूँ । सुनो,—

भरत क्षेत्रमें खम्पा नामकी एक विद्याल नगरी है । उसमें छरसुन्दर नामके एक राजा रहते थे । उनकी रानीका नाम गुद्यावती था । एक दिन उसने स्वप्नमें अपनी गौरमें कल्पलता देखी । देखते ही वह झट पट उठ बैठी और अपने स्वामी से वह बात कह डाली । राजाने अपनी बुद्धिने विचार कर कहा,—“हम स्वप्नके प्रभावसे तुम्हें एक सर्व-सुखदाय पुत्री होगी ।” वह सब रानी बड़ी प्रसन्न हुई । इसके बाद समय पाकर रानीको एक सड़की हुई । राजाने उसका नाम त्रैलोक्य-सुन्दरी रक्खा । पीर पीर बढ़ती हुई वह बालिका क्रममें पुरती हो गयी, बुवा-बन्ध्याको पाकर वह मानो अतिशय भावजय और मौभारयका आकार बन गयी । एक दिन अपनी उम मनोहर शृंगारिणी पुत्री को देखकर राजा अपने हृदय में उसके लिये बरफी चिन्ता करने लगे । इसी समय रानीने भी उनसे कहा,—“स्वामी ! यह बालिका मेरे जीवनका आधार है । मुझमें ऐसी धारि नहीं, कि इसका विरह सहन कर सकूँ, इसलिये आप इसका विवाह किसी और स्थानमें न कर इसी नगरमें सुषुद्धि नामक मेरी-पुत्रके साथ कर दीजिये । वह इसके सर्वपा योग्य है ।” श्री की यह बात छन, राजा मन-ही-मन विचार करने लगे मन्त्र पुत्री तो विवाहादिक मामलोंमें क्षियोंकी ही प्रधानता रहती है ।” यही मोचकर उन्होंने एतुद्धि नामक मेरीको बुझा कर उसमें बड़े आनन्दके साथ कहा “मन्त्रीजी ! मैं अपनी कन्या तुम्हारे पुत्रके साथ क्या देना चाहता हूँ, हम लिये तुम रीति इनके विवाहकी तैयारी करो ।”

वह छन मन्त्रीने कहा,—“स्वामी ! आप ऐसी अनुक्ति बात क्यों कहते

हैं ? आप अपनी पुत्री किसी राजकुमारकी दीजिये, मेरा पुत्र आपके योग्य नहीं है । क्या भी है, कि—

ययोरेव समं विचं, ययोरेव समंकुलम् ।

तयोमैत्री विवाहश्च, नतु पुष्ट-विपुष्टयोः ॥ १ ॥

“जिन दो अनुष्योंकी धन-सन्पत्ति एकनी हो, कुल एकना हो, उन्हां दोनोंमें परस्पर मैत्री या विवाह होना उचित है; परन्तु उगनेसे यदि एक दलवान और दूसरा निर्दल हो, तो उनमें सम्बन्ध होना ठीक नहीं है :”

मंत्रीकी यह बात सुन, राजाने फिर कहा,—“मंत्री ! इस बारेमें तुम्हारे कुछ कहनेकी आवश्यकता नहीं है । यह बात तो अब होकर ही रहेगी । इसमें कोई संशय न समझना ।”

समासर्शने भी कहा, कि मंत्रीजी ! आपको राजाकी बात मान ही लेनी चाहिये । यही सब सुनकर मन्त्रीने, इच्छा न रहते हुए भी, राजाकी बात मान ली ।

इसके बाद मंत्री, घर आ, हथेली पर मिर रखकर मन-ही-मन विचार करने लगा,—“हाय ! मेरी तो वही हालत हो रही है, कि एक ओर बाघ बँडा है, और दूसरी ओर नदी लहरा रही है । इधर उनके मुँहमें बचे जानेका भय है, उधर नदीमें डूब जानेका । इसका कारण यह है, कि राजाकी पुत्री देवांगना की भाँति रूपवती है और मेरा पुत्र कोढ़के रोगसे परामर्शको प्राप्त हो रहा है । फिर जान-बूझकर मैं इन दोनोंकी जोड़ी क्यों मिलाऊँ ? इसी तरहकी विनाशों में मन्त्री खाना-पीना भी भूल गया । अन्तमें उसे यह याद आया कि, मेरी कुलदेवी बड़ी जागती देवी हैं । मैं उन्हींकी आराधना करूँ, तो मेरा मनोरथ निश्च हो जाये । ऐसा विचार कर, मन्त्रीने बड़ी विधिसे साथ अपनी कुल-देवीकी आराधना की । उसकी आराधनासे प्रसन्न हो, देवीने प्रत्यक्ष प्रकट हो करके कहा,—“हे मन्त्री ! तू क्यों लिपे मेरा ध्यान कर रहा है ?” मन्त्रीने कहा,—“नाता ! तुन तो स्वयं ही सब कुछ जानती हो, तो भी जब पृथ्वी हो, तो लो, कोई देता हूँ, सुन लो । मेरा पुत्र, दुष्ट दुष्ट-व्याधित परामर्शको प्राप्त हो रहा है । तुन ऐसी कृपा कर दो, जितने मेरा पुत्र इस रोगके पँडिते हट जाये ।” इस पर देवीने कहा, —“एवंमें क्यों हुए कनौक दोनने जो व्याधि उत्पन्न हुई हो, उने दूर करनेकी शक्ति मुझमें नहीं है । इसलिये तुम्हारी यह

प्रार्थना कर्ये है ।" यह सुन मन्त्रीने मन-ही-मन विचार कर कहा,—“अच्छा यदि ऐसा नहीं हो सक्ता, तो तुम कोई उम्मीकी सी आहुतियामा ध्याधि-रहित, तूम्हारी पुण्य कहींसे झूठ लाओ, तो मैं उसीके साथ राजकुमारीका ध्याइ कराके पीछे राजकुमारीको अपने पुत्रके हवाले कर दूँगा ।” देवीने कहा,—“मन्त्री ! मैं किसी बामकको लाकर मगरके दरवाजे पर धोड़ोंकी रक्षा करनेवाले राजकुमारोंके पाम से आऊँगी । वह जाइए गुर करनेके लिये जब आगके पाम आ बेटे, तब तुम उस लड़केको वहाँसे उड़ा ले आना ।” इसके बाद जैसा उचित जान पड़े, वैसा करना । यह कह देवी अदृश्य हो गयी । इसी बाम-पर दिवबाग कर मन्त्री बड़ी प्रसन्नताके साथ विशाहकी तैयारियाँ करने लगा । इसके बाद मन्त्रीने अपने अध्यात्मको एकाग्रतामें बुनाकर उसमें मारा हाल कह सुनाया और बड़े आदर से कहा,—“यदि कोई बामक कहींसे आकर तुम्हारे पाम बैठ रहे, तो तुम उसे भरपट में पाम ले आना ।” अध्यात्मने उनकी यह आज्ञा मान्य स्वीकार कर ली ।

इसके बाद कुलदेवीने अपने ज्ञानमें यह माधुम कर लिया, कि इस राजकुत्री का घर तो मंगलकालमें होने वाला है । कम, उन्होंने उजयिनी—नगरीमें आकर बागमें गूल लेकर आते हुए मंगलकालमें देल, आकाशमें ही उड़ते हुए कहा,—“यह जो बामक तुम लेकर आया जा रहा है, वह किराये पर किसी राज-कम्बामें गायी होगी ?” यह सुनकर मंगलकालको बड़ा विस्मय हुआ । “यह क्या ?” वही सोचते हुए उसने मन-ही-मन निश्चय किया, कि घर पहुँचकर रितागे यह बाम कहूँगा । इसके बाद जब वह घर पहुँचा, तब रितागे यह बाम कहना शुरू ही गया । दूसरे दिन, उसने फिर वही ही बाम सुनी । उस समय इसने अपने मनमें निश्चय किया,—“अच्छा ! जो बाम मैंने कम सुनी थी, वही तो आज भी आकाशमें सुनाई दे रही है । अच्छा, कम तो मैं यह बाम रितात्री में कहना शुरू गया, पर आज अनाम्य कहूँगा ।” ऐसा ही विचार करता हुआ वह शाममें चला जा रहा था, कि इसी समय बड़े औरकी आधी उड़ी और उसे अचानकगति पामवाले मंगलमें उड़ा ले गयी । एकाएक वहाँ पहुँच कर वह बड़ा मरमल हुआ । इसके बाद यहा-मोठा और ध्यामा होनेके कारण वह एक मन्त्र-मन्त्र का भा निमंत्र मन्त्र देल, वहाँ पहुँचा और वन्त्र भिगा, और उम्मीकी निगाह कर पानी रिता, इसके बाद ध्यामा हो. इसके मूल में, अपने उनकी स्त्री बना कार्य और इसके सहारे मन्त्रके नीर पर उगे हुए एक बड़े मनी बट-बुद्धता बट गया । इनमेंसे मूल अमृत हो गये । उस समय बट-बुद्धता हो हुए इसने जो बामों और मन्त्र सीखाए, तो बामकी उन्नत रिताकी और अधि

जलती हुई मान्म पड़ी । यह देख, वह वृज्जमे नीचे उनराः पर साय ही डर गया । टंडके मोरे उसका शरीर कौप रहा था । इसी लिये वह धीरे-धीरे उस आगकी सीध पर चल पड़ा । अन्तः वह चम्पापुरीके साररी हिस्सेमें आ पहुँचा और अश्वपालोंके पास बैठकर आग तापने लगा । उसे देखकर अश्व-पालक, "यह शरीर बालक कौन है ? कहाँसे आया है ?" इस तरहकी बातें एक दूसरेमें पूछने लगे । उपर लिखे हुए अश्वपालोंके स्वामीने जब यह बात सुनी तब मन्त्रीकी बातका स्मरण कर, उस बालकको अपने पास लेना लिया । उसके पास आनेपर उसने उसकी टंड दूर करनेका उपाय कर दिया और संजरा होते ही उसे मन्त्रीके पास ले गया । उसे देख, मन्त्रीको बड़ा म्प हुआ । उसने उसे एक गुप्त स्थानमें ला रक्खा और उसे स्नान-भोजन कराके मन्तुष्ट्रिया । यह सब देखकर मंगलकामने सोचा,— "यह मेरी इतनी बेहिसाब शक्तिरदारी क्यों कर रहा है ? साथही मुझे इस तरह क्षिप्त कर क्यों रखा है ?" यह विचार मनमें आतेही उसने मन्त्रीसे पूछा,— "इस परदेगीकी प्यास इतनी शक्तिर क्यों कर रो है ? यह नगरी कौनसी है ? यह देश कौनसा है ? मेरा यहाँ क्या काम है ? यह सब सब-सब बतलाइये । मुझे बड़ा अचम्भा हो रहा है ।" यह सुन, मन्त्रीने कहा,— "इस नगरीका नाम चम्पा है । यह देश अंग नामसे प्रसिद्ध है । यहाँ सरसुंदर नामके राजा राज्य करते हैं । मैं उनका मन्त्री हूँ । मेरा नाम सुबुद्धि है । मैंने ही तुम्हें एक बहुत बड़े कार्यके लिये बुलावा भेगवाया है ।"

मंगलकामने फिर पूछा,— "यह कौनसा कार्य है ?" सुबुद्धिने कहा,— "एनो ! राजाने अपनी प्रेयसिपुत्रकी नामक बन्दाका विवाह मेरे पुत्रके साथ करना निश्चय किया है; परन्तु मेरा पुत्र कुष्ठ-व्याधिसे पीड़ित है । इसी-लिये, हे भद्र ! मैंने तुम्हें यहाँ बुलावाया है, कि तुम उस बन्दाके साथ विवाह कर, उसे फिर मेरे पुत्रको दे देना ।"

यह सुन, मंगलकामने कहा,— "मन्त्रीजी ! प्यार यह इतना बड़ा बुझा करनेको क्यों तैयार है ? क्यों यह अचम्भा करवनी बात और क्यों तुम्हारा बेटी पुत्र ! तुमसे तो यह बच्चे कम बड़ापि नहीं होलेगा । यह तो किसी भीने आने आदनी को बुझने उतार कर लम्पी बरत नामके बतारा है । यह काम भला कौन करे ? "

तब तो मन्त्रीने विवक्षित कर कहा,— "अरे तुम ! यदि तुम यह काम न करोगा तो मैं तुम्हें अपने हाथों मार दामेगा ।" यह कह, सुबुद्धि मन्त्री अपने हाथ से मरुत ले, बड़ा अदृष्ट मुद्रा बना कर उसे दाला-अचम्भा, परन्तु वह बुझी-

नोंमें शिरोमणि मंत्रीके सोचे हुए कुकर्ममें सार्कादार बननेको तैयार नहीं हुआ । इसी समय कुछ और बड़े बड़े लोग वहाँ आ पहुँचे और मंत्रीको उमका वध करने में रोक कर मंगलकर्मसे बोले,—“भाई ! तुम मंत्रीकी बात मान लो । बुद्धिमान् मनुष्य समय देखकर काम किया करते हैं ।” यह सुनकर उसने मन-ही-मन विचार किया,— “निरवय यही बात होनेवाली है; नहीं तो मेरा उज्जयिनीसे पहुँच आना क्यों कर होगा ? सर्व प्रथम आकाशवाणीने भी तो यही बात कही थी । इस लिये मुझे यह बात अवश्य स्वीकार कर लेनी चाहिये; क्योंकि जो होनहार होती है, वह तो डोकर ही रहती है ।” यही सोचकर उसने अपने मंत्री से कहा,— “यदि मुझे साधारण डोकरपद निरुप काय करना ही पड़ेगा, तो क्या कहेंगा ? यद्यपि मैं आपकी जान माने लेता हूँ; पर आपको भी मेरी एक माँग पूरी करनी होगी ।” यह सुनतेही मंत्रीका सर नरम होगया और उसने बड़े तराकके साथ कहा,— “हाँ, हाँ, कटपट कह डालो । मैं तुम्हारी माँग अवश्य पूरी कहेंगा ।”

मंगलकर्ममें कहा,—“राजा जो-जो चीज़ मुझे देगे, उन सबका मासिक आप मुझे ही समझना और उन सभी वस्तुओंको तत्काल उज्जयिनीके मागमें लाकर उपस्थित कर देना ।” मंत्रीने कटपट उमकी यह बात मानली ।

इसके बाद, जब व्याहृता मुहूर्त समीप आया, तब मंत्री उसे अर्ध-अर्ध बन्धामंडार पहना, हाथी पर बैठाकर राजाके पास ले गया । उसका सुन्दर रूप देख, राजा मुग्ध हो गये । श्रीमोक्य-सुन्दरी उम कामदेवके समान वरको देखकर मन-ही-मन अपनेको इतना मानने लगी । तत्पश्चात् विवाहके समय ‘पुण्याश्व’, ‘पुण्याश्व’ इस प्रकारका वाक्य उच्चारण करते हुए ब्राह्मणने वर-वधूको आगिका चार चार करी दिववाया । चारों प्रकारके मंगलाचार करवाये । पहले मंगलाचार के समय राजाने वरको बड़े ही सुन्दर-सुन्दर वस्त्र दान किये, दूसरेमें आभूषण दान किये, तीसरेमें मणि-रत्न, सुवर्ण आदि मूल्यवान् वस्तु दिये और चौथेमें रथ आदि वाहन प्रदान किये । इस प्रकार बड़े ही आनन्दमें वर-वधूका विवाह हो गया । विवाहकी मारी जिया सम्राट होनेपर, जब जामानाने वधूका हाथ पकड़ा, तब उसके हाथ अपना करनेके पहले ही राजाने पुत्रा,— “कर्म ! अब मैं तुम्हें कौन भी चीज़ दूँ ?” यह उन, उसने बीच अच्छी समझके तेज धोड़े माँग । राजा बड़े प्रसन्न हुए और उन्होंने तत्काल उसके माँग अनुसार पाँचधोड़े उम दे दिये । इसके बाद शांति वाजिके साथ सुन्दरियोंके संगम-गीत और भाट चारोंके प्रथ-प्रथ शब्द सुनते हुए मंगलकर्म अवधी भव-विवाहिता परनीके साथ मंत्रीके घर आया । तबक समय मंत्रीके आदर्श जिये दिये यह बात

कहते छनाई दिये, कि अब किसी उपायसे भीषण ही यहाँसे हटा देना चाहिये । यह उन और आकार-प्रकार तथा चेष्टासे अपने स्वामीको चंचल देख, त्रैलोक्य-सुन्दरी अपने पतिके पास हो चली आयी । थोड़ी देर बाद मंगलकलश शौचादिके लिये उठ खड़ा हुआ । यह देख, राजकुमारी भी जलका पात्र हाथमें ले, उसके पीछे-पीछे गयी । उस जलको ले, शौचादिसे निवृत्ति होकर मंगलकलश फिर घरमें चला आया ; परंतु उसके मनमें चिन्ता बनी हुई थी । उस समय त्रैलोक्य-सुन्दरीने अपने पतिको शून्य चित्त देख, विलकुल एकान्त पाकर पृष्ठा—“प्राण-नाथ ! क्या आपको भूख मालूम होती है ? ” इसके जवाबमें उसने हाँ कह दिया । यह उन उसने अपनी दासीसे पिताके घरसे आये हुए मिष्टान्न मँगवा कर दिये । उन्हें खाकर पानी पीते-पीते मंगलकलशने कहा,— “ अहा ! यह सुंदर केंतर भरी मिठाई खानेके बाद यदि कहीं उज्जयिनीका जल मिल जाता, तो फिर कैसी तृप्ति होती ! बिना उसके तृप्ति कहाँ ? ”

यह वचन सुन, राजकुमारी मन-ही-मन व्याकुल होकर सोचने लगी,—“धुं ! ये ऐसी विचित्र बात क्यों बोल रहे हैं ? इन्हें उज्जयिनीके जलकी मिठास कैसे मालूम हुई ? अथवा हो सकता है, कि इनका ननिहाल यहाँ हो और ये लड़कपनमें वहाँ जाकर वहाँका हवा-पानी देख आये हों । इसके बाद उसने पाँच सुगन्धित पदार्थोंमें मिश्रित ताम्बूल, आपने हाथों बनाकर, पतिकी मुखयुद्धि के लिये दिये । थोड़ी देरमें मन्त्रीने मंगलकलशके पास आदमी भेजकर उसे समय की सूचना दी, जिस सुनते ही मंगलकलशने त्रैलोक्यसुन्दरीसे कहा,—“प्यारी ! मुझे फिर गौच जानेकी इच्छा हो रही है—पेटमें दड़ा दड़ हो रहा है । लेकिन देखना, हमदार जलका पात्र लेकर जल्दी न आना । थोड़ी देर ठहर कर आना । ” यह कह, वह घरमें बाहर चला आया ।

मन्त्रीके पास पहुँच कर उसने पूछा,—“राजाने जो मुझे आब इत्यादि पदार्थ दिये थे, वे सब कहाँ रखे हैं ? ” मन्त्रीने कहा,—“वे सब उज्जयिनीके राम्नेमें हैं ।

यह सुन वह वहाँ गया और सब चीजोंको एक रथ पर रखकर, उसमें चार घोड़े जोत दिये । पाँचवें घोड़ेको पीछे बाँध दीया । बहुतसी चीजें तो उसने वहीं छोड़ दीं और अपनी नगरीकी राह नापी । राम्नेमें जो जो गाँव मिलते गये, उन सबके नान उसने मन्त्रीके सेवकोंमें बाँटकर दिये । इस तरह रथमें बैठा हुआ रात-दिन चमकर, वह कुछ दिनोंमें अपनी नगरीमें आ पहुँचा ।

इधर मंगलकलशके गुन हो जानेके बाद उसके नाना-निताने उसकी बड़ी खोज-तूँड करवायी : पर जब कहीं उसका पता न मिला, तब रोने-रोने घरघर वे

नोंमें शिरोमणि मंत्रीके मोचे हुए कुर्ममें साकीदार बननेको तैयार नहीं हुआ । इसी समय कुछ और बड़े बड़े लोग वहाँ आ पहुँचे और मंत्रीको उमका बध करने में रोक कर मंगलकर्मसे बोले,—“भाई ! तुम मंत्रीकी बात मान लो । मुदिमान् मनुष्य समय देखकर काम किया करते हैं ।” यह सुनकर उसने मन-ही-मन विचार किया,— “निरचय यही बात होनेवाली है; नहीं तो मेरा उज्जयिनीसे यहाँ आना क्यों कर होता ? सर्व प्रथम आकाशवाण्याने भी तो यही बात कही थी । इस लिये मुझे यह बात अवश्य स्वीकार कर लेनी चाहिये; क्योंकि जो होनहार होती है, वह तो होकर ही रहती है ।” यही सोचकर उसने अपने मंत्री से कहा,— “यदि मुझे साधार होकर यह निन्द्य कार्य करना ही पड़ेगा, तो क्या कहेंगा ? अम्बु में आपकी जान माने नेता हूँ; पर आपको भी मेरी एक माँग पूरी करनी होगी ।” यह सुनतेही मंत्रीका घर गरम होगया और उसने बड़े सवाकहे साथ कहा,— “हाँ, हाँ, कटपट कह डालो । मैं तुम्हारी माँग अवश्य पूरी कहेंगा ।”

मंगलकालसे कहा,—“राजा जो-जो चीज़ें मुझे देंगे, उन सबका मानिक आप मुझे ही समझना और उन सभी वस्तुओंको सत्कास उज्जयिनीके मार्गमें लाकर उपस्थित कर देना ।” मंत्रीने कटपट उमकी यह बात मानली ।

इसके बाद, जब ब्याहका मुहूर्त समीप आया, तब मंत्री उसे अच्छे-अच्छे बख्शालेदार पहना, हाथी पर बैठाकर राजाके पास ले गया । उसका सुन्दर रूप देख, राजा मुग्ध हो गये । त्रीलोक्य-सुन्दरी उस कामदेवके समान वरको देखकर मन-ही-मन अपनेको कृतार्थ मानने लगी । तदनन्तर विवाहके समय ‘पुण्याश्व, पुण्याश्व’ इस प्रकारका वाक्य उच्चारण करते हुए माण्डवने वर-वधूको अग्निका चार बार चक्रा दियेवाया । वही प्रकारके मंगलाचार करवाये । पहने मंगलाचार के समय राजाने वरको बड़े ही सुन्दर-सुन्दर वस्त्र दान किये, कूर्ममें आभूषण दान किये, तीसरेमें मणि-रत्न, सुवर्ण आदि मुख्यशान् पदार्थ दिये और चौथेमें रथ आदि वाहन प्रदान किये । इस प्रकार बड़े ही आनन्दमें वर-वधूका विवाह हो गया । विवाहकी सारी क्रिया समाप्त होनेपर, जब जामाताने वधूका हाथ पकड़ा, तब उमके हाथ अलग करनेके पहले ही राजाने पूछा,— “वरम् ! अब मैं तुम्हें कौन सी चीज़ दूँ ?” यह सुन, उमने पाँच अच्छी नयनके तेज घोड़े माँगे । राजा बड़े प्रयत्न हुए और उन्होंने सत्कास उसके माँगे अनुसार पाँच घोड़े उसे दे दिये । इसके बाद गात्रे बाँकेके साथ सुन्दरियोंके मंगल-गीत और भाट चारोंके जय-जय गन्ध सुनते हुए मंगलकर्म अपनी भव-विवाहिता पत्नीके साथ मंत्रीके घर आया । रातके समय मंत्रीके आठमी द्विजे द्विजे यह बात

कुछ दिनोंमें शोर-रहितसे हो गये। इतनेमें एक दिन उमकी माताने उसे रथमें बसे हुए, अपनी घरकी तरफ आते देख, पुत्रको नहीं पहचाननेके कारण, सहमा पुकार कर कहा,—“हे राजपुत्र ! तुम मेरे घर पर रथ क्यों ला रहे हो ? यीर्षी राह छोड़कर नयी राह क्यों जा रहे हो ?” धरन्तु इस प्रकार रोکنे पर भी जब उमने रास्ता नहीं बदला, नव सेठानीने बहुत ही धबराकर सेठको बुलाया और उनको सारा हाल कह सुनाया । यह सुन, सेठ उमे रोکنेके लिये ज्योंही घरमे बाहर निकले, ज्योंही मंगलकर्मगन रथमे नीचे उतर कर, पिताके घरवाँमें माथा टेका । तबतो पिताने पुत्रको पहचान कर, उसे बड़े प्रेममे गले लगा लिया । इसके बाद आनन्दके आँसू हलकाते हुए माता-पिताने पहले तो उसका कुलम समाचार पूछा । इसके बाद और-और बाने पूछे । इस अपार सम्पत्तिके प्राप्त होनेकी बात भी पूछी । इस घर मंगलकर्मगन अपना सारा हाल माता-पिता को कह सुनाया । यह सुन, उमके माता-पिताने मन-ही-मन विचार किया, “अहा ! इस लड़केका भाग किना बड़ा है !” इसके बाद सेठने अपने घर को लड़काकर क़िला बनवाया और उसमें गुप्त रीतिमें उन पौषों आरवोंको रख दिया । पुत्रके घर आजानेकी कुर्याँमें सेठके घर बड़ी धूमधाममें बधाइयाँ बजने लगीं ।

एक दिन मंगलकर्मगन अपने पिताने कहा,—“पिताजी ! अभी मुझे थोड़ासा कलाभ्यास करना बाकी रह गया है, उसे भी पूरा कर दायें, तो अच्छा है ।” यह सुन, सेठने अपने घरके पाम ही रहनेवाले एक कलाचार्यके पाम उसे कला सीखनेके लिये भेज दिया । वह वहीं अभ्यास करने लगा ।

इधर चम्पापुरीमें मंत्रीने पुत्रको मंगलकर्मगनके गहन कपड़े पहना कर, रात के समय राजकुमारीके कमरेमें भेजा । वह आते ही सेजपर बैठ गया । उसे देखते ही जैनोक्त्युन्दरीने सोचा,—“यह कौन कोढ़ी मेरे पलंग पर आ बैठा ?” इसके बाद वह ज्योंही राजकुमारीको झूके लिये आगे बढ़ा, ज्योंही वह उध्मा ली नीचे उतर पड़ी और भारी हुई वहाँ चली आयी, जहाँ उसकी दासियाँ सोयी हुई थीं । उसे इस तरह एकएक वहाँ पहुँची देख, दासियोंने पुत्रा,—“स्वामिनी ! आप इतनी धबरायी हुई क्यों माखूम पड़नी है ?” उसने उत्तर दिया,—“माखूम होना है, कि मेरे देवताके समान सुंदर स्वरूपवान् स्वामी कहीं चले गये ।” दासियोंने कहा,—“नहीं, नहीं—अभी तो वे तुम्हारे कमरेमें गये हैं !” राजकुमारीने कहा,—“वह मेरा पति नहीं, कोई कोढ़ी माखूम पड़ना है ।” यह कह, वह सुंदरी रात भर दासियोंके ही मध्यम सोयी रही । सारी रात वहीं बिताकर, सुबेरा होते ही जैनोक्त्युन्दरी अपने पिताके घर चली गयी ।

पड़ी ? अब मैं क्या करूँ ? कहाँ जाऊँ ? यह तो मेरे ऊपर बड़ी भारी बिपत्ति आ पहुँची !” इन्हीं प्रकार सोचने-विचारते उसके मनमें यह विचार उत्पन्न हुआ, कि जिनका मेरे साथ विवाह हुआ है, वह मेरे स्वामी अवश्य ही उज्जयिनी-नगरी में चले गये हैं । कारण उस दिन मिठाई खानेके बाद उन्होंने कहा था कि, यदि मिठाईके ऊपरसे उज्जयिनीका जल गिरता तो क्याही अच्छा होता ! इस में तो यही संभव मालूम होता है, कि वे उज्जयिनी चले गये होंगे । अब यदि मैं किसी उपायसे यहाँ पहुँच सकूँ तो उनसे मिलकर अवश्य ही छुड़ी हो जाऊँगी । इस प्रकार विचार करती हुई वह, थोड़ी देरतक वहीं बंटी रह गयी ।

एक दिन उसने अपनी मानामें कहा,—“माता ! तू देखा कोई उपाय कौन जिससे पिताजी एक बार मेरी बात सुनें ।” परन्तु यह सुनकर भी, उसकी माताने उसका भान नहीं रक्खा । तब दूसरे दिन छन्द्रीने सिंह नामक एक सरदारको बुलाकर, उस पर अपना अभिप्राय प्रकट किया । उसकी आशसे अन्त तक मारी बातें सुन, मन-ही-मन बहुत कुछ सोच-विचार करनेके बाद सरदारने कहा,—“बेटी ! तू उतावली मत हो । मैं अबसर देखकर राजा से तेरी सब बातें कह सुनाऊँगा और तेरी इच्छा पूरी करूँगा ।” यह सुन, राज-कुमारीको धैर्य हुआ ।

एक दिन समय पाकर सिंहने बड़ी चुकिते साथ राजाने कहा,—“राजन् आपकी पुत्री बेचारी इस समय बड़े कष्टमें है । उसका सम्मान करना तो बुरा रहा, कमसे कम इतनी भी तो कृपा कीजिये, कि उसकी बातें सुन लीजिये ।” यह सुन, राजा की आँखोंमें आँसू भर आये । उन्होंने सिंहसे कहा,—“सामन्त ! मेरी पुत्रीने किसी पर भूठा अपराध लगानेका अपराध किया है, इसी ने इस जन्ममें उस पर कर्मक लगा है और वह-आपसे आप छलकी जगह पुनः पा रही है । पर यदि वह मुझसे कुछ कहा चाहती हो तो भले मैं मेरे पास आकर कहे, मैं सुननेको तैयार हूँ ।” इस प्रकार राजाकी आज्ञा पा, सामन्तने त्रैलोक्यछन्द्रीके पास आकर कहा,—“पुत्री ! जा, तू अपने पिताके पास जाकर जो कुछ कहना हो, कह सुना ।” यह सुन त्रैलोक्यछन्द्रीने राजा के पास आकर कहा,—“पिताजी ! मुझे राजकुमारोंकीभी पोशाक मैगा दीजिये । यह सुन, राजाने सिंहसे कहा,—“सामन्त ! यह आफत की मारी क्या उद-पटोंग बक रही है ?” सामन्तने कहा,—“महाराज ! इसने जो कुछ कहा, वह ठीक ही कहा है । यह परिपाटी तो पहलेसे ही चली आ रही है । राज-कुमारियाँ बड़े बड़े कार्योंका साधन करनेके लिये पुरुष-वेष धारण कर सकती हैं । इसमें कोई बुराई नहीं है, इस लिये आप संशय न करें, प्रसन्नतासे राज-

उपायों हन अग्निके पीछे-पीछे जाइये ।” सिंहने कहा, “इन घोड़ोंके मामिककी गिजायाला यहाँ पास ही है । तुम एक दिन वहाँके अध्यापकको विद्यार्थियोंके साथ आकर, भोजन करनेके लिये निमन्त्रण दे दो, फिर जैसा कुछ होगा, किया जाएगा ।” छन्दरीने ऐसा करना स्वीकार कर लिया । भोजनकी सारी सामग्री तैयार कर उसने उपाध्यायको निमन्त्रण दिया । ठीक समय पर उपाध्याय अपने सब विद्यार्थियोंके साथ आ पहुँचे । उन विद्यार्थियोंके मध्यम अपने पतिकी डेल कर, श्लोक्यछन्दरीके मनमें बड़ा ही आनन्द हुआ । तदनन्तर उसने हरेके आरंभमें आकर अपना आमन और धाल इत्यादि मंगल-कर्मोंके लिये भेजा और उसकी बड़ी भक्ति की । सबको आदरके साथ भोजन कराकर उसने वस्त्र भी दिये और मंगलकर्मोंकी उम्मीके शरीरके दो छन्दर बख दिये । इसके बाद उसने कलाचारसे कहा,—“आपके इन विद्यार्थियोंमें जो मूख अच्छी कहानी सुना सकता हो, वह मुझे एक कथा सुनाये ।” यह सुन, मंगल-कर्मोंकी विशेष भक्ति हुई देख, डाहने जले हुए सब विद्यार्थियोंने कहा,—“हमलोगोंमें मंगलकर्मोंकी सबसे अधिक प्रवीण है, यही कथा सुनायेगा ।” सबकी ऐसी बात सुन पवित्रने भी मंगलकर्मोंकी ही कथा सुनानेकी आज्ञा दी । पवित्रकी आज्ञा पाकर मंगलकर्मने कहा,—“कोई कल्पित कथा सुनाऊँ या आप बीती कह सुनाऊँ” यह सुन कुमार वेशधारीणी राजपुत्रीने कहा,—“कल्पित कथा छोड़ो आप बीती घटना ही कह सुनाओ ।” उसकी यह आज्ञा कानमें पड़ते ही मंगलकर्मने मोचा,—“यह तो वही श्लोक्यछन्दरी मामूम पड़ती है, जिसके साथ मैंने चम्पापुरीमें विवाह किया था । वही किसी कारण्से पुनः वेश बनाकर वहाँ आयी हुई है ।” यही सोच कर वह अपनी राम-कहानी सुनाने लगा । आदि, मध्य और अन्तका अपना सारा चरित्र, सुबुद्धि मंत्रीके द्वारा अपने घरेले हटाये जाने तकका हाल उसने कह सुनाया । यह सुन, राजकुमारीने बनावटी श्रेष्ठ दिशाते हुए कहा,—“कोई है ? अभी हम जूटी बात बनानेवालेको गिरफ्तार कर लो ।” यह सुनते ही उसके सेवकोंने उसे गिरफ्तार करना ही चाहा, कि स्वयं उसने उन्हें रोक और मंगल-कर्मोंको घाटके अन्दर ले गयी । वहाँ उसे एक आसन पर बैठाकर, उसने सिंह सामग्यने कहा,—“मेरा जिनके साथ विवाह हुआ था, वे मेरे स्वामी यही हैं । अतएव अब बतलाइये, कि मैं क्या करूँ ? बीछ विचार कर कहो ।” सरदारने अटपट उत्तर दिया,—“यदि सचमुच यही तुम्हारे स्वामी हों, तो तुम इनको घोरतःकार करो ।” यह सुन, राजकुमारीने कहा,—“सरदार ! यदि तुम्हारे मनमें कोई संका हो तो तुम अभी इनके घर जाकर, मेरे पिताके दिने हुए धाल आति

पदार्थों के ऐक्यत्व बनाने में सब दूर का सहज हो । उस राजकुमार ने इस मन्त्री के साथ सब बात कही, तब सिंह सामन्त मंगलकरके घर गया और अपनी दिव्य-शक्ति से, मंगलकरके निम्नको बुलाकर उसने उसने मर्ती कहा यह तुम्हारी ! इसके बाद वह सिंह राजकुमार के पास गया था । तदनन्तर सिंह सामन्त की आज्ञासे सज्जित होकर घर, राजकुमार, मंगलकरके घर गये और उनकी आज्ञाकारी आज्ञा करने लगे ।

उसदिन के रातने उस घर बान हुने, तब उन्होंने मेडको अपने पास बुलाया और सब हाल उस बड़ा बालक के अनुभव किया । तदनन्तर राजा की आज्ञासे मंगलकर उसी मकानमें अपने बच्चों के साथ निवास करने लगा । इसके बाद उन्होंने हस्ताने सिंह सामन्त के सब मंत्रियों के साथ बन्नातुर्ग में भेज दिया और उसके साथ ही अपनी मर्ती पोरक भी लायि दी । सिंह सामन्तने बन्नातुर्गमें जाकर राजाने सब बातें कह सुनी । राजाने सब हाल उस प्रसन्न होकर कहा,—“कहा, मेरी पुत्रीने कौन कला-कुरूपता दिखाने लगी ! और इस मंत्रीकी दुष्ट बुद्धिको तो देखो कि इनने मेरी निर्दोश कन्याके लिए किया बड़ा दोष नष्ट दिया !”

इसके बाद राजाने सिंह सामन्त के लिए उसदिन भेजकर अपनी कन्या और आज्ञाकारी माता बुलाया मंगलकर और उनका भली भाँति आर-भक्षण किया । तदनन्तर उस दुष्ट बुद्धि मंत्रीका मारा भगडा-भेड़ कर, उनकी सारी सम्पत्ति हार कर भी और उसे बध्नीने से जानेका हुक्म दिया । बोनदान उसे रात्रि पर बड़ा कर बन्नीके सब छोटे-बड़े सत्त्वोंमें सुनाता हुआ, बध्नीने से गया । उस मन्त्र मंगलकरने राजाने बड़ी विनयी करके उसे छुटकारा दिखवा दिया । उसे छोड़नेकी आज्ञा देने हुए राजाने उसने कहा,—“मेरे सत्त्व ! देख, मैं तुझे अपने शत्रुओंके करने से बचू देता हूँ : पर तू अपनी भी सत्त्वों का घर निकल जा ।”

यह हुए, मंत्री उसी समय उस मन्त्रने बाहर हो गया । राजाने कोई कुछ न होनेके कारण मंगलकरको ही अपनी पुत्र माना और उसके माता-पिताको भी बड़े आदरने वही बुलाया गया । एक दिन राजाने मंत्री और सामन्त आदिकी सम्पत्तिमें बड़े दूध-धानके साथ, अपना राज्यमंगलकरको दे डाला तदनन्तर सरस्वती राजाने योगेश्वर नामक एक मूर्ति काचित्त प्रहय किया ।

सरस्वती राजाके दीक्षा ग्रहण करने पर, वह समझ कि उसके राज्य पर कायस्थ एक वरिष्ठ जातिके पुरोहिता अधिकार है, कई एक मीमांसकों के साथ मीमांसक उस राज्यको हड़कर मेनेकी इच्छाने उन पर चढ़ जाये । मन्त्र-

उस राज-कन्याको अत्यन्त रूपवती देख, इन्दुपेख और विन्दुपेख नामक दोनों राजकुमार उसमें व्याह करनेकी इच्छामें देवामख नामक उद्यानमें जा ; बहुतर पहन कर, परस्पर युद्ध करने लगे । बहुतोंने उन्हें रोका-थाका, पर वे युद्धसे पीछे न हटे । उस समय अल्प कथावचामें, निर्मल मनवामें, त्रिनेश्वर-की वृद्धमल्लिकार्जुन तथा प्रिय वचन बोधनेवामें भीषेख राजा जब किसी तरह उन परस्पर शत्रुकी भाँति युद्ध करनेवासे राजकुमारोंको युद्धमें रोकनेमें समर्थ नहीं हुए, तब उन्होंने मन-हर्ष-मन विचार किया,—“यह देवो, शिवकी सन्तुष्टता, कर्मकी विचित्रता और मोहकी कर्कशता कैसी आश्चर्यजनक होती है ! मेरे इतने बड़े बुद्धिमान् पुत्र भी किम प्रकार एक स्त्रीके लिये आपसमें युद्ध कर रहे हैं ! इनकी यह दुष्टता देख, मुझे तो ऐसी लगजा हो रही है, कि समासशोक सामने लूँह दिखानेका भी जी नहीं चाहता । मैं कैसे उन्हें अपना लूँह दिखौँगा ? इसलिये अब तो मेरा मर जाना ही ठीक है । कहा भी है, कि प्राण दे देना अच्छा; पर मान गैवाना अच्छा नहीं । क्योंकि मृत्युमें तो सब भरका दुःख होता है; परन्तु मान-भंग होनेमें तो हर घड़ी दुःख होता रहता है ।” ऐसा विचार मनमें उत्पन्न होते ही राजाने अपनी रानियों पर भी इस विचार-को प्रकट किया । इसके बाद राजाने पेशवरमेही मन्त्रका स्मरण करते हुए, दोनों क्षिपोंके साथ विष-मिश्रित कमलको सौंप कर प्राणत्याग कर दिया । उसी समय सत्यभामाने भी कपिलके डरके मोरे उसी रीतिमें प्राणत्याग कर दिया । वे चारों जीव मरकर जम्बूद्वीपके महाविदेह क्षेत्रके अन्तर्गत उत्तर कुल्लोत्रमें जुड़ेले बालककी तरह उत्पन्न हुए । भीषेख और उनकी पहली स्त्री एक साथ पैदा हुए और दूसरी जुड़ैनी बालिकाएँ सिंहजन्मिता तथा सत्यभामा हुईं ।

इधर भीषेख राजाकी मृत्यु हो जानेके बाद एक चारण-मुनिने वहाँ आकर युद्ध करते हुए इन्दुपेख तथा विन्दुपेखसे कहा,— “हे राजकुमारों ! तुम दोनों ही बड़े कुर्सीन और समृद्ध हो, पर क्या यह निष्पुत्र कार्य करते हुए तुम्हें लगजा नहीं आती ? तुम्हारी इस दुष्ट चेष्टाको देखकर ही तुम्हारे माता-पिता विष सौंपकर मर गये । अब तो तुम अपने माता-पिताके उपकारका बदला - किसी तरह नहीं दे सकते । कहा है, कि—

अस्मिन् जगति महस्यपि, न किञ्चिदपि वस्तु चेधसा पिहितम् ।
अतिशयपरसलताया, भर्षति यतं मातुरूपकारः ॥ १ ॥

‘इस इतने बड़े संसारमें भी विधाताने ऐसी कोई वस्तु नहीं बना-यी, जिससे अत्यन्त वात्सल्यमयी माताका प्रत्युपकार किया जा सके ।’

द्वितीय-प्रस्ताव

इस भरत क्षेत्रके घैताढ्य-पर्वतपर उत्तर ध्रेणीके मलझुारके समान रघनूपुर बरुवाल नामका नगर है। उसमें उवलनजटी नामक विद्याधर राजा राज्य करता था। उसकी पत्नीका नाम वायुवेगा था। उसीके गर्भसे उत्पन्न, भर्क (सूर्य) द्वारा स्वप्नमें सूचित किया हुआ, भर्ककीर्ति नामका एक पुत्र भी उस राजाके था। वह जब युवावस्थाको प्राप्त हुआ, तब राजाने उसे युवराजके पदपर प्रतिष्ठित किया। इसके बाद उस राजा की श्वन्द्रमाकी रक्षाके उत्तम स्वप्नसे सूचित एक पुत्री हुई, जिसका नाम स्वर्णप्रभा रखा गया। कमरा वह बालिका बड़ी होने लगी।

एक समयकी बात है, कि उस नगरके उद्यानमें अमिनन्दन और जगतनन्दन नामक दो धोष्ठ विद्याधर मुनि आ पहुँचे। उन्हीं लोगोंके पास आकर स्वर्णप्रभाने धर्मदेशना सुनी और शुद्ध समाचारी सहित ध्यायिका ॥ गई। इसके बाद वे दोनों मुनिधोष्ठ वहाँसे अन्यत्र विहार कर गये। एक दिन स्वर्णप्रभाने किसी पर्वदिवसको पीपध व्रत ग्रहण किया। शुद्ध रीतिसे पीपध-व्रतका पालनकर पारणाके दिन, प्रातःकाल ही एहप्रतिमाका पूजनकर, उस बालिकाने पिताके पास जाकर उन्हें रोपा० अर्पित की। राजाने उसे सिरपर चढ़ाकर कन्याको अपनी गोद में बैठा लिया। उसका रूप और वयस देख राजा मनही-मन-विचार कर करने लगे,—“देखना हूँ कि मेरी यह कन्या विवाह करने योग्य होगई, तो फिर इसके योग्य कौनसा घर हो सकता है? कहा है कि—

द्वारा देखती है ; मासख वेदोंके डाग देखने है और अन्य-मनुष्य-
औलोंसे देखते हैं।”

इसके बाद दूत भी वहाँ आ पहुँचा। राजाधिराजको तो मेरा
सारा हाल पहलेही मालूम हो गया होगा, यही सोचकर उस दूतने उन्-
से सारी बातें सच-सच कह डालीं। इसके बाद बोला,—“हे महा-
राज ! यह तो उन बालकोंकी चपलता मात्र थी ; परन्तु प्रजापति राजा-
ने तो आपकी आज्ञाका बोल बराबर भी उलंघन नहीं किया। इस लिये
आपकी उनपर क्रोध नहीं करना चाहिये।” यह सुन, राजेन्द्रने मौन
धारण कर लिया।

राजाके शालिके बहुतसे क्षेत्र थे ; परन्तु उनमें सिंहका उपद्रव भी
बहुत हुआ करता था। इसीलिये प्रत्येक वर्ष कोई न-कोई राजा उस-
की आज्ञाके अनुसार वहाँ आकर उन क्षेत्रोंकी रक्षा किया करता था।
इस वर्ष प्रजापति राजकी बारी न होनेपर भी अश्वमेध राजाने उसके
पास दूत भेजकर उसीकी क्षेत्र-रक्षाका भार दिया। यह सुन, प्रजापति
राजा चिन्तामें पड़ गये और मन-ही-मन विचार करने लगे। इसी
समय उस कठिन आज्ञाकी बात सुन, त्रिपुष्ट और अचलने-पिताके पास
आकर कहा,—“हे स्वामिन् ! आप चिन्ता न करें। आपका यह काम
हमलोग करेंगे। आप निश्चिन्त रहें।”

“यह कह, ये दोनों बलवान् राजकुमार शालि-क्षेत्रमें जा पहुँचे।
वहाँके रक्षकोंको उन्हें देखकर बड़ा आश्चर्य हुआ। उन्होंने कहा,—“सब
राजा लोग इन शालिक्षेत्रोंकी रक्षवाली करनेके लिये अपने सैनिकों और
बाहनोंके साथ आते और चारों ओरसे उनका पहरा घेठा देते हैं, तब
कहीं रक्षा हो पाती है। परन्तु तुम लोग तो बड़ेही विचित्र रक्षक मालूम
पड़ते हो ; क्योंकि न तो तुम्हारे शरीर ही बहुतसे दंके हुए हैं, और न
तुम अपने साथ सैन्य-परिचारही लाये हो।”

यह सुनतेही त्रिपुष्टने कहा,—“भाइयों ! पहले तुम लोग हमें उस

12

सिंहको दिखला दो, जिसमें हम यह रखवालीकी बला सब राजाओंके सिरसे आज ही टाल दें ।”

यह सुन, उन रखवालोंने गिरि-गुहामें पड़े हुए सिंहको उन्हें दिखला दिया । उसे देखकर त्रिपृष्ठ तथपर सवार हो, उस गुफाके द्वारके पास पहुंचा । रथकी घरघराहट सुनतेही सिंह जग पड़ा और अपने मुत्तरूपी गुफाको छोले हुए गुफाके बाहर निकल आया । उस समय सिंहको पैदल चलते देख, त्रिपृष्ठ भी रथसे नीचे उतर आया और उसे वेहधियार देख, आप भी अपना हथियार नीचे डाल दिया । कुमारकी यह हरकत देखकर सिंहको बड़ा आश्चर्य हुआ । उसने अपने मनमें विचार किया,— “मोह ! एक तो आश्चर्यकी बात यही है, कि यह राजपुत्र यहाँ अकेला ही आया है । दूसरी बात अचरजकी यह हुई, कि यह रथसे नीचे उतर पड़ा । तीसरे, यह भी कुछ कम आश्चर्यकी बात नहीं, कि इसने अपने हाथका खड्ग भी फेंक दिया । अच्छा रहो, मैं इसे अपनी अवज्ञाका अभी मज़ा चखाता हूँ ।” ऐसा विचार कर वह सिंह आसमानमें उछला और क्रोधके साथ त्रिपृष्ठके मस्तक पर आ पड़ा । इतनेमें बड़ी कुर्तीके साथ त्रिपृष्ठने अपने दोनों हाथ उस सिंहके मुंहमें डाल, उसके दोनों होंठ दोनों हाथोंसे पकड़ कर, उस सिंहकी देहको पतले वस्त्र की तरह बीचसे फाड़ डाला—उसका शरीर दो टुकड़े होकर भूमिपर गिर गया और वह इसी आनपर क्रोधके मारे कांपने लगा, कि मुझे एक सामान्य मनुष्यने मार डाला । यह देख, राजकुमारके सारथिने कहा,—“हे सिंह ! यह राजकुमार नरसिंह है और तू पशुसिंह है । इसलिये जब सिंहने ही सिंहको मारा, तब तुम क्यों क्रोध कर रहे हो ?” उसकी यह बात सुन, सिंह प्रसन्न हो गया और मरकर नरकको प्राप्त हुआ । इसके बाद प्रजापतिके उन पुत्रोंने उस सिंहका चमड़ा प्रतिवासुदेवके पास भेजकर विद्याधरकी जुबानी कहला भेजा, कि हे अश्वप्रीव महाराज ! अब आप हमारी कृपासे बड़ी आनन्दके साथ इस शालिका भोजन कीजिये । अश्वप्रीवने उस चमड़ेको देख और उनकी कहलवायी हुई बात सुन कर

अपने मनमें विचार किया,—“जब यह इतना बलवान है, तब तो मेरे साथ युद्ध भी कर सकता है ।” ऐसा विचार कर वह मौन रह गया ।

एक समयकी बात है, कि अभ्यप्रीव राजाने राजकुमारी स्वयं-प्रभाकी सुन्दरताका वृत्तान्त सुनकर उवलनजट्टीसे उसकी याचना की । यह सुन, उवलनजट्टीने दूनके मुँहसे उसे कुछ उत्तर कहला मेढ्रा और उसे शांत कर दिया । इधर गुप्त रीतिसे अपनी कन्याकी पोतन-पुर ॥ जाकर उसने ज्योतिषीके कहे अनुसार राजकुमार त्रिपृष्ठके साथ अपनी कन्याका विवाह कर दिया । कुछ दिन बाद हरिश्मधु नामक मन्त्रीने किसीसे स्वयंप्रभाका विवाह हो जानेकी बात सुनकर अपने मालिक राजा अभ्यप्रीवसे यह बात कह सुनायी । इसपर अत्यन्त क्रुद्ध होकर उसने हुक्म दिया,—“मन्त्री तुम ममी त्रिपृष्ठ, भवल और मायायी उवलनजट्टीको अधिकर मेरे पास ले आओ ।” सचिवने अभ्य-प्रीवके हुक्मकी तामिल करनेके लिये उधरको दून रवाना किया । उस दूतने पोतनपुर जाकर गर्विष्ठ बच्चनोंसे उवलनजट्टीसे कहा,—“भरे मूर्ख ! तू मेरे स्वामीकी अपनी कन्यारत्न दे डाल । क्या तू नहीं जानता, कि मेरे स्वामी सब प्रकारके रत्नोंके आधार हैं ? कहा भी है, कि—

“मणिर्मेदिनी चन्दनं दिव्यदेति-र्वरं मामनेन गजो वाजिराज ।

विनाभूषुर्भोगसम्पत्समर्थं, गृहे युज्यते नैव चान्यम्य पुन ॥ १ ॥”

अर्थात्—“मणि, पृथ्वी, चन्दन, दिव्यशस्त्र, मनोहर स्त्री, उत्तम गज और श्रेष्ठ अश्व आदि उत्तम वस्तुओं भोगकी सम्पत्तियोंमें भरे हुए राजाके सिवा और किसीके घरमें शोभा नहीं पाने ॥”

यह कह, जब यह दून चुप हो गया, तब उवलनजट्टीने कहा, “हे दून ! मैं तो अपनी लड़कीका विवाह त्रिपृष्ठके साथ कर चुका । इसलिये अब तो यही उसका मालिक है । मेरा उसपरसे अधिकार जाता रहा ।”

यह सुन, वह दून त्रिपृष्ठके पास बला गया । वही त्रिपृष्ठने उससे कहा,—“हे दूत ! मैंने इस कन्याके साथ विवाह किया है अब यदि

तुम्हारे स्वामी इसकी इच्छा करते हैं, तो मैं पूछता हूँ, कि क्या उन्हें अपना जीवन भारी मालूम पड़ रहा है ? यदि ऐसी बात हो, तो जाओ, अपने स्वामीसे कह दो, कि यदि उनमें कुछ भी बल-पराक्रम हो, तो तुरत यहाँ चले मायें ।”

दूनने राजा अश्वप्रोषके पास पहुँच कर ठीक यही बातें ज्यों-की त्यों कह सुनायीं । सुनतेही क्रोधमें आकर उसने अपने विद्याधर-धीरोंको शत्रुका संहार करनेके लिये मेजा । स्वामीके मेजे हुए उन वीरोंने पो-तनपुर पहुँचकर प्रभुकी प्रेरणाके अनुसार युद्ध करना आरम्भ किया ; परन्तु त्रिपृष्ठने बात-की-बातमें उन सयको परास्त कर दिया । इसके बाद त्रिपृष्ठ विद्याधरोंकी सेना साथ लिये हुए अपने ससुराके नगरमें आ पहुँचा । अश्वप्रोष भी अपनी सारी सेना समेत वहीं आघमका । फिर तो दोनों मुख्य सेनाओंमें युद्ध छिड़ गया । विद्याधरगण अपनी विद्या के दलते पिशाच, राक्षस और सिंह आदिके स्वरूप धारण करने लगे । इससे त्रिपृष्ठकी सेना बहुत डरी और नष्ट सी हो गयी । इतनेमें त्रिपृष्ठ-कुमारने रथपर आरुढ़ हो, अपने खेवरोंको साथ लेकर युद्ध करना आरम्भ किया । पहले तो उसने शङ्ख बजाया, जिसकी ध्वनि सुनतेही उसकी सारी सेना सज्जि हो गयी और शत्रुकी सेना हारने लगी । यह देख, अश्वप्रोष भी अपने रथपर सवार हो, त्रिपृष्ठके सामने आकर युद्ध करने लगा । अश्वप्रोषने जित-जित दिव्य अस्त्रोंका प्रयोग किया, उन सयको त्रिपृष्ठने बात-की-बातमें उसी तरह काट डाला, जैसे सूर्य अन्ध-कारका नाशकर देता है । अब तो अश्वप्रोषने ऊँचकर त्रिपृष्ठरर एक भयङ्कर चक्र चलाया । वह चक्र त्रिपृष्ठकी छातीसे आकर चिपक गया और अश्वप्रोषके पास न लौटकर वहीं पड़ा रहा । त्रिपृष्ठने शीघ्रही उस चक्रको अपने हाथमें लेकर अश्वप्रोषसे कहा,—“दे अश्वप्रोष ! तू अभी मेरे सामने हाथ जोड़ कर प्रणाम कर और घर जाकर सुखते जीवन व्यतीत कर ।” यह सुन, अश्वप्रोषने कहा,—“धीरोंको प्रणाम करनेसे तो मर जाना कहीं अच्छा है ।” यह सुन, त्रिपृष्ठने उसपर वह चक्र

उसीके समीप बैठने और उसीको राजा मानकर सेवा करने लगे । सातवें दिन एकाएक आसमानमें बादल घिर आये । बड़े जोर-जोरसे बादल गरजने और पानी बरसने लगा । इसी समय बार-बार बमककर भयङ्कर बिजली उस यक्ष प्रतिमाके ऊपर आ गिरी, बातकी बातमें वह प्रतिमा नष्ट हो गयी ; पर राजाको ज्ञान बच गयी । वे सफ़ुराल रह गये ; यह देखकर लोगोंको बड़ा अचम्भा हुआ । उपसर्ग शान्त होने पर ज्योतिषीके कहे अनुसार राजा श्रीविजय अपने महलमें आये । उस समय अन्तःपुरकी समस्त स्त्रियाँ हर्षके मारे उस ज्योतिषीको राजा, भलङ्कार और धत्तादिक देकर सम्मानित करने लगीं । राजाने भी उसे बहुतसा धन दे, आदरके साथ उसकी विद्वान् की । नयी रत्नमयी यक्ष-प्रतिमा बनवाकर राजाने बड़ी धूमधामसे जिन प्रतिमाकी पूजा करवायी और अपने राज्य भरमें पुनर्जन्म महोत्सव करवाया ।

एक दिन राजा श्रीविजय, रानी सुताराने साथ, ज्योतिष्यन नामक वृक्षानमें क्रीड़ा करनेके निमित्त गये हुए थे । वहाँ पर्वतकी छाया युक्त शिलाओंपर स्यामीके साथ घूमती-फिरती और क्रीड़ा करती हुई मनोहर भङ्गोवाली रानी सुताराने एक सुनहले रङ्गके मृगको देखकर अपने स्यामीसे कहा,—“प्राणनाथ ! यह मृग तुम मुझे लाकर दो ।” यह सुन प्रेम के कारण मोहमें पड़े हुए राजा उसे पकड़ने दौड़े । वह मृग उन्हें देख, उछलता कूदता हुआ भाग गया । इसी समय राजाकी प्रिया सुतारानी कुर्कटजातिके सर्पने डँस दिया । अतएव वह बड़े दुःख मरे स्वरमें चिल्ला उठी,—“नाथ ! जन्दी आओ ।” उसकी पुकार सुनतेही राजा तत्काल पीछे लौट आये और अपनी पत्नीको चिपकी पीडा से छटपटाते देखा । उन्होंने रानीको बचानेके लिये तरह-तरहके तन्त्र-मन्त्र किये, पर कोई काम न आया और रानीने राजाके देखते-देखते आँखें बन्द करलीं, उसका मुँह काला पड़ गया और वह बेहोश हो गयी । यह देख राजाको भी मूर्छा भागई और वे पृथ्वी पर गिर पड़े । बड़ी-बड़ी मुश्किलोंसे जय उन्हें होरा हुआ, तब वे इस प्रकार विलाप करने लगे,—“हे देवी समान



एतत् स्मर्यमाणं हि रामो ब्रह्मर्षिं प्रति ईदृशं । दण्ड
 दत्तं दत्तं धीमते । एतत् स्मर्यमाणं ब्रह्मर्षिं प्रति । (१८)

रूपवती ! हे गुणवती ! हे सुनरा ! हे प्राणवल्लभा ! तुम कहाँ हो ? इसी तरह बहुत से मुकने पर राजा मरनेको तैयार हो गये । उनके नौकरों-ने उनका यह हाल देख, राजमहलमें जाकर लोगोंसे यह समाचार कह सुनाया । यह सुनकर उनकी माता स्वयंप्रभा और भाई विजयभद्रको बड़ा दुःख हुआ । इसी समय आकाश मार्गमें जाकर किसी पुरुषने कहा,—“हे देवी स्वयंप्रभा ! तुम विषाद न करो—मेरी बात सुनो रघनूपुर नगरके स्वामी अमितेजसे द्वारा सम्मानित संमिद्धोत्त नामका एक उत्तम ज्योतिषी है । वहाँ मेरा पिता है, मैं उसीका पुत्र हूँ, मेरा नाम दीपशिख है । हम दोनों पिता पुत्र ज्योतिर्वनमें क्रीड़ा करने गये हुए थे । वहाँ हमने उस नगरके आगे बहुत दूर अमरचञ्चानुरांके स्वामी अशानिधोप राजाके द्वारा दरो जाती हुई और शरण-विहीन तुम्हारी रानी सुताराको देखकर उम आकाशचारी राजासे कहा,—“रे पापी दुष्ट ! तू हमारे स्वामीकी यह नकी कहाँ लिये जा रहा है ?” यह सुन, सुताराने हमसे कहा,—“इस समय तुम्हारी कोई चेष्टा काम न करेगी; इसलिये तुम पौतनपुरके उद्यान-में जाकर घंतालिनी विद्याके द्वारा मोहमें पड़े हुए धीविजय राजाको होरानें लामो; क्योंकि वे सुतारा रानी हुई एक घंतालिनीके पीछे जान देनेको तैयार हो रहे हैं ।” सुताराकी यह बात सुन, हमने उद्यानमें जा कर राजाको चेत कराया है, जिससे तुरतही दुष्ट घंतालिनी विद्याका नाश हो गया । इसके बाद देवीका हाल सुनकर राजा धीविजय उनकी प्राप्तिका उपाय कर रहे हैं । उन्हींकी आज्ञासे मैं आप लोगोंको यह खबर देने आया हूँ । यह सुन स्वयंप्रभा देवीने उसका बड़ा आदर सत्कार किया । इसके बाद वह फिर राजा धीविजयके पास चला आया और वहाँसे संमिद्धोत्त तथा दीपशिखा राजाको रघनूपुर नगरमें ले गये । वहाँ राजा अमितेजने धीविजय राजाकी यही आज्ञाभंगत की और उनके आनेका कारण पूछा । यह सुन उन्होंने अपना सारा वृत्तान्त कह सुनाया । यह सुन अमितेजकी बड़ा क्रोध उत्पन्न हुआ और उन्होंने मरोचि नामक एक दूतको समझा-बुझाकर उसी समय

अशनिघोषके पास भेजा । उस दूतने अमरचञ्चा नगरीमें राजा अशनि-घोषसे जाकर कहा,—“हे राजन् ! आप मेरे स्वामीकी बहन और राजा धीविजयकी पत्नी सुताराको बिनासमझे बूझे यहाँ ले आये हैं; इसलिये उन्हें घुपचाप धीरेसे लौटा दीजिये, नहीं तो अनर्थ होजायेगा ।” यह सुन अशनिघोषने कहा,—“अरे दूत ! क्या मैं इस स्त्रीको लौटानेकेही लिये ले आया हूँ ! जो कोई इसे मेरे यहाँसे हटा ले जाना चाहता है, वह मेरी तलवारके घाट उतरना चाहता है, येमाही समझो ।” यह कह, अशनिघोषने दूतको गर्दनिया देकर निकलवा दिया । दूतने अपने नगरमें आकर अपने स्वामीको कुज कैफियत कहसुनायी ।

इसके बाद राजा अमिनतेजने राजा धीविजयकी दो विद्यार्थि-बालाएँ—पहली वर-शस्त्र-निवारिणी और दूसरी बन्ध-मोक्ष-कारिणी अर्थात् बन्धनसे छुड़ाने वाली । धीविजयने सात दिनों तक इन दोनों विद्यार्थियोंकी विधिपूर्वक साधना की । तदन्तर विद्यामें सिद्धि लाभकर, धीविजय शत्रुको जीतने लगे । उनके साथ-साथ अमिनतेजके रश्मि पैग आदि नैकड़ों पुत्र तथा और भी बहुतसे वीर जो अग्याग्य विद्यार्थियोंके बलसे बलवान तथा भुजबलसे शक्तिमान थे, बल पड़े । सब लोगोंके साथ राजा धीविजय अशनिघोषके नगरके पास आ पहुँचे ।

इसके बाद राजा अमिनतेज अपने सहस्र रश्मि नामक जेठे बेटेके साथ दूसरोंकी विद्याका भार करनेवाली महाशाला नामक विद्याकी साधना करनेके लिये हिमवान् पर्वत पर चले गये । वहाँ एक महीने का उपवास लेकर ये विद्याकी साधना करने बैठे ।

इधर अशनिघोषने राजा धीविजयके सैन्य-सहित आनेका समाचार सुन, अपने पुत्रोंको सैन्य लेकर लड़नेको भेजा । दोनों सैन्योंमें मयदुर युद्ध छिड़ गया । दोनोंमें से कोई सेना पीछे हटती हुई नहीं मालूम पड़ती थी । इसी प्रकार एक महीने तक लड़ते रहनेके बाद अमिनतेजके पुत्रों-ने अशनिघोषके बलवान् पुत्रोंको पराजित कर दिया । यह देख, अशनि-घोष स्वयं मैदानमें उतर आया । इस बार अशनिघोषने अमिनतेजके

पराक्रमी पुत्रोंको हरा दिया । तब अपनी सेनाको तितर-बितर होते देख, राजा धीविजय स्वयं संप्रान करनेको बागे बाये । क्रोधसे भरे हुए राजा धीविजयने खड्गके प्रहारसे अशनिघोषके दो टुकड़े कर डाले । मायावी अशनिघोषने षट्पट अपने दो रूप कर डाले । धीविजयने फिर इन दोनोंको काट डाला । तब चार अशनिघोष हो गये । इसी प्रकार बार-बार काटे जाते हुए अशनिघोषने अपनी मायाके प्रभावसे अपने सो रूप बना डाले । ज्यों-ज्यों राजा धीविजय उसपर प्रहार करते जाते, त्यों-त्यों उसके रूपोंको संख्या बढ़ती जाती थी । इससे राजा धीविजय उसका घृण करते-करते उकता गये । इतनेमें राजा अमिततेज अपनी साधनाकी सिद्धि करके वहाँ आ पहुँचे । अब राजा अमिततेजने अपनी विद्याके प्रभावसे अशनिघोषकी मायाका नाश कर दिया, जिससे वह धराधर भाग चला । उसे भागते देख, अमिततेजने अपनी विद्याको आह्वान दी, कि उस पापी अशनिघोषको दूरसे ही पकड़ लाओ । इस प्रकार आवा पाकर वह विद्यादेवी उसके पीछे पीछे चली । इधर सीमनग ६ नामक पर्वतपर धीरूपभदेवके मन्दिरके पासही यलदेवमुनिको कैवल्यज्ञान प्राप्त हुआ था, इसलिये देवगण उनका वन्दन तथा ज्ञानका उत्सव करनेके लिये भाये हुए थे । यह देख, अशनिघोष उन कैवलीकी शरणमें आ गिरा । इसीलिये विद्यादेवी वहाँतक आकर पीछे स्तिरी और अमिततेजके पास आकर सारा हाल सुनाने लगी । उसके मुँहसे सप कुछ सुनकर अमिततेजने अपने मर्तचि नामक दूतको बुलाकर कहा,—

‘हे दूत ! तুম अभी अमरचञ्चा नगरीमें जाकर वहाँसे सुतारादेवीको लिये हुए मेरे पास सीमनग-पर्वत पर चले जाओ ।’ यह कह, राजा अमिततेज, धीविजय तथा अन्यान्य सैन्य-सामन्तोंको साथ लिये हुए, राजे-गाजेके साथ, सीमनग-पर्वतपर यलदेवमुनिकी वन्दना करने भाये । सबसे पहले जिनैश्वरके मन्दिरमें आकर जिनेन्द्रकी स्तुति करनेके बाद धीविजय और अमिततेज यलदेवके पास भाये । इधर मर्तचि

“जे चिय विहिशा लिहिष, ते चिय परिणमद् सयनमोयम् ।

इय जायेउय धीत, विहुरे बि न कायरा हुंति ॥ १ ॥”

अर्थात्—“विघाताने जो कुछ माग्यमें लिख रखा है, वही सबको प्राप्त होता है। यही समझ कर धीर पुरुष विपद् पड़ने पर कायर नहीं होते।”

इस गाथाको पढ़कर धनदने अपने मनमें विचार किया,—“यह गाथा तो लाख मुहरोंको भी सस्ती है। फिर जब एक हजार मुहरों पर ही बंध रहा है, तो बड़ा सस्ता माल है, लेही लेना चाहिये।” यह विचार कर, उसने उस जुमारीको मुँहमाँगा मूल्य देकर यह गाथा ले ली और बार-बार उसे पढ़ने लगा। इतनेमें उसका पिता सेठ रत्नसार ला पहुँचा। उसने पूछा,—“बेटा ! आज तुमने कौनसा व्यापार किया ?” यह सुन पासकी दुकानोंके व्यापारी हँसते हुए बोले,—“सेठजी ! आज तो आपके बेटेने बहुत बड़ा व्यापार कर डाला है। उसने हजार मुहरें देकर एक गाथा मोल ली है। सचमुच यदि तुम्हारे पुत्रकी व्यापारमें ऐसी ही कुशलता बनी रही, तो यह घरकी पूँजीको बहुत बढ़ा देगा।”

लोगोंकी यह तानेजानो सुनकर सेठ जल गया और क्रोधके साथ अपने पुत्रसे कहने लगा,—“रे दुष्ट ! तू अभी यहाँसे चला जा। मैं तेरा मुँह देखना भी नहीं चाहता। सुना घर अच्छा, पर खोरोसे भरा हुआ घर अच्छा नहीं, तू पुत्र ही है तो क्या ! मुझे तेरी यह कार-रवाई पिलकुल ही नापसन्द है।”

इस प्रकारके अपमानयुक्त वचन सुनकर धनद उसी क्षण दुकानसे नीचे उतर आया और मन ही मन उस गाथाका अर्थ स्मरण करता हुआ चल पड़ा। नगरके बाहर हो, वह सार्यकालके समय उत्तर दिशामें एक वनमें आ पहुँचा। वहाँ निर्मल जलसे भरा हुआ एक बड़ा मारी सरोवर देख, उसीमें स्नान कर, वह पास ही एक घटघृक्षके नीचे पत्तोंकी सेज गिराकर सो रहा। इसी समय देवसंयोगसे एक धनुष

Handwritten text at the top of the page, possibly a title or header.



Handwritten text at the bottom of the page, possibly a signature or footer.

धारी शिकारी जब पीलेने लिये भाड़े हुए जानवरोंका शिकार करने-
की इच्छासे वहाँ आ पहुँचा ।

उसी समय सेठके देठेने मीढ़नें ही पड़े पड़े एकबार कण्ठ पड़ती, जि-
ससे हुं पड़े पड़गड़ा उठे । यह शब्द सुन, शिकारीने विचार किया, —
मालूम होता है, बोरों जंगली जानवर आ रहा है ।" ऐसा विचार कर उसने
उसी शब्दकी सीधपर धाप छोड़ दिया । यह धाप उस मोड़े हुए
सेठके पुत्रके पैरने आ लगा । निराना ठीक बैठे, यह जानकर यह
शिकारी उभे देगनेके लिये उसके पास भागा । शूनेने धापकी
छोट साये हुए धनदने सबलोंके मारे उल, गाधाका उद्धारण किया ।
यह सुनकर उस शिकारीने सोचा,—“आह ! यह तो मालूम होगा
है, कि मैंने पिना समझे दूधे जिसों धरे-मदि सोये हुए मुसाशिरकी ही
मार डाला ।” इस तरहकी धान मननें आते ही उसने उसके पास
आकर पूछा, —“हे भाई ! मैंने अनजानतेमें तुम्हें धापसे बिछ कर डाला
है । बरो तो तुम्हें कहां छोड़ भायो ? ऐसा कहकर उसने उसके पैरनेसे
धाप सींचकर निवाल लिया और उसके झुणपर मरहमपट्टी करने
लगा । सेठके देठेने उसे मरहमपट्टी करनेसे रोक्ते हुए कहा,—“भाई !
तुम करने घर चले जाओ ।” इस प्रकार सेठके पुत्रसे भागा पाकर
यह शिकारी अपने घर चला गया । श्वर सेठके देठेके पैरसे धून जारी
हो गया । बहुतरा धून निकलनेके कारण वह प्रातःकाल होते-होते
बेहोश हो गया । इसी समय एक भारण्ड पक्षी वहाँ आया और उसे
मरा हुआ समझकर उठाये हुए सनुद्रके दीर्घोर्ध्व एक द्वीपमें ले
आया । उसने ज्योंही उसे खानेका विचार किया, त्योंही उसने जी-
वनका कुछ चिह्न देख उसे वहाँ छोड़कर उड़ गया । इसके बाद उस द्वीप
की टट्टां टट्टां हवाके लगनेसे धनदको चेतना हो आयी । वह छड़ा
होकर चारों ओर देखने लगा देखते-देखते उसे एक निर्जन वन
दिखलाई दिया । उसने मननें विचार किया,—“मेरा नगर यहाँसे
कितनी दूर है ! यह भयकर वनही किस स्थान पर है ! अथवा

मेरे इस सोच-विचारका ही क्या नतीजा है ? देवकी चिन्ता ॥ कल-यान् है ।" इसी प्रकार सोचता-विचारता हुआ वह जंगलमें धुंधा गूण्णामे व्याकुल होकर फल और जलकी तलाशमें घूमने लगा । घूमते-घूमते उसने एक स्थानपर एक टूटे-फूटे घरोवाला सूत-सान नगर देखा । यह देखकर उसे बड़ा आश्चर्य हुआ । उसी उजड़े हुए नगरमें घूमन करते हुए उसने एक कुआँ देखा । बड़ी-बड़ी मुरिकलोंसे उस कुआँसे जल निकालकर उसने अपनी प्यास बुझायी तथा पेटलेके, कल आदि खाकर अपनी प्राणरक्षा की । इसके बाद वह भयके मारे उस नगरसे दूर जा रहा । इतनेमें सूर्य अस्त हो गया । अन्धकारसे सारा संसार ढँक गया । उस समय धनदने एक पर्वतके समीप जा वहीं भाग सुलगाकर ठंड दूर कीया और किसी तरह रात बिता दी । सपेरा होतेही उसने देखा, कि उसने रातको जहाँ भाग सुलगायी थी, वहाँकी भूमि सुवर्णमयी हो गयी है । यह देखते ही उसने अपने मनमें विचार किया, — "मुझे तो ऐसा मालूम पड़ता है, कि यह स्थान अवश्यही सुवर्णमयी है । कारण, अग्निका संयोग होनेही यहाँकी भूमि सुवर्णमयी हो गयी है ।" ऐसा निवार मनमें उत्पन्न होतेही उसने हर्षित होकर विचार किया, — "मैं यहाँ रहकर मोना निकालूँ, तो ठीक हो ।" इसके अनन्तर उसने पर्वतकी मिट्टी काट-काटकर अपने नामकी ईंटें बनायीं और उन्हें भागकी भट्टीमें पकाया । ये सब ईंटें सोनेकी हो गयीं । एक दिन धूमने घामने उसने पर्वतके निकुत्तमें रक्तों-का ढेर पड़ा देखा । वह उन रक्तोंको अपने सोनेके ढेरके पास ले भाया । धीरे-धीरे उसके पास बहुतसी सोनेकी ईंटें और रक्तोंका समूह हो गया । बेटे आदि पण्ड काकर ही वह जीवन निर्वाह करता खड़ा जाता था ।

एक समयकी बात है, कि सुदृष्ट नामका एक व्यापारी जहाज़में पैठ-कर वहाँ आया । उसके जहाज़में गदलेमें लेकर रखा हुआ अन्न और ईंधन खुद गया था, इसलिए उसने अपने आदमियोंको जल तथा ईंधन लेनेके लिए उसी द्वीपकी ओर भेजा । उन आदमियोंने वहाँ धनदको

देकर पूजा,—“भाई तुम कौन हो ?” बनने कहा,—“मैं तो बनकर हूँ ।” वे सब बोले,—“तुम हमें कोई जलाशय बतलाओ ।” इसपर धनने उन्हें कुमाँ दिखाना दिया । सारंगबाहने उन सेवकोंके कुएँके पास सोनेकी ईंटों और रत्नोंका ढेर पड़ा देकर धनसे पूजा,—“हे बनकर ! यह सब किसका है ?” उसने कहा,—“मेरा है । इस धनकी जो कोई स्थल-मार्गमें ले जायगा, उसको मैं इसका बीपार्ई हिस्सा दे दूँगा ।” इस तरहकी बातें हो ही रही थीं, कि उक्त व्यापारी भी वहाँ का पहुँचा और धनदको बड़ी विनयके साथ प्रणम्यकर, भाँसझून करते हुए, उससे कुशल-प्रश्न करने लगा । इसके बाद उसने धनदसे इस बातकी प्रतिज्ञा की, कि यह इस सारे धन-रत्नोंको उसके घर पहुँचा देगा । इसके बाद सारंगबाहने (व्यापारीने) अपने मौक्तिकोंसे उन सुनहरी ईंटों और रत्नोंको अपने जहाज़ पर लदवाया शुरू किया । धनद भी गिन-गिनकर ईंटों और रत्नोंको उनके हाथमें देने लगा । यह मगर सम्पत्ति देख, सारंगबाहके मनमें पाप जग और उसने अपने मौक्तिकोंको एकान्तमें बुलाकर कहा,—“इस मदमीकी उसी कुएँमें डबेल हो ।” इस प्रकार अपने स्वामीकी आज्ञा पाकर उन बादमियोंने धनदसे कहा,—“हे परोपकारी महात्मा ! हम लोग कुएँसे पानी खींचनेका हाल नहीं जानते । तुम्हें पहलेसे ही इसका बन्दास है । इसलिये हमको हमें धाड़सा अनुकूलसे निकाल दो ।” यह सुनकर, धनद दयाके मारे कुएँसे पानी खींचने लगा । इतनेमें मीठा पाकर उन दुष्टोंने उसे कुएँमें डबेल दिया । दैवयोगसे यह दलोंसे मरे हुए उस कुएँकी मेखता दर हो गिरा, पानीमें नहीं गिरने पाया । सीनाम्पसे उमड़े जल भी छोट नहीं आती ।

अब तो धनद उसी गायिकाको पाल करता हुआ कुएँके दरिद्री बड़ाई देने लगा । अकस्मात् एक स्थान पर मुकाली नहर आयी । चँदु-हलके मारे यह उसीके मन्दर घुस पड़ा । मन्दर जाकर रेतसे मालूम करता हुआ यह उसी मार्गसे बहुत नीचे उतरा घूम घूम । पानी जाकर उसे सनतत मार्ग मिला । उसी मार्गसे बाहरके साथ आते-आते

उसे कुछ दूर पर एक देवमन्दिर दिखाई दिया । वह उसके मन्दिर बसा गया । देवमन्दिरके भीतर उसे गङ्ग-याहिनी, चक्रायुध-धारिणी, महिमामयी एक श्वरी देवी दिखलाई पड़ी । उन्हीं देखकर वह दोनों हाथ-ओढ़े मक्तिके साथ अपनी विचक्षण धाणीमें इसप्रकार देवीकी स्तुति करने लगा,—“हे धीमिपम स्वामीकी शासन देवी ! भयदुर कष्टोंको हटने लासी ! अनेक मक्तोंको समस्त सम्यति प्रदान करनेवाली ! तुम्हारी जय हो । आज इस दुःखमें मुझे तुम्हारे दर्शन हुए । अब तुम्हीं मुझे अपने घरमें शरण दो ।” उसके इन मक्तिपूर्ण वचनोंको सुनकर देवीने प्रसन्न होकर कहा,—“हे वत्स ! भागे चलकर तेरा सब प्रकारसे भला ही होगा । भयदुर, तू इस समय मुझसे कुछ माँग ।” यह सुन, धनदने कहा,—“हे देवी ! तुम्हारे दर्शनोंसे ही मुझे सब कुछ मिल गया । अब मैं क्या माँगूँ ?” उसके ऐसा कहने पर समुष्ट होकर देवीने उसके हाथमें बड़ेही प्रभाव-शाली पाँच रत्न दिये और उनका प्रभाव इस प्रकार बतलाया,—“देख, इसमें से एक रत्न तो सौभाग्यका दाता है, दूसरा लक्ष्मी देनेवाला है, तीसरा रोग-हारक है, चौथा विषका प्रभाव नष्ट करनेवाला है और पाँचवाँ सब कष्टोंका निवारण करने वाला है । इस प्रकार उन रत्नोंका प्रभाव बतलाकर, उनकी भलग-भलग पहचान कराकर देवी अन्तर्धान हो गयी । धनद उन रत्नोंके गुण चित्तमें धारण कर भागे बढ़ा । थोड़ी दूर जाते-ज-आते उसे एक स्थानपर व्रण (घाव) भयङ्गा करनेवाली संरोहिणी नामकी भीषणि मिली । उसे भी उसने अपने पास रख लिया । इसके बाद उसने अपनी अंग्रा धीरकर उसीमें उन पाँचों रत्नोंको रख दिया और उसी संरोहिणी भौगणिके द्वारा उस व्रणको भच्छा कर लिया । वहाँसे भागे बढ़ने पर, उसे एक पातालनगर दिखाई दिया । उसने उस नगरमें प्रवेशकर देखा, कि उसमें खाने-पीनेके सामानोंसे भरे हुए घरों और दुकानोंकी धेणी तो मौजूद है, पर कहीं कोई धादमी नहीं नज़र आता । भागे चलकर उसने क़िला, फाटक और ज़िहकियोंसे सुरोमित एक बड़ा भारी राजमहल देखा । उसके मन्दर प्रवेशकर जब वह उसके

सातवें बरुड पर पहुँचा, तब वहाँ एक बालिकाको देख, उसे बड़ा विस्मय हुआ । इतने में वह बालिका उससे पूछ बैठी,—“हे सत्पुरुष ! तुम यहाँ कहाँसे आ रहे हो ? हे भद्र ! सुनो—यहाँ तुम्हारे प्राणों पर संकट आनेकी सम्भावना है, इसलिये यदि तुम जीना चाहते हो, तो भटपट यहाँसे कहीं अन्यत्र चले जाओ ।” यह सुन, धनदने कहा,—“भद्र ! तुम श्रेय न करो । मुझे मरना प्योरेवार हाल कह सुनाओ । यह नगर धनतान क्यों है और तुम कौन हो, यह पतलाओ ।”

यह सुन, धनदके रूप और धैर्यको देख, आश्चर्यमें पड़ी हुई वह बालिका बोली,—“हे सुन्दर ! यदि तुम्हारी यह जाननेकी यड़ीही अभिलाषा है, तो सुनो—

“इसी भरतक्षेत्रमें धीतिलक नामका एक नगर है । उसमें महेंद्रराज नामक राजा राज्य करते थे । वही मेरे पिता थे । एक बार उनके राज्यके समीपवर्षी शत्रुराजाओंने उनपर चढ़ाई की और उन्हें हरा डाला । इसी समय एक घैतालने आकर स्नेहके साथ राजासे कहा,—“हे राजा ! तुम मेरे पूर्व जन्मके मित्र हो, इसलिये तुम मेरे योग्य कोई काम बतलाओ । कहो, मैं तुम्हारी कौनसी मलाई करूँ ? यह सुन राजाने कहा,—“हे मित्र ! तुम मेरी सहायता करो, जिससे मैं अपने शत्रुओंको हरा सकूँ ।” यह सुन घैतालने कहा,—“मैं तुम्हारे शत्रुओंको मार गिरानेमें असमर्थ हूँ ; क्योंकि मुझसे भी अधिक बलवान घैतालगण उनके मददगार हैं, पर हाँ, मैं और तरहसे तुम्हारा मदद कर सकता हूँ ।” यह कह, वह घैताल उस नगरके सब लोगोंके साथ मेरे पिता और उनके परिवारको यहाँ ले आया । उसीने इस पाताल नगरकी रचना की । उसने एक कुएँके अन्दरसे इस नगरमें आने-जानेका मार्ग बनाया । उस कुएँकी रक्षाके लिये उसने बाहरके हिस्सेमें एक दूसरा नगर भी बस गया । इसके बाद जहाँजहाँमें भर-भरकर यहाँ सामान पहुँचने लगे । इस तरह सब लोग सुखसे रहने लगे । कुछ दिन इसी प्रकार बीत जानेके बाद, एक राजस कुएँकी राहसे यहाँ आ पहुँचा । वह दुष्ट माँसका सोभी था । वह

कमरा' इस नगरके निवासियोंको आने लगा । कुछ ही दिनोंमें उसने इस नगरके सब मनुष्योंका सफाया कर दिया । इसके बाद वह बाहरवाले नगरके लोगोंको घट करने लगा । इसलिये वे लोग जहाज़ पर चढ़-चढ़कर भागने लगे । इस तरह उस वुष्ट राक्षसने दोनों नगर जलाइ डाले । हे साहसिक ! उसने एक मात्र मुष्कको ही विवाह करि ली । इससे छोड़ रही है । उसने मुष्कसे आज्ञासे सात दिन पहले कहा था,—“मत्रे ! मैं बड़ाही मयदुर राक्षस हूँ । मैं मनुष्यके मांसके शोभसे ही वहाँ आया था और तुम देखही रही हो, कि मैंने समस्त पुर-जनोंका नाश कर डाला है । मरि एकही कारण वेसा है, जिससे मैंने तुम्हें जीता छोड़ दिया है ।” उसकी यह बात सुनकर मैंने पूछा,—“वह कारण क्या है ?” वह बोला,—“आजके सातवें दिन बड़ाही भयंकर शुभ-भद्र पुनः लग्न है । इसी दिन मैं तुम्हारे साथ विवाह कर तुम्हें अपनी पत्नी बनाऊँगा ।” हे मत्रे ! आजही यह सातवाँ दिन है और उस राक्षसके आनेका समय भी हो गया है । जब तक यह वहाँ आये तब तक तुम वहाँसे दल जाओ, यह मुन. धनदने कहा,—“हे मुग्धे ! तुम तनिक भी भय मन करो । वह वुष्ट मेरे हाथों भाग जायगा ।” बाळिका बोली,—“यदि दिनी बात है, तो जो, मैं तुम्हें उसके मारनेका डीक समर्थ बनलाये दूँगी । जिस समय वह विवाहका वृत्तन करने बैठे, उसी समय तुम उसे मार डालो । जब समय वह न बोलपाव करता है, न बड़कर कहा होता है । इसी अवसरमें तुम मेरे आदेश इस समूह उपराने करना ।”

वे दोनों इस प्रकार बातें करही रहे थे, कि वह राक्षस हाथमें एक मनुष्यकी लाश जिई हुए आया । वहाँ धनदनी बेंठा देखकर दगने इस कर कहा,—“महा ! आज तो बड़े अचरजकी बात देखनेमें आ रही है । मेरा वश्य आजसे भय मेरे घर आ पहुँचा है ।” इस प्रकार अथवा पूरे वयन करकर उसने लाशको नीचे रख दिया और विवाहका वृत्तन करने लगा । इसी समय धनदने काहु खींचकर कहा,—“टहर जा, पत्नी ! आज मैं मेरा अन्तर्गत ही बिदे देना हूँ ।” इसकी वदवान सुनकर मैं वह राक्षस

मन्त्राहके साथ हँसता रहा । वह पूजा पर बैठाही रहा और धनदने लड़का ऐसा बार किया, कि वह यमराजके घर जा पहुँचा । इसके बाद उसी शुभ समयमें उसकी लायी हुई सानप्रियोंका उपयोग करते हुए धनदने उस तिलकुन्दरी नामक बालिकासे विवाह कर लिया । उसके साथ रहकर भोग-विलास करता हुआ, वह कुछ दिनों तक बहो रहा ।

इसके बाद वह स्त्री, रत्न-सुवर्ण तथा उत्तमोत्तम वस्त्र-आदि मन्त्रो-क्त पदार्थोंको साथलिये हुए उसी कुरमें जा पहुँचा । इसके बाद पंछे सौटकरउत्तने और भी अपनीपसन्दकी चीज़ें लेलीं और भक्तिपूर्वक आकर शक्रोभरी देवीको प्रणाम कर उस कुरमेंको मेसला पर आ पहुँचा । इतनेमें उस द्वारके पास एक जहाज़ आया । उस जहाज़के बादमी उसी कुरसे उल लेने आये । उन्होने कुरमें रस्ती डाली । धनदने उस रस्तीको पकड़कर कहा,—“मायो ! मैं कुरमें गिर पड़ा हूँ, कृपाकर मुझे बाहर धीव लें ।” यह सुनकर उन आदमियोंने यह बात बसने स्वामीदेवदत्त नामक सार्यबाहसे कही । वह भी कौशुलके मारे वहाँ जा पहुँचा । इसके बाद उत्तने उस रस्तीमें एक छेदीली खटोली बाँधकर लटकाम्यी । उसी पर चढ़कर धनद कुरमेंसे बाहर निकला । उसका यह सुन्दर रूप और उत्तन वस्त्र-भूषण देख, विस्मित होकर सार्यबाहने पूछा,—“नन्द ! तुम कौन हो ? कहाँसे आये हो ? और इस कुरमें कैसे गिर पड़े, इसका हाल बताओ ।” धनदने कहा,—“हे सार्यबाह ! मेरी स्त्री भी इसी कुरमें गिर पड़ी है; उसे भी बाहर निकालना चाहिये । साथ ही मेरे रत्न-लङ्कार आदि भी इसी कुरमें पड़े हुए हैं । पहले इन सबको बाहर निकलवाइये, पंछे मैं अपना साथ हाथ आपसे रुँपा ।

यहसुन उस सार्यपतिने कहा,—“हे नन्द ! तुम कुरमेंसे सरनी स्त्री और सनस्त वस्तुओंको बाहर निकाल लो ।” धनदने ऐसाही किया । तिलकुन्दरीको देख, सार्यबाह हँस-हँस-सा हो गया । इसके बाद सार्यबाहने सब धनदसे उत्तकी रत्न-लङ्गनी पूछा, तब उत्तने कहा,—“हे

सार्यपति ! मैं भरतक्षेत्रका रहनेवाला हूँ । आतिका, बणिक हूँ । मैं धन-उपाजन करनेके लिये, अपनी प्रियतमाके साथ जहाज़ पर सवार हो, कटाह-द्वीपकी ओर चला आ रहा था । देवयोगसे मेरा जहाज़ समुद्रमें दूट गया और मैं ली सहित वहीं आ-निकला । व्याकुल होकर मेरी ली जलकी तलारमें घूमती-घामती, इसी कुर्र के पास आयी और काँककर पानी देखते-देखते कुर्र में गिर पड़ी । मैं भी उसके स्नेहके मारे उसके पीछे-पीछे कूद पड़ा, पर भाग्यसे हम दोनों कुर्र की मेखला पर ही रहे, पानीमें नहीं गिरे । इस कुर्र में रहने वाली जल देवीने प्रसन्न होकर मुझे बहुतसे रत्नालङ्कार भादि दिये और यह कहा, कि कुछ दिन बाद यहाँ एक जहाज़ आयेगा । तुम उसीपर बैठकर सुखसे अपने घर चले जाना । भाई सार्यबाह ! यही तो मेरी रामकहानी है । अब तुम कुछ अपनी कथा सुनाओ, जिससे परस्पर प्रीति बढ़े ।

यह सुन, देवदत्तने कहा,—“हे भद्र ! मैं भी भरतक्षेत्रका ही रहने वाला हूँ । मैं भी कटाह-द्वीपसे लौटा हुआ अपने घर आ रहा हूँ । तुम खुशीसे मेरे साथ चलो, हम लोग एक साथ चले आयेगे, तुम अपनी प्रिया और समस्त वस्तुओंको मेरे जहाज़ पर बड़ा दो ।”

उसकी यह बात सुन, धनदने कहा,—“बख्शी बात है । ऐसा ही करो । भाई सार्येश ! यदि मैं अपने घर पहुँच गया तो इन रत्नोंमेंसे छठा हिस्सा तुम्हें दे-ढालूँगा ।” यह सुन, सार्यबाहने कहा,—“भाई ! यह असर धन तो कोई चीज़ नहीं है, तुम्हारी यह मक्ति ही सब कुछ है ।”

इसके बाद सार्यबाहने उसकी कुल चीज़ें अपने जहाज़ पर लदवा दी, जहाज़ भागे पड़ा । रास्तेमें उस दुष्टात्मा सार्यबाहका चित्त ली और धन देखकर डायॉडोल हो गया और यह धनदको धुराई करनेको प्रताक हो गया । एक दिन रातके समय धनद शीघ्र आनेके लिये मञ्च पर बैठा था, उस समय सब लोग सो रहे थे । इसी समय सार्यबाहने चुपचाप उसके पास आकर उसे मञ्च परसे समुद्रमें ढकेल दिया । कुछ दूर भागे बढ़ने पर सार्यबाहने शोर मचाना शुरू किया । भाइयो ! मेरे प्राणप्रिय

(2d. 517.) I have been very much interested in the history of the



बैठा कर अपने नगरको देखना आरम्भ किया । इतनेमें एक बड़ी भारी मछली तल्लेके सांघही उसको निगल गयी । उस समय मछलीके समान उस मछलीके पेटमें पड़ा हुआ धनद सोचने लगा,— “हे जीव ! यह सब तुम्हारे मसीबका खेल है । इसलिये तुम और न कुछ करो, केवल बसी गाथाको याद किया करो । ” इस प्रकार विचार करनेके बाद उसने आपत्ति निवारण करनेवाली मणिका स्मरण किया । उसके प्रभावसे मछुदने बसी क्षण उस मछलीको पकड़ लिया । इसके बाद मछुदोंने उसे एक जगह किनारे पर छे जाकर उसका पेट काढ़ डाला । पेट फटते ही मछुदोंने उसके अन्दर एक पुरुषको देखा, मनमें बड़ा आश्चर्य माना । तदनन्तर उसे बाहर निकाल, पानीसे नहला कर, लकड़ कर, उन लोगोंने उस नगरके राजाको यह सारा हाल कह सुनाया । राजाको भी यह कहानी सुनकर बड़ा अचम्भा हुआ और उन्होंने उसी समय धनदको अपने पास बुलाकर पूछा,— “हे मद्र ! यह अचम्भा क्योंकि हुआ ? तुम कीन हो ? इस मत्स्यके उदरमें तुम कैसे चले गये ? यह सब सब-सब कह सुनाओ, क्योंकि मुझे इस बातका बड़ा भारी आश्चर्य हो रहा है । ”

धनदने कहा—“महाराज ! मैं आतिका बनिया हूँ । जहाँ दूर जामेगर मैं उसके एक तल्लेके सहारे किनारे भा गया । इतनेमें एक मछली मुझे निगल गयी । मछुदोंने उसे पकड़ कर उसी क्षण उसका पेट काढ़ डाला और मुझे उसके अन्दर देखा, विस्मित हो आपके पास छे आये । यही बात है । ”

इसके बाद राजाने उसे सोनेके पानीसे नहलवा कर शुद्ध बनावा और उसकी सुन्दरताके कारण उसे अपने पास रख लिया । उसी दिन उन्होंने उसका नाम मत्स्योदर रखा, जो वास्तवमें यथार्थ ही था, उसीकी प्रार्थनाके म्नुमार राजाने उसे अपना पानकवास बनाया । इसने बिना अपना असल हाल किसीसे कहे, वहाँ बहुतना समय बिता दिया ।

एक दिन धनदका भविष्य करनेवाला सुदृढ नामका व्यापारी

बैठा कर अपने मगरको देखना आरम्भ किया । इतनेमें एक बड़ी भारी मछली तल्लेके साथही उसको निगल गयी । उस समय मगरके समान उस मछलीके पेटमें पड़ा हुआ धनद सोचने लगा,— “हे जीव ! यह सब सुन्दारे नसीबका खेल है । इसलिये तুম भीर न कुछ करो, केवल उसी गार्गीको याद किया करो । ” इस प्रकार विचार करनेके बाद उसने आपत्ति निवारण करनेवाली मणिका हस्तगत किया । इसके प्रभावसे मछुएने उसी क्षण उस मछलीको पकड़ लिया । इसके बाद मछुओंने उसे एक जगह किनारे पर ले जाकर उसका पेट काट डाला । पेट फटते ही मछुओंने उसके अन्दर एक पुरुषको देखा, मनमें यद्वा भावार्थ माना । तदनन्तर उसे बाहर निकाल, पानीसे नहला कर, स्वस्थ कर, उन लोगोंने उस मगरके राजाको यह सारा हाल कह सुनाया । राजाको भी यह कहानी सुनकर बड़ा भयम्मा हुआ और उन्होंने उसी समय धनदको अपने पास बुलाकर पूछा,— “हे भद्र ! यह भयम्मा क्योंकर हुआ ! तুম कीन हो ! इस मरस्यके उदरमें तুম कैसे चले गये ! यह सब सच-सच कह सुनाओ, क्योंकि मुझे इस बातका बड़ा भारी भावार्थ हो रहा है । ”

धनदने कहा,—“महाराज ! मैं जातिका बनिया हूँ । जहाँ मैं जानेपर मैं उसके एक तल्लेके सहारे किनारे आ गया । इतनेमें एक मछली मुझे निगल गयी । मछुओंने उसे पकड़ कर उसी क्षण उसका पेट काट डाला और मुझे उसके अन्दर देखा, विस्मित हो आपके पास ले आये । यही बात है । ”

इसके बाद राजाने उसे सोनेके पानीसे नहलाया कर शुद्ध बनाया और उसकी सुन्दरताके कारण उसे अपने पास रख लिया । उसी दिन उन्होंने उसका नाम मरस्योदर रखा, जो वास्तवमें यथार्थ ही था, उसीकी प्रार्थनाके अनुसार राजाने उसे अपना पानखवास बनाया । इसने बिना अपना असल हाल किसीसे कहे, वहाँ बहुतसा समय बिता दिया ।

एक दिन धनदका भविष्य करनेवाला सुदृष्ट नामका व्यापारी

गान्धिनाराय चरित्र—१२४



सार्धवाहने कहा,— “तू किसी दिन एकाममें राजासे जाकर कह दे, कि यह मत्स्योदर तो मेरा भाई है । यह सुन, उसने बहुत सार्ध-वाहकी बात स्वीकार कर ली । इस पर प्रसन्न होकर, सार्धवाहने उस बग़्गलको धार जोड़ी सोनेकी ईंटें लाकर दे दीं । उन्हें घर लें जाकर यह बग़्गल गायक समामें बेठे हुए राजाके पास आकर गाना सुनाने लगा । उनके मन्त्रीनसे प्रसन्न होकर राजाने पानप्यासको बुझा दिया, कि इस उत्तम गायकको शीघ्रही पान खिलाओ । इस प्रकार राजाका बुझा पाकर ज्योंही धनद उठे पान देने गया, त्योंही यह गीतरनि नामक कुन्ड गायक, धनदके गलेसे चिपट गया, और बोला,— “भाई ! आज कितने दिन बाद मिले मुझको देखा !” यह कह, यह अनिराय चिलाप करने लगा । यह देख, राजाने उससे पूछा,— “मत्स्योदर ! यह गायक क्या कह रहा है ?” इस पर मन-ही-मन उगाध चिन्तनाकर धनदने कहा,— “महाराज ! यह जो कुछ कह रहा है, यह सच ठीक है ।” राजाने पूछा, “क्योंकर ठीक है, बताना ।” इसके उत्तरमें धनदने राजाको एक मन गदगद क्या कह सुनायी । उसने कहा,— “महाराज ! पढ़ते इस नगरमें मेरे पिता, जो बग़्गल थे और गीत बोलामें बड़े ही निपुण थे, वे स्वामीके पत्र दयापात्र थे । उनके दो शिष्य थे । उनके इमी दोनों पुत्र थे । मेरी माताको पिता कम प्यार करने थे, इसलिये मैं भी उनका सेना प्यारा नहीं था । इसकी मैं उनकी बड़ी प्यारी-बुलारी थी, इसलिये यह भी उनका बड़ा लाहला था । मेरे पिताने मविष्यतका विचार कर मेरी जंघामें पाँच रत्न छिपाकर रख दिये, और जंघाके अन्तर्गत बहुत मन्त्रमन्त्र पढ़ी देकर अथवा कर दिया । इसके बाद मेरे पिताने मुझमें कहा,— ‘दे रत्न ! यदि कदापि तू मुझसे दूरे दिन आवे, तो इन रत्नोंको निकालकर इन्हींमें सरना काम बलाना ।’ यही कहकर उन्होंने मुझे कुछ कर दिया । तदनन्तर वह उनका अन्तर्गत प्यारा था, इसलिये पिताने इसके सारे शरीरमें रत्न भर दिये ।” यह कह, धनदने राजाके मनमें विश्वास उत्पन्न करनेके इरादों मन्त्री

जंघा विदीर्ण कर अपने छिपाये हुये पाँवों रत्नोंको निकाल कर राजा-
को दिखला दिया । उन महा मूल्यवान रत्नोंको देखकर राजाको बड़ा
आश्चर्य हुआ । उन्होंने उन्नी समय अपने सिपाहियोंसे कहा,—“तुम
लोग इस गीतरतिका भी शरीर काट कर रत्नोंको निकाल कर मुझे
दिखलानो ।” यह सुनते ही गीतरतिके देवता कूच कर गये और उसने
डरके मारे कहा,—“हे स्वामिन् ! न तो यह मेरा भाई है, न मैं इसे
पहचानता हूँ, न मेरे शरीरमें रत्न भरे हुए हैं ।” यह येला कही रहा
था, कि राजाके सेवक उसकी देरसे रत्न निकालनेके लिये तैयार हो
गये । अचानक यह फिर कहने लगा,—“महाराज ! मैंने जो कुछ कहा
है, वह सगसर सच है । सुदत्त सार्यवाहने मुझे सोनेकी ईंटें देकर
मुझसे यह पाप-कर्म करवाया है । हे देव ! यदि आपको मेरी बातका
विश्वास न हो, तो मेरे घरसे उन ईंटोंको मँगवा कर दिल्जनाई कर
लें ।” यह सुन राजा मत्स्योदरका मुँह देखने लगे । यह देख,
उसने कहा,—“भनो ! इसकी यह बात ही ठीक है ।” राजाने कहा,
“मत्स्योदर ! अब तुम मुझे सब सच्चा हाल कह सुनाओ ।” मत्स्यो-
दरने कहा,—“हे नरेश्वर ! उस घण्टिके जहाज़में मेरी आठसौ जोड़ी
सोनेकी ईंटें और पन्द्रह हजार निर्मल रत्न हैं । उन ईंटोंके मन्दर मेरे
नामका चिह्न भी अङ्कित है ।” यह कह उसने राजासे अपना नाम आदि
बतलाते हुए अपना बहुत कुछ वृत्तान्त कह डाला । यह सुन, राजाने उस
चरडालके घरसे बँचारे जोड़ी सोनेकी ईंटें मँगवायीं और उनको तुड़वाकर
घनदत्त नाम भी खुदा हुआ देख लिया । तत्काल राजाने उस घण्टिके
और चरडालका वध करनेका हुक्म दे डाला : पर कृपालु मत्स्योदरने
उन्नी समय उन दोनोंका प्रापन्निष्ठा मँग ली । इसके बाद राजाने
सोनेके जलसे उसे फिर स्नान करवा कर पवित्र करवाया और उस
घण्टिके तथा चरडालके पान उसका जो कुछ-घनरत्न था, वह सब मँग-
वाकर घनदत्तको दे दिया । घण्टिके तथा चरडालकी उचित शिक्षा मिली
और घनद वह सारी लक्ष्मी पाकर घनद (डूबेर के समान हो गया) ।

एक बार राजाने एकान्तमें धनदत्ते पूछा,— “हे मत्स्योदर ! तुम अपना सारा वृत्तान्त मुझसे सच-सच कह डालो । ” उसने भी राजा से अपना सारा कष्टा चिन्ता इस प्रकार कह सुनाया,— “मैं इसी नगर के ररस सेठ रत्नसारका पुत्र हूँ । मैंने एक हजार सोनेकी मुहरें देकर एक गांधा मोल ली थी, इसीलिये मेरे पिताने मुझे घरसे निकाल दिया और मैं देशान्तरमें खला गया । ” इसी प्रकार उसने अपनी और-और बातें भी राजाको बतलायीं । तदनन्तर कहा, कि—“स्वामी ! अभी आप मेरा मंएडाफोड़ न करें ; क्योंकि मेरी छो और घनादिका हरण करनेवाला वैद्यदत्त नामका सार्वयाह भी, सम्भव है, किसी दिन यहाँ आ पहुँचे, तो मेरा मनोरथ सिद्ध हो जायेगा । ” यह कह उसने राजाको प्रसन्न कर लिया और बड़े आनन्दसे उनके पास ही रहने लगा ।

भाग्य योगसे एक दिन वैद्यदत्त सार्वयाह भी वहाँ आ पहुँचा । यह भी भेंट लिये, तिलकसुन्दरीके साथ राजसभामें आया । राजाने भी उसे पहचान कर उसका भली भाँति आदर-सत्कार किया । मत्स्योदर भी वस सार्वयाह और अपनी स्त्रीको पहचान कर, उनका अभिप्राय जाननेकी इच्छासे एक ओर छिप रहा । उसी समय राजाने बड़े आदरसे सार्वयाहसे पूछा,— “हे मद्र ! तुम कहाँसे आ रहे हो ? और तुम्हारे साथ यह बालिका कौन है ? ” उसने कहा,— “हे राजन् ! मैं कटाहद्वीपसे खला आ रहा हूँ । मैंने इस बालिकाको एक द्वीपमें भकिकी पड़ी पाया है । मैंने इसे श्रेष्ठ वस्त्र, अलङ्कार, आहार और ताम्बूल आदिसे परम सन्तुष्ट कर रखा है । अब यदि आपकी आज्ञा हो जाये, तो मैं इसे अपनी पत्नी बना लूँ । ” यह सुन, राजाने उस बालिकासे पूछा,— “बालिके ! तुम्हें यह घर पसन्द है या नहीं ? कहीं यह तुम्हारे ऊपर बलात्कार तो नहीं करना चाहता ? ” यह सुन, बड़े धोली,— “इस बापीका तो मैं नाम भी लेना नहीं चाहती, क्योंकि इसने मेरे गुणरूपी रत्नोंकी निधिमें समान स्वामीको समुद्रमें डाल दिया है । इस दुष्टमाने मुझसे मिलनेकी कितनी इच्छा की, मेरी

कितनी प्रार्थना की, तब मैंने अपने शीलकी रक्षा करनेके विचारसे, इसे यह उत्तर दिया, कि यदि राजाकी आज्ञा होगी, तो मैं तुम्हारी स्त्री हो जाऊँगी । इस तरह इसे धोखेमें रखकर मैंने इतने दिनों तक अपनी शीलकी रक्षा की । अब मैं अपने पतिसे वियोग हो जानेके कारण अग्निमें प्रवेश करना चाहती हूँ ।" यह सुन, राजाने कहा,—“भद्रे ! तुम मरनेका विचार छोड़ दो, मैं तुम्हें तुम्हारे स्वामीसे मिला दूँगा ।” वह बोली,— “महाराज ! आपको मेरे साथ हँसी नहीं करनी चाहिये । मेरे स्वामीको तो इस सार्यवाहने समुद्रमें फेंक दिया । अब वे कहाँसे मिलेंगे ?” इसके बाद राजाने ताम्बूल देनेके लिये धनदको धुलवाकर सुन्दरीसे कहा,— “सुन्दरी ! लो, अपनी आँखों अपने स्वामीको देख लो ।” यह सुन, तिलकसुन्दरीने धनदकी ओर देखा और उसका यहाँ आना एकदम असम्भव समझ कर मन-ही-मन बड़ा आश्चर्य माना । इतनेमें धनदने कहा,— “हे स्वामी ! इसका स्वामी वही हूँ, जो न जाने कहाँसे अकस्मात् इसके महलमें आ पहुँचा और जिसे इसीने राक्षसका विनाश करनेके लिये पकड़ दिया था । फिर उसी खड्गसे उस राक्षसको मारकर उसने स्नेहपूर्वक इसके साथ विवाह किया था ।” इस प्रकार जब धनदने भाद्रिसे सन्त तपस्वी कुल घातें कह डालीं, तब वह बड़ी प्रसन्न हुई और राजाकी आज्ञासे मत्स्योदरकी पत्नी बनकर रहने लगी । पीछे राजाने सार्यवाहको बतल करनेका हुक्म दिया । परन्तु दयालुताके कारण धनदने उसको भी छुड़ा दिया । इसके बाद उस सार्यवाहने धनदके जो सब अलङ्कारादिक मनोहर वस्तुएँ ले ली थीं, वह राजाको दिखला दीं । राजाने वह सब चीजें धनदको दिलवा दीं ।

इसके कुछ दिन बाद राजाकी आज्ञा लेकर धनद अपने साथ बहुतसे भादमी लिये हुए अपने विनाश के घर आया । उस समय सेठ गन्तसारने उस राजासे सम्मानित पुरस्कारों घर आया देख, उसे आसन भादि देकर उसका बड़ा आदर सम्भार किया । इसके बाद सेठने कहा,—

“मे घन्य हूँ और घन्य है मेरा यह घर, कि तुम राजासे सम्मानित पुरुष होकर भी इस घरमें पधारो । मेरे योग्य जो कोई काम-काज हो, यह बनलाओ । मेरे घरमें जो कुछ है, सब तुम्हारा ही है ।” यह सुन, धनदने कहा,—“पिताजी ! आपने जो कुछ कहा, यह सब सच है; परन्तु मैं जो पूछता हूँ उसका जवाब दीजिये । सेठजी ! आप यह तो कहिए, कि आपका जो धनद नामका पुत्र था, यह कहा गया और आपको उसका कुछ समाचार मालूम है या नहीं ? यह किसी निश्चित स्थानपर है या नहीं ?” यह सुन, सेठने उठे अपनेही पुत्रकी सूरत-शकलका देख, मन-ही-मन विचार कर इस प्रकार अपने पुत्रका वृत्तान्त निवेदन किया,—“एक दिन मेरे पुत्रने दृष्टार मुहरें देकर एक गाथा मोल ली थी, इस पर मैंने क्रोधमें भाकर उसे कुछ जरी-फोंटो सुनायी, जिससे उसके मनमें बड़ा दुःख हुआ और यह अस्मि-मानके मारे मेरा घर-घाट छोड़, कहींको खल दिया । अथसे यह गया है, तबसे मुझे उसका कोई हालचाल नहीं मालूम । अब मैं भावति और बोल-चालको मिलाता हूँ, तो ऐसा मालूम पड़ता है, कि वही तुम्ही तो नहीं हो; परन्तु तुमने अपने आपको ऐसा छिपा रखा है, कि मनमें संशय पैदा हो जाता है । क्योंकि दुनियाँमें एकसी सूरत शकलके बहुतसे आदमी होते हैं । इसीलिये मुझे यह लयाल होता है, कि तुम मेरे पुत्रकेसे आकार-प्रकारवाले कोई दूसरे मनुष्य हो ।”

सेठकी यह बात सुन, धनदने कहा,—“पिताजी ! मैं ही आपका यह पुत्र हूँ ।” यह सुन, सेठने उसके दाहिने पैरका निशान देख, उसे ठीक ठीक पहचान लिया । धनदने भी विनयके साथ पिताके चरणों-में सिर झुकाया । सेठने अत्यन्त प्रेमके वशमें हो उम्मे गाढ़ालिङ्गन कर, हृषिके भाँसू भाँसोंमें भरे हुए गदगद कंठसे कहा,—“पुत्र ! तुम इसी नगरमें थे और अपनेको यों छिपाये हुए थे, क्या तुम्हें किसी दिन माँ-बापसे मिलनेकी इच्छा नहीं होती थी ? पुत्र ! तुम इतने दिनों तक कहाँ रहे ? परदेशमें रहकर तुमने क्या क्या सुख-दुःख उठाये ?

दिनारे इस प्रकार पृथ्वी पर धनदही भी कहीं नर भायी । उसने
 लंछेनमें अपना साथ वृत्तान्त माना-दिनाकी यह सुनकर और उससे
 समा मिली । इसके बाद फिर उसने अपने जितासे कहा,—‘जिनाजी !
 तार मुझे राजाके दरवासे पहुँचा दिया था शंखिदे, जिनमें मैं आरजी पुत्र-
 दण्डके साथ आपसे घर आकर रहने लूँ ।’ यह सुन, सेठ स्वामाजी
 बड़े हर्षसे साथ राजसभामें आकर पुत्रमहिम राजाकी भोजनका निम-
 न्नप दिया । पन्द्र भरती जिनाके साथ हाथी पर सवार हो, राजाके
 साथ-ही-साथ बड़ी धूमधामसे अपने घर आया । उस समय सेठने
 अपने देशान्तरसे लौटे हुए पुत्रके आने और राजाके अपने घर भोजन
 करनेके निमित्त पधारनेके कारण बड़ी खुशी मनायी और गुरु धूमधाम
 की । राजाने भी बड़े आनन्दसे उसके घर भोजन किया । उस समय
 राजाका पुत्र, राजाकी गोदमें बैठे हुआ खेल रहा था । इसी समय
 एक मालीने आकर अपनी डालसे एक उत्तम पुष्प लेकर राजाकी
 भेंट किया । राजाकी गोदमें बैठे हुए कुमारने उस पुष्पको लेकर खूब
 लिया । उसी क्षण पुष्पके अन्दर बैठे हुए एक सुन्दर शरीरवाले राज-
 सर्पने उसकी नाकमें डंस दिया । राजकुमार बड़े डोरसे रो-रो कर
 कहने लगा,— ‘न जाने मुझे किस कीड़ेने काट लाया ।’ यह सुन,
 राजाने जो फूलकी मसलकर देखा, तो उसके नीचे नम्रहीला राजसर्प
 पैठा दिखाई दिया । यह देख, अत्यन्त दुःखित हो, राजाने कहा,—
 ‘भरे ! कोई आकर मरहरीको बुला लाओ ।’ तत्काल संपेहरी भी
 आ पहुँचा । उसने उसका डंक धीरे-ही देखकर कहा,— ‘यह राज-
 सर्प सब सर्पोंका शिरोमणि है । इसका धिय बड़ा मजबूत होता है । यह
 जिसे काट खाता है, उसपर तन्त्र-मन्त्र कुछ भी असर नहीं करता ।’
 यह सुन, राजा और भी चिन्तनमें पड़े । श्वर छूट विर व्याप आनेसे
 राजकुमारकी चेतना लुप्त हो गयी । इसी समय धनदने आकर सन्ने-
 श्वरी देवीकी दो हुई मणिका उस छिड़क कर राजकुमारकी लल्लान्त
 विष-रहित कर दिया । इससे राजा बड़े ही हर्षित हुए, इसके बाद

राजाने धनदत्ता खूब आदर-सत्कार किया और अपने महलोंमें आकर पुत्र-जन्मकी बधाइयाँ भजवायीं, खूब उत्सव करवाया और दीन दुःखियोंको बहुतसा दान दिया ।

इसके बाद राजकुमार जन्मशः बढ़ते-बढ़ते सुधायस्याको प्राप्त हुए । एक दिन वे हाथी पर सवार हो, राजवाटिकामें चले जा रहे थे । रास्तेमें जाते-जाते मगरकी शोभा देखते हुए कुमारकी दृष्टि सुरराजकी पुत्री धीषिणा पर पड़ी और वे उसी समय कामदेवकी पीड़ासे व्याकुल हो गये । परन्तु उस कन्याके मनमें राजकुमारको देखकर कुछ भी प्रीति नहीं उत्पन्न हुई । काम-ज्वरसे पीड़ित कुमार घर आये, पर उनकी पीड़ा शान्त नहीं हुई । कुमारके मंत्रियोंने उनका मन्त्रिप्राय राजापर प्रकट किया । राजाने एक चतुर मन्त्रीको सुरराजके पास उनकी कन्या धीषिणाकी याचना करनेके लिये भेजा । सुरराज मन्त्रीके मुँह से कन्याकी मँगनीकी वृत्ति सुन बड़े प्रसन्न हुए और मन्त्रीकी बड़ी क्वातिर करने लगे । इतनेमें उस लड़कोने आकर कहा,—“यदि तुम मुझे कुमारके हाथों सौंप दोगे तो मैं निश्चय ही आत्महत्या कर लूँगी ।” सुरराजको अपनी कन्याकी यह बात सुनकर बड़ा दुःख हुआ । उन्होंने मन्त्रीसे कहा,—“अभी तो भाव जाइये, मैं पीछे अपनी कन्याको समझा-बुझाकर आपको सौंप दूँगा ।”

मन्त्रीने राजाके पास आकर यह सब हाल कद सुनाया । मन्त्रीके जाने बाद सुरराजाने अपनी कन्याको बहुत तरहसे समझाया बुझाया; परन्तु यह किसी प्रकार राजकुमारको घरनेपर राजी नहीं हुई । हाथार, सुरराजने यही बात कहला भेजी । राजाने पुत्रको इसकी सूचना दे दी । यह सुन, राजकुमारकी बड़ी निराशा और घोर दुःख हुआ । इसी समय धनदत्ते राजाके पास आकर पूछा,—“स्वामी ! आज भाप इतने चिन्तित क्यों हैं ?” राजाने इसको अपने पुत्रकी बात कह सुनायी । सब सुनकर धनदत्ते कहा,—“हे राजन् ! आप इस बातकी ज़रा भी चिन्ता न करें । मैं अवश्य ही राजकुमारकी मनस्का-

मना पूरी करूँगा । ” यह कह, वह घर बाया और वहाँसे चक्रेश्वरी देवीका दिया हुआ एक रत्न ले जाकर राजकुमारके हवाले किया । तदनन्तर राजकुमारने धनदके यतलाये अनुसार उस रत्नकी विधिपूर्वक आराधना की, जिससे उस मणिका अधिनायक सन्तुष्ट हो गया । उसके प्रभावसे सूरराजकी पुत्रीके मनमें राजकुमारके प्रति प्रीति उत्पन्न हो गयी और उसने अपनी एक सखीसे अपने मनकी बात कह डाली । उस सखीने यह बात उसके पितासे कही । उसके पिताने इसकी सूचना राजाको दी और राजाने अपने पुत्रसे सारा हाल कहा । इससे राज-कुमारको बड़ा ही हर्ष हुआ । इसके बाद राजाने ज्योतिषीको बुलाकर विवाहका शुभ दिवस विचारनेको कहा । शुभ ग्रह-नक्षत्रमें दोनोंका विवाह हो गया । राजकुमार उसके साथ आनन्दपूर्वक विषय-सुख भोगने लगे ।

एक दिन राजाके सिरमें बड़ी भयानक पीड़ा हुई । उसी समय धनदने देवीकी रोगापहारिणी मणिके प्रभावसे उनकी पीड़ा दूर कर दी । उस समय राजाके मनमें यह विचार उत्पन्न हुआ,—“ओह ! धनदके समान गुण-रत्नका सागर दूसरा कोई मनुष्य नहीं है । वड़े भाग्यसे यह मेरा मित्र हो गया है ।” ऐसा विचार कर, वे उस दिनसे उसे पुत्रसे भी बढ़कर मानने लगे ।

एक दिन उस नगरके उद्यानमें झीलन्धर नामक सूरि अपने चरण-रजसे पृथ्वीको पवित्र करते हुए परिवार सहित आ पहुँचे । सारे नगर-निवासी बड़ी भक्तिके साथ उनके दर्शन और वन्दन करनेके लिये उद्यानमें आये । धनद भी स्थलें बैठ कर वहाँ आया । गुरुकी वन्दना कर धनद इत्यादि सभी लोग यथायोग्य स्थानपर बैठ रहे । गुरुने उस समय इस प्रकार धर्मदेशना करनी आरम्भ की,—“इस संसारमें जीवोंको धर्मके दिना सुखको प्राप्ति नहीं होती । इसलिये, हे मनु प्राणिमों ! तुम सदा धर्मकी आराधनाका प्रयत्न करते रहो । जो मनुष्य धर्म करते समय बीच-बीचमें मनमें अन्तर ले जाता है, वह महपापके

समान दुःखमिश्रित सुख पाता है । ” यह सुन, घनदने सूरिसे पूछा,—
 “हे भगवन् ! यह महणाक कौन था, जो धर्म करते हुए बीच-बीचमें
 भन्तर डाल देता था ! उसने किस प्रकार धर्मको बलवृद्धि किया !
 कृपाकर उसका वृत्तान्त कह सुनाइये । ” यह सुन, गुरुने कहा,—

“इसी भरतक्षेत्रमें रत्नपुर नामक एक नगर है । उसमें शुभदत्त
 नामका एक धनवान् सेठ रहता था । उसकी छोटी नाम धनुष्यरा
 था । उनके महणाक नामका एक पुत्र था । उसकी स्त्रीका नाम सोमश्री
 था । एक दिन यह महणाकके शयनमें बैठकर बाग़ीचेमें सैर करनेके
 लिये गया । उसने बाग़ीचेमें बड़ा भारी मण्डप बनवाया था । उसी
 मण्डपमें यह अपने चार दोस्तोंके साथ बैठा हुआ मनोहर वाद्य, भोग्य,
 लैक्ष्य और पेय—इन चारों प्रकारके आहारको इच्छानुसार बर्तने लगा ।
 खाने-पीनेके बाद, पाँच सुगन्धित पदार्थोंसे युक्त ताम्बूल भक्षण कर,
 घोड़ी दैर नाटकका तमाशा देखनेके अनन्तर यह फलकी समृद्धिमें
 मनोहर और घने वृक्षोंसे सुशोभित उद्यानकी शोभा देखने लगा । इतने
 में उसने एक मुनिको देखा । उन्हें देखकर वह मित्रोंकी प्रेरणासे उनके
 पास भाया । उनकी वन्दना करने पर उन्होंने ध्यान तोड़कर धर्म-
 लाभरूपी आशीर्वाद दिया । इसके बाद उनकी धर्मदेशना सुनकर उसको
 प्रतिबोध हुआ और उसने उन्हीं मुनिसे समकित सहित भावकधर्म
 भङ्गीकार कर लिया । इसके बाद यह फिर मुनिको प्रणाम कर अपने
 घर लौट आया । अपना द्रव्य लगाकर उसने एक बड़ा भारी जिन-
 मन्दिर बनवाया । इसके बाद यह अपने मनमें विचार करने लगा, —
 “मैंने धर्मरसके आधिक्यके कारण इतना धन क्यों व्यय कर डाला ?
 यह धन तो मैंने व्यर्थ ही गंवा दिया । ” ऐसा विचार मनमें उत्पन्न
 होते ही यह कुछ दिनोंके लिये निरुत्साह हो गया । इसके बाद बहु-
 सेरे मनुष्योंके आग्रहसे उसने जिनप्रतिमा बनवायी और विधिवत्
 उसकी प्रतिष्ठा की । जीर्वाहिसाका त्यागकर यथायोग्य दान भी
 दिया । फिर उसके जीमें यह विचार उठा, कि—‘भोह ! मैंने

धर्मकार्यमें देहिमात्र धन लगा दिया । उपार्जन किये हुए धनका खी-
याई हिस्ता हो धर्ममें लगाना चाहिये, अधिक नहीं । इसका फल
मुझे कुछ मिलेगा या नहीं, इनमें भी संशय ही है । शास्त्रोंमें तो
ऐसा लिखा पाया जाता है, कि भक्त ब्रह्मका बहुत उत्तम कर्म
मिलता है ।" इस प्रकार निश्चयमें संशय रहते हुए भी यह देवपूजादिक
कार्य किया करता था । एक दिन उसके घर दो साधु आये । उसने
उन्हें रोकर भोजन-भोज्य पदार्थ भोजन कराये । मुनिगोके जाने बाद
उसने अपने मनमें विचार किया,—“मैं भी धन्य हूँ, कि मेरे हाथों
तरस्त्रियोंको भयुर आहार पहुँचा ।” एक दिन रातको गिठले पहर
सोते हुए उठकर उसने अपने मनमें विचार,—“जितना कोई प्रत्यक्ष
फल देनेमें न पाये, वैसा पुण्य करनेसे क्या लाभ ?” यादकी एक
दिन दो मलिन शरीरवाले तरस्त्रियोंको देखकर उसने विचार किया,—
“बोह ! इन मलिन शरीरवाले मुनिगोको धिक्कार है । यदि कदाचित्
ये जैन-मुनि निर्मल वेष्ट बनाये रखते, तो क्या जैनधर्ममें इतना लग
जाता ?” इस प्रकार विचार कर उसने फिर सोचा,—“अरे ! मेरा
यह विचार बहुत पुरा है । मुनि तो ऐसे होते ही हैं । इनको निर्मलता
संयममें है, इनके शरीरकी निर्मलताकी ओर ध्यान देना ही उचित
नहीं ।” इसी प्रकार उसने शुभ भावोंके द्वारा शुभ कर्मोंका उपार्जन
किया और बीच-बीचमें अशुभ भाव हो जातेसे उसने अशुभ कर्म भी
उपार्जन कर लिया । अनन्तर आगु पूरी होजानेपर वह भवनरति देव
हुआ । उसी स्थानसे च्युत होकर तुम इस समय धनद नामक सेठके पुत्र
हुए हो । पूर्वजमें तुमने धर्म करते हुए भी बीच-बीचमें उसे दूषित
किया, इसीलिए तुम्हें इस भवने दुःख निम्नित सुख प्राप्त हो रहा है ।”

इस प्रकार अपने पूर्वजकी कथा सुनकर धनद, मूर्च्छित हो,
पृथ्वी पर गिर पड़ा और आदिस्मरण उत्पन्न होनेके कारण उसने
अपना पूर्वज स्पष्ट देख लिया । यह देख, उसने मुदते कहा,—“प्रभो !
आपने जो कुछ कहा, वह विलकुल सत्य है । अब जो मैं करने दानुमो

की आज्ञा ले, आपसे व्रत ग्रहण करूँगा ।” यह कह, उसने अपने घर भा, माता पितासे कहा,— “हे पिता ! हे माता ! तुम लोग मुझे दीक्षा लेनेकी आज्ञा दे दो ।” यह सुनकर उन लोगोंने उसे बहुत तरहसे समझाया, पर यह अपने विचारसे न डिगा । तब लाचार होकर उन्होंने कहा,— “हे पुत्र ! यदि तुम दीक्षा लोगे, तो हमलोग भी तेरे साथ ही दीक्षा ले लेंगे ।” उनकी ऐसी बात सुन, धनदने राजाके पास जाकर अग्रा अभिप्राय; उनसे कह सुनाया । राजाने भी कहा,— “मैं भी तुम्हारे साथ ही व्रत ले लूँगा ।” यह सुनकर धनदने कहा,— “हे नाथ ! गृहस्थीमें तो आप मेरे स्वामी रहे ही ; यदि यति होने पर भी आप ही मेरे स्वामी बने रहें, तो इससे बढ़कर और क्या चाहिये !”

इसके बाद राजाने कनकप्रसन्न नामक अपने पुत्रको राजगद्दी पर बिठाकर धनदने पुत्र धनपाहको सेठके पद पर स्थापित कर दिया । तदनन्तर राजा, माता-पिता और भार्याके साथ धनदने मुदके पास आकर दीक्षा ले ली । कालक्रमसे ये लोग सब प्रकारके तप कर, गृह प्रतीका पालन कर, गुप्त ध्यान करते-करते शरीर छोड़कर देव लोकमें चले गये । यहाँमें ज्युन होनेपर ये लोग महाविदेह क्षेत्रमें मनुष्य सब पाकर, शान्ति ग्रहण कर मोक्षार्थ प्राप्त करेंगे ।

सम्पूर्णतः कुमार क्या समाप्त ।

बालक मुनिने कहा, — “हे विद्याधरम्भ्र अभिननेत्र ! धनदकी यह कथा सुनकर तुम्हें निम्नर निम्नल्लभ धर्म करना चाहिये ।”

ऐसा उद्देश्य पाकर अभिननेत्रने मुदकी आज्ञा फिर पर बढ़ायी और दोनों मुनियोंको प्रणाम किया । इसके बाद ये बालक-धर्मगुनि प्राकारमें उड़कर अम्यत्र चले गये ।

राजा भीविद्वय और अभिननेत्र धर्म-कर्ममें मग्न रहने हुए कान-धन करने लगे । दोनों पुण्यात्मा राजा प्रतिबर्तन मीन-मीन यात्रार्थ किया करते थे, जिसमें दो यात्रार्थ गार्थन नीचेकी और एक भ्या-जन मीन-मीन होती थी । एक क्षेत्र मग्नमें और दूसरी शान्तिनमान

में इस प्रकार दो महाशक्तियाँ कार्यरत हैं। देव और विद्याधर इन महाशक्तियोंमें मन्दोदर हीरकी यात्रा करने हैं और दूसरे-दूसरे लोग करने-करने दोनोंमें स्थित करात्मन नीयोंकी यात्रा करते हैं।

मन्त्रिनेज और श्रीविजय भूषण तथा धेवरोंके स्वामी थे। वे मन्दोदर हीरकी दो-दो यात्राएँ किया करने थे। तीसरी यात्रा वे वनमन्त्रके वेद-ज्ञानकी उत्पत्तिके स्थान मन्मन्त्र-पर्यन्तके ऊपर श्री आदिनाथके मन्दिरकी करने थे। इस प्रकार कई हजार वर्षों तक उन दोनोंने राज्य किया। हर दिन वे लोग मेद-पर्वतके ऊपर शारवत त्रिपिन्यकी घन्दना करने गये। वहाँ त्रिपिन्यकी घन्दना कर, वे दोनों नन्दन वनमें चले गये। वहाँ उन्होंने विपुलमति और महा-मनि नामक दो चारण-धर्मज मुनियोंको बैठे देखा। उनकी घन्दना कर, उनको देरना भक्षण कर, उनसे श्रीविजय और मन्त्रिनेजने पूछा,—“हे भगवन्! हमारी अब कितनी आयु शेष है?” मुनियोंने कहा,—“अब तुम्हारी आयुके केवल २६ दिन बाकी हैं।” यह सुन, उन दोनोंने व्याकुल होकर कहा,—“हमने विषय-सौख्यतामें पड़कर इतने दिनोत्तर खारिज नहीं ग्रहण किया। अब इतनी थोड़ी आयुमें हम क्या कर सकते हैं?” उनको इस प्रकार शोक करते देख, मुनियोंने कहा,—“अनी तुम्हारा कुछ भी नहीं बिगड़ा है। अज भी तुम स्वर्ग और मोक्षके देनेवाले चारित्रको ग्रहण कर, आत्मकार्यकी सधना कर सकते हो, इसलिये तुम ऐसा ही करो।” मुनियोंके इस प्रकार दिलासा देने पर दोनों करने-करने नगरको चले गये और करने-करने दुष्टोंको राज्य देकर अग्निनन्दन नामक मुनिसे दीक्षा ले ली, तथा नत्काल पादपोषण-अभ्यस्य करना आरम्भ किया। दुष्कर अभ्यस्य-व्रतका पालन करते हुए श्रीविजय मुनिको अपने पिता त्रिपुष्ट वासुदेवके तेज-पराक्रमका स्मरण हो आया। इससे उन्होंने मन-ही-मन निर्णय किया,—“इस दुष्कर व्रतके प्रभावसे मैं भी करने सिक्के हो मुक्त हो जाऊँगा। मन्त्रिनेज मुनिसे देखा कई निश्चय अपने मनमें नहीं किया। आयुष्मका

क्षय होने पर वे दोनों मृत्युको प्राप्त हुए और दूसरों प्राणन कष्टमें मह-
र्द्धिक देय हो गये । इनमें अमितनैजका जीव नन्दिकावर्त्त नामक विमान-
में दिव्यचूल नामका देय हुआ और श्रीविजयका जीव स्यास्तिकावर्त्त
नामक विमानमें मणिचूल नामका देय हुआ । यहाँ रहते हुए वे दोनों
देव-इच्छानुसार दिव्य विषय-सुख भोगते, मन्दीश्वरादिक तीर्थमें
यात्रा करते और देव पूजा, स्नात्र आदि धर्मक्रियामें तत्पर रहते हुए,
शुभ भागसे अपने समकित-रत्नको अत्यन्त निर्मल बनाने लगे ।



तृतीय प्रस्ताव

इस जम्बूद्वीपके पूर्व महाविदेह-क्षेत्रके रमणीय नामक विजयमें सुमगा नामकी एक बड़ी भारी नगरी है। किसी समय यहाँपर गम्भीरता इत्यादि गुणोंसे युक्त और परम प्रतापी क्षितिमत्तागर नामके राजा राज्य करते थे। उनके शांतिरूपो मलङ्कारसे सुशोभित और उत्तम गुणोंवाली दो खियाँ थीं, जिनके नाम वसुन्धरी और अनुदरी थे। वह जो दिव्यबल नामक अमिततेजका जीव था, वह आयुष्यका क्षय होनेपर प्राणत रूपसे व्युत् होकर रानी वसुन्धरीकी बोंछमें पुत्र-रूपसे अवतीर्ण हुआ। उस समय रानीने हस्ती, पद्मसरोवर, चन्द्र और कृष्ण—ये चार स्वप्न बल-मन्त्रके जन्मके सूचक देखे, इसने प्रभावसे समय पूरा होनेपर रानीने सोने-की ली कान्तिपाटा पुत्र प्रसव किया। पिताने पुत्र-जन्मके उपलक्षमें बड़ी धूमधाम की और उस पुत्रका नाम अपराजित रखा। इसके बाद मण्डिचूल नामका जो धीयिज्यवा जीव था, वह भी आयुष्य पूरा होनेपर प्राणत रूपसे व्युत् होकर राजाकी दूसरी रानी अनुदरीकी बोंछमें आया। उस समय रानी अनुदरीने वासुदेवके जन्मकी सूचना देनेवाले सिंह, सूर्य, पूर्णकुम्भ, समुद्र, धीदेवी, रत्न-समूह और निधुम्भ मणि—ये सात स्वप्न सुनने प्रवेष्ट करते देखे। ज्ञानःज्ञान उनमें बड़े दर्पसे भरने पतिको इन स्वप्नोंकी दात बनलायी। इन स्वप्नोंकी दात सुनकर राजानी स्वप्न-शास्त्रके विद्वानोंकी बुलवाकर इस स्वप्नका विचार करवाया। उन लोगोंने कहा,—“हे राजन् ! इन सात स्वप्नोंके प्रभावसे आनेके पुत्र वासुदेव (त्रिपरदाधिरवि) होने और पहली रानीके पुत्र बलमन्त्र होने।” यह कह, ये स्वप्नशास्त्रके पण्डित राजाका दिया हुआ दान लेकर अपने अपने घर चले गये। राजा जो राज्यका पालन करने लगे।

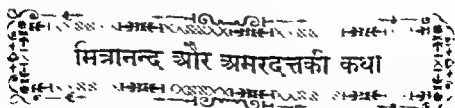
कमलः समय पूरा होनेपर अनुदरी रानीके गर्भसे एक श्यामकान्ति पुत्रका जन्म हुआ । पिताने भूष धूमधामसे उत्सव किये और उसका नाम अनन्तवीर्य रखा । ये दोनों राजकुमार कमलः बढ़ने-बढ़ने कला-भ्यास करने योग्य हो गये, इसलिये राजाने उन्हें कलाओंका अभ्यास कराया, धीरे-धीरे रूप और लावण्यसे शोभित ये दोनों कुमार युवा वस्थाको प्राप्त हुए । तब राजाने उनका विवाह भी कर दिया ।

एक दिन उस नगरके उद्यानमें विशेष ज्ञानवाले स्वयंप्रभ नामके मुनि पधारे । उसी समय स्तिमिनसागर राजा भी धुड़सवारी करके धके हुए, विधाम करनेकी इच्छासे, उनी नन्दनके समान मनोहर उपवनमें भाकर घोड़ी दैर बैठे रहे । इसी समय राजाकी दृष्टि भयोक वृक्षके नीचे ध्यानमग्न मुनिपर पड़ी और उन्होंने शुद्ध भावसे उनके पास जा, उनकी तीन बार प्रदक्षिणा कर, विधिपूर्वक उनको नमस्कार किया । इसके बाद विनयसे नम्र बने हुए उचित स्थानमें बैठकर उन्होंने मुनिके मुँहसे इस प्रकारकी धर्मवैशना सुनी,—“कषाय कह्ये वृक्ष है, दुष्ट ध्यान इनके फूल हैं, इस लोकमें पाप-कर्म और परलोकमें दुर्गति । इनके फल हैं । ऐसाही समझकर संसारसे चिरक और मोक्षकी इच्छा रखनेवाले प्राणियोंको इन अनर्घकारी कषायोंका अवश्यमेव त्याग करना चाहिये ।” मुनिके ऐसे वचन सुन राजाने कहा,—“हे मुनिराज ! आपने जो कहा, यह सब सत्य है, परन्तु यह तो कहिये, ये कषाय कितने प्रकारके हैं ?” गुरुने कहा,—“हे नरेन्द्र ! सुनो,—

“क्रोध, मान, माया और लोभ — ये चार प्रकारके कषाय हैं । इनमें से प्रत्येकके चार-चार भेद हैं । इनमें प्रथम अनन्तानुबन्धी, द्वितीय अप्रत्याख्यानी, तृतीय प्रत्याख्यानावरणी और चतुर्थ संज्वलन कहलाते हैं । पहला, अनन्तानुबन्धी क्रोध, पत्थरपर की हुई लकीरकी तरह भमिट और महादुःखदायी है । दूसरा, अप्रत्याख्यानी क्रोध, पृथ्वीकी रेखाकी तरह है । तीसरा, प्रत्याख्यानावरणी क्रोध, धूलकी रेखाके समान है और चौथा, संज्वलन क्रोध, जलकी रेखाके तुल्य माना गया है ।

मान और कषाय आदि भी इसी प्रकार चार-चार तरहके हैं । वे क्रमशः पत्थर, हड्डी, लकड़ी और तृणके स्तम्भके समान हैं । माया भी चार तरहकी है । यह घाँस, मेढ़के सींग, बैलके मूत्र और अवलेहिकाके समान है । इसी तरह लोभ भी चार तरहका होता है । यह किरमिची रंग, या कीचड़, सज्जन और हल्दीके रंगका सा होता है । अनन्तानुबन्धी आदि चारों कषायोंके भेद अनुक्रमसे जन्मपर्यन्त, एक वर्षतक, चार महीनेतक और एक पक्षवादेतक रहनेवाले होते हैं और क्रमशः नरक-गति, तिर्यच-गति, मनुष्य-गति और देवगतिके देनेवाले होते हैं । हे राजन् ! इन सोलह प्रकारके कषायोंको आश्रपूर्वक पालने रहनेसे ये दीर्घकाल तक दुःख देते रहते हैं और स्वाभाविक रीतिसे करनेसे कुछ ही भव तक दुःख देने हैं । इसलिये हे राजन् ! तुम तो इन कषायोंको एक दम त्याग दो : क्योंकि थोड़ेसे दुष्ट्युतसे भी पापका बहुत पड़ा फल मिल जाता है । जिस प्रकार मित्रानन्द आदिको इनका फल भोगना पड़ा था, वैसेही औरोंको भी भोगना पड़ेगा ।

यह सुन, राजाने मुनिसे पूछा,—“पूज्य मुनिराज ! ये मित्रानन्द आदि कौन थे ? और उन्हें थोड़ेसे कषायका बहुत कड़ा फल किस प्रकार भोगना पड़ा ? यह कृपाकर बतलाइये ।” इसके उत्तरमें स्वयंप्रम मुनिने कहा,—“हे राजन् ! उस मित्रानन्दकी कथा तुम खूब जी लगाकर सुनो ।” ऐसा कहकर मुनिने अपनी अमृत भरी घाणीमें वह कथा सुनानी आरम्भ की :—



मित्रानन्द और अमरदत्तकी कथा

इसी भरतक्षेत्रमें अपनी अपार समृद्धिके कारण देवनगरीके समान बना हुआ और पृथ्वीपर परमप्रसिद्ध अमरतिलक नामका एक नगर है ।

६ बाँस आदिके अरको हाथ ।

राजा पर विचार करने लगा कि यह राजा का पुत्र भी राजा के था । एक दिन रानी मदनसेनाने राजा के सिर के बालों पर कंधी केरते-केरते एक पका हुआ केश देखकर कहा,—“यह स्यामी दूत भा गया ।” यह सुन, राजाने खिन्न होकर चारों तरफ देखा, पर कहीं कोई दूत नज़र नहीं आया । यह देख, उन्होंने रानीसे पूछा,—“प्रिये ! यह दूत कहां है ?” रानीने राजाको यह सफ़ेद बाल दिखाकर कहा,—“धर्मराजने बुढ़ापेके आगमनकी सूचना देनेके लिये इसी पके हुए केशके बहाने आपके पास दूत भेजा है । इसलिये अब जहाँतक बन पड़े धर्म-कर्म कीजिये ।” रानीकी यह बात सुन, राजा विस्मित होकर विचार करने लगे,—“मेरे पूर्वजोंने तो बाल पकनेके पहले ही धर्मका सेवन किया था । चारित्र ग्रहण किया था, पर मैं आजतक कुछ भी न कर सका । इसलिये मुझ राज्यके लोभी और चाप-बादलोंकी रीति बिगाड़नेवालेको धिक्कार है ।” अभी मैं विषय-सुखमें ही लिपटा हूँ और इधर बुढ़ापा भा पहुँचा ।” इस प्रकार चिन्तामें पड़े हुए पतिको देख, उनका अभिप्राय जाने बिनाही रानीने हँसते-हँसते कहा,—“हे नाथ ! अगर बुढ़ापा भा जानेके कारण आपको लज्जा भा रही हो, तो कहिये, मैं नगरमें इस बातकी ख़ोई-पिटवाई हूँ, कि जो कोई राजाको बुद्ध बतलायेगा, वह भक्तालमें ही धर्मराजका घर देखेगा ।” रानीकी यह बात सुन, राजाने कहा,—“प्रिये ! ऐसी बेसमझकी सी बातें क्यों करती हो ? मेरे जैसे लोगोके लिये तो बुढ़ापा मण्डन-स्वरूप है ; फिर मैं इसके कारण लज्जित क्यों होने लगा ?” राजाका यह कथन श्रवणकर रानीने कहा,—“नाथ ! तो फिर अपना उज्रला बाल देखकर आपके चेहरेका रंग काला क्यों पड़ गया ?” इसपर राजाने रानीको बतलाया, कि पका हुआ केश देखकर मेरे मनमें जो घेराव उत्पन्न हुआ है, उसीसे मेरा मुखड़ा उदास दीख रहा होगा । इसके बाद राजाने अपने पुत्रको राज्यका भार सौंप, आप अपनी स्त्रीके

साथ तारती दौड़ा प्रहस्य कर ली और बनने जाकर रहने लगे । वत
महस्य करते समय रानीके गर्भ था, यह बात किसीको मालूम नहीं थी ।
कमल गर्भ वृद्धि पाने लगा । यह देख, राजाने एक दिन रानीसे पूछा,—
“ यह क्या ? ” यह सुन, रानीने राजा और कुलरतिको साथ हाल
सब-सब बतला दिया । तरस्विनियोंकी सेवा-तहायतासे पूर्ण समय
पर रानीके एक शुभलक्षणपुत्र पुत्र उत्पन्न हुआ ।

दैवयोगसे प्रसूति-अवस्थानें तरस्य आहार करनेके कारण रानीके
शरीरमें मजबूत व्याधि उत्पन्न हो गयी । तराबनमें मातृघ और पम्प-
का, जैसा चाहिये वंसा सुभांता नहीं था, इसलिये सब तरस्विनोंने मिल-
कर विचार किया,— ‘माताके पिता गृहस्थोंके बालकोंका पालन-पोषण
बड़ा ही कठिन है । ऐसी अवस्थानें यदि कहीं इस बालकको माता
नर गयी, तो फिर हम तारतगम्य इसका कैसे पालन करेंगे ?’ वे लोग
इसी तरह चिन्त करहो रहे थे, कि इसी समय उज्जयिनीका राजा, देव-
घर नामक क्षत्रिय, व्याघरके लिये धूमना-फिरना हुआ वहाँ जा पहुँचा ।
यह तरस्विनोंने बड़ी भक्ति रखता था, इसीलिये उनकी वन्दना करने-
के निमित्त तराबनमें चला आया । उस समय उन सभी तरस्विनियोंकी
चिन्तानें पड़े देखकर उसने उनसे इसका कारण पूछा । यह सुन, कुल-
रतिने कहा,— “ हे देवघर ! यदि तुम्हें हमारे दुःखसे दुःख होता हो,
तो इस बालकको तुम लेलो, ” यह सुन, उसने कुलरतिकी आज्ञा स्वीकार
कर ली, तरस्विनोंने बालकको उसके हवाले कर दिया । उसने यह
बालक लेकर अपनी देवसेवा नामक स्त्री, जो उसके साथ वहाँ
जायी हुई थी उसे दे दिया । उस देवारीके एक लम्बीनी दुधरानी
बालिका थी, इसलिये बड़ी मनुकता हुई । इधर नन्दसेवा रानीने
सबसे पुत्रको सभी जगह हँका : पर उद न निम्न, तर मन नारकर रह
गयी, अन्य-उत्तरक रोग बहुत बढ़ गया और उससे उनकी मृत्यु भी
हो गयी । देवघरने उस लड़केको घर ले आकर बड़ी धूमधाम की और
उसका नाम अनन्दस्य रखा तथा उसकी पुत्रिका नाम सुरसुन्दरी रखा,

लोगोंमें यही बात प्रसिद्ध हुई, कि देवघरकी लीके जुड़ेले बासक पैदा हुए हैं ।

कमरा: उच्चयिनी-नगरीके सागर सेठकी ली मित्राधीके गर्भसे उत्पन्न मित्रानन्दके साथ अमरदत्तकी मित्रता हुई । उन दोनोंमें ऐसीही मित्रता थी, जैसी दोनों भाँकोंमें होती है । एक दिन पर्या-श्रुतमें दोनों मित्र क्षिप्रानदीके किनारे घटवृक्षके पास गिल्लीडंडा खेल रहे थे । एक बार अमरदत्तकी उछाली हुई गिल्ली देवयोगसे घटवृक्षसे छटकते हुए किसी ओरसे मृत्तक शरीरके मुखमें जा पड़ी । यह देख, मित्रानन्दने हँस कर कहा,—“अहा, मित्र ! यह देखो, कैसे साक्षर्यकी बात है, कि तुम्हारी गिल्ली इस मृत्तकके मुँहमें चली गयी ।” यह बात सुन, क्रोधितसा होकर वह मृत्तक बोझ उठा,—“हे मित्रानन्द, चुन ले ! तू भी इसी तरह इसी घटवृक्षसे छटकाया जायेगा और मेरे मुँहमें भी गिल्ली चढ़ेगी ।” इसके पैसे वचन सुन, घटवृक्षके भयसे भीन होकर मित्रानन्दका उत्साह खेलमें न रह गया, इसलिये उगने कहा,—“यह गिल्ली मुँहके मुँहमें पड़ कर अगतिव्रत हो गयी, इसलिये जाने दो—अब यह खेलही बन्द कर दिया जाये ।” यह सुन, अमरदत्तने कहा,—“मेरे पास दूसरी गिल्ली है, उन्कोसे खेलो ।” परन्तु इसपर भी मित्रानन्द खेलनेका वाज़ी न हुआ और दोनों मित्र अपने-अपने घर चले गये ।

दूसरे दिन मित्रानन्दका उद्वास और उसका खेदना कासा पड़ा हुआ देख, अमरदत्तने उससे पूछा,—“हे मित्रानन्द ! तूने क्यों येरो दुःखित होरही हो ? तुम्हारे दुःखका कोई कारण भी है ? यदि हाँ, तो मुझसे कह सुनाओ ।” इसके इस प्रकार कहा आग्रह करके, घटवृक्षसे मित्रानन्दने उन मृत्तककी कहा हुई बातोंका धीरे-धीरे अपने मित्रको सुनाया । यह सुन, अमरदत्तने कहा,—“हे मित्र ! मुझ तो कभी बर्तन नहीं बनना, इसलिये मुझे तो ऐसा मायूस होना है, कि अदृश्यता यह बात किसी सेनामने कही होगी । पर हाँ, कुछ ठीक-ठीक नहीं कहा जा सकता ।” इसके बाद अमरदत्तने फिर उससे पूछा,—“अच्छा, मित्र ! यह न बन-

लामो, कि तुम्हें उसकी बात सच्ची मालूम होती है या झूठी ? अथवा तुम उसे दिलगी-भात्र समझते हो ?" यह सुन, मित्रानन्दने कहा,—“मुझे तो वह बात सच्ची ही मालूम पड़ती है ।” इसपर अमरदत्तने कहा,—“यदि सच्ची हो, तो भी क्या हुआ ? मनुष्यको चाहिये, कि अपने भाग्य-का लिखा हुआ मेट डालनेके लिये भी पुरुषार्थ करे ।” मित्रानन्दने कहा,—“जो बात देवाधीन है, उसमें पुरुषार्थ क्या करेगा ?” अमरदत्तने कहा,—“मित्र ! क्या तुमने नहीं सुना है, कि ज्ञानगर्भ मन्त्रीने पुरुषार्थके ही द्वारा दैवशक्ती बतलायी हुई अपनी जीवन-नाशिनी आपत्तिसे छुटकारा पा लिया था ।” मित्रानन्दने पूछा,—“वह ज्ञानगर्भ कौन था ? और उसने किस प्रकार आपत्तिसे छुटकारा पाया था ? यह सब हाल मुझे बतलाओ ।” यह सुन, अमरदत्तने उसे यह कथा कह सुनायी,—

ज्ञानगर्भ मन्त्री की कथा

इसी भरतक्षेत्रमें धन-धान्यसे परिपूर्ण चम्पानामकी नगरी है । उसमें जितशत्रु नामके राजा राज्य करते थे । उनके मन्त्रीका नाम ज्ञानगर्भ था, जिसपर वे सदा प्रसन्न रहते थे और जो राज्यको सारी विन्ता अपने सिरपर लिये हुए था । मन्त्रीको खोका नाम गुप्तावली था । उसीकी कोखसे उसके सुपुत्रि नामका एक पुत्र उत्पन्न हुआ था, जो बड़ा ही सुन्दर था । एक दिन राजा जितशत्रु सब मन्त्रियों और सामन्तोंके साथ सभामें बैठे हुए थे, उसी समय कोई भट्टाङ्ग ज्योतिषका जाननेवाला देवद्वारपाल-द्वारा राजाको आह्वा मंगवाकर सभामें आया और राजाको आशीर्वाद देकर श्रेष्ठ आसनपर बैठ रहा । उस समय राजाने उससे पूछा,—“हे दैवज्ञ ! तुमने कितना ज्ञान उपाजैन किया है ?” उसने कहा,—“हे राजन् ! मैं ज्योतिष-विद्याके प्रभावसे, लाभ-हानि, जीवन-मरण, गमन-भागमन और सुख-दुःखकी सभी बातें जान लेता हूँ ।” तब

राजाने कहा,—“मेरे इस, परिवारमें यदि किसीके ऊपर कोई बहुत बुराई घटनेवाली हो, तो बतलाओ ।” यह सुन, देवने कहा,—“मुझे तो ऐसा मालूम होता है, कि आपके इस ज्ञानगर्भ मन्त्रीपर पन्द्रह दिनोंके भीतर ही ऐसी विपत्ति आनेवाली है, जिससे वह अपने कुटुम्ब सहित मारा जायेगा ।” यह बात सुनकर राजा और समस्त राजकर्मचारियोंको बड़ा खेद हुआ । तदनन्तर दुःखित-हृदयसे मन्त्रीने उस देवको अपने घर एकान्तमें ले आकर पूछा,—“हे भद्र ! यह तो बतलाओ, कि मेरे ऊपर वह विपत्ति किस प्रकार आनेवाली है ?” उसने जवाब दिया,—“वह विपत्ति तुम्हारे ऊपर तुम्हारे बड़े बेटेके करते आयेगी, ऐसा मुझे मालूम होता है ।” यह सुन, मन्त्रीने उसका सन्कार कर उसे विदा कर दिया ।

इसके बाद मन्त्रीने अपने पुत्रको बुलाकर कहा,—“हे पुत्र ! यदि तुम मेरी बात मानो, तो मेरे ऊपर आनेवाली प्राण-नाशिन विपत्तिको अपनी ही विपत्ति मानो ।” यह सुन, पुत्रने प्रतिशय विनीत भावसे कहा,—“पिताजी ! आप जो कहिये, वह करनेके लिये मैं तैयार हूँ ।” इसके बाद मन्त्रीने एक आदमीके सम्राजाने लायक बड़ा सा सन्दूक मँगवाया और उसमें पानी तथा भोजनकी सामग्री सहित पुत्रको डालकर बाहरसे भाठ ताले जड़ दिये । बादको वह सन्दूक राजाके हवाले कर उसने कहा,—“हे राजन् ! यही मेरा सर्वस्व है । इसे आप लूब हित्वागतसे रखिये ।” यह सुन, राजाने कहा,—“हे मन्त्री ! तुम इस सन्दूकमें रत्ने हुए धनका अपनी इच्छाके अनुसार धर्म-कार्यमें लगा दो—तुम्हारे बिना मैं इस धनको लेकर क्या करूँगा ?” मन्त्रीने कहा,—“स्वामिन् ! सेवकोंका यही धर्म है, कि चाहे जान मलेही खली जाये, पर अपने स्वामीके साथ धोखाधड़ी न करें ।” इसप्रकार उसके बहुत आग्रह करने पर राजाने वह सन्दूक एक गुप्त स्थानमें रखवा दिया । तब मन्त्रीने जिनमन्त्रियोंमें अष्टाङ्गिका-उत्सव प्रारम्भ करवाये, धीर्लक्षकी पूजा की, दीन दीन मनुष्योंको दान दिया, अमारीकी आघोषणा करवायी और

आप अपने घरमें शास्त्रि-पाठ करने लगा । साधही शास्त्र तथा ज़िस्त यफ़्तरोसे सजे हुए घीरी और हाथी-घोड़ोंको घरके चारों तरफ़ रख-पालीके लिये तैयार कर गृह-रक्षाका भी प्रबन्ध कर डाला । तदनन्तर वह घरके मन्दिरमें बैठकर धर्म-अभ्यास करने लगा । इसी तरह करते हुए पन्द्रहवाँ दिन आ पहुँचा । उस दिन पक्कापक राजाके भन्तःपुरसे यह आयाज़ आयी,—“हे लोगो ! दीदो, दीदो, यह देखो मन्त्रीका पुत्र सुयुद्धि राजकुमारीका पेणीदण्ड काटकर भागा जा रहा है ।” यह बात सुन, राजाने एक बारगी मोर्धमें आकर विचार किया,—“मैंने उस हुए मन्त्री-पुत्रका इतना आदर किया और उसने मेरे साथ ऐसी बेजा हर-कत की ?” ऐसा विचार मनमें आतेही राजाने सारी सभाके साम-मेही कोतवालीकी आवा दी, कि मन्त्री-पुत्रके इस अपराधके दण्ड-स्वरूप तुम अभी मन्त्रीको सपरिवार मृत्युके घाट उतार दो । उसके किसी नौकरको भी जीता न छोड़ना ; क्योंकि उसके पुत्रने बहुत बड़ा अप-राध कर डाला है । यह कह राजाने मन्त्रीके घर पर सेना भेजवायी । उस समय मन्त्रीके सैनिकोंने इनकी राह रोकी । यह सब समाचार ध्यानमें मग्न होकर बैठे हुए मन्त्रीको आपसे आप मालूम हो गया और उसने तत्काल बाहर आकर अपने आदमियोंको लड़नेसे मना करते हुए, राजाके सैनिकोंसे कहा,—“हे वीरो ! तुमलोग एक बार मुझे राजाके पास ले खलो । उन लोगोंने ऐसाही किया । मन्त्री-को देख राजाका क्रोध कम हो गया । तब मन्त्रीने राजाके सामने जा, प्रणाम कर विनयपूर्वक कहा,—“हे महाराज ! मैंने जो सन्दूक आपके यहाँ रखवा दिया था, उसके भीतरकी चीज़ निकलवाइये । इसके बाद आपकी जैसी ईच्छा हो, वैसा करें ।” यह सुन राजाने कहा, क्या इतना बड़ा अपराध करके तुम मुझे धन देकर सन्तुष्ट करना चाहते हो ?” मन्त्रीने कहा,—“महाराज ! मेरे प्राण तो आपके अधीनही हैं, पहले एकबार उस सन्दूकको तो खोलकर देखिये ।” उसके ऐसा आग्रह करने पर राजाने वह सन्दूक मँगवाकर उसके सब ताले तुड़वा

झांटे । उसके मन्दिर मन्त्रीका पुत्र सुबुद्धि बैठा हुआ था । उसके हाथिने हाथमें शस्त्र और बाये हाथमें वेणीवृण्ड था ; पर उसके दोनों पैर बंधे हुए थे । उसकी यह हालत देख, राजासे भाक्षरमें पहुँचकर पूछा,— “यह क्या मामला है ?” मन्त्रीने कहा,— “महाराज ! मैं क्या जानूँ ? हाथर भाप कुछ जानते हों ।” सच्ची बात जाने चिन्ता ही भाग आने इन जगमगरके सेवकको जड़से उखाड़ फेंकनेके लिये तैयार हो गये थे । यह समझकर मैने भापके ही घर रक्त छोड़ा था । अब यदि उसके मन्दिर यह करामात हो गयी, तो मेरा क्या अपराध है ?” यह सुन राजाने सन्निहित होकर कहा,— “हे मन्त्री ! तुम मुझे इसका भेद बताताओ ।” मन्त्रीने कहा,— “स्वामिन् ! हो सकता है, कि किसी मूल त्रेनसे कोपित होकर मेरे इस निर्दोष पुत्र पर यह दोष आनेके लिये यह काम किया हो । नहीं तो इस तरह मन्त्रिकमें बन्ध करके रक्ते हुए आत्मीकी ऐसी अपमाना क्योंकर हो सकती है ?” यह सुन राजाने प्रसन्न होकर पुनः मन्त्रीका आश्रय-सम्भार किया । इसके बाद उन्होंने फिर पूछा,— “मन्त्री ! तुमने यह बात क्योंकर जानी ?” तब मन्त्रीने कहा,— “राजन् ! मैने उम्मी ज्योतिशसे पूछा था, कि तिर ऊपर कैसे विष्णु आयेगी ? उसने कहा, कि तुम्हारे पुत्रके करने तुम पर आक्रमण आवेगी । इसीलिये मैने इसके बलजाये अनुसार यह तरकीब की । श्री विनयमर्षि प्रभावसे लारे विष्णु टक गये ।” इसके बाद राजा और मन्त्री दोनोंने अपने-आपने पुत्रोंको अपनी आज्ञा पर कहाल कर दीक्षा ले ली और मन्त्रावा करने हुए मन्त्रिणी पायी,

जगताके मन्त्रीकी क्या मयात ।

“हे मित्र ! मैने मन्त्रिणी अपने पराक्रम और बलसे अपनी निर्दोष का मार किया है, येनाही तुम भी करो और इस बीरको जग ही ।”

इसकी यह बात सुन, विनयमर्षिने कहा,— “मित्र ! अब तुम्हीं करो, कि मैं क्या करूँ ?” विनयमर्षिने कहा,— “क्यों, इससेम यह देग छोड़ कर क्यों और करते रहने ? यह सुन, विनयमर्षिने अपने निरर्थक हृदय की

परीक्षा लेनेके विचारसे कहा,—“तुमसे बाहर जाना नहों बन सकता; क्योंकि तुम्हारा शरीर बड़ाही कोमल है। शवने मेरी जिस विपद्की बात कही है, वह तो न जाने कब सिर पर आयेगी; पर सुकुमारताके कारण परदेशकी तकलीफोंके मारे तुम्हारा मरना तो बहुतही शीघ्र सम्भव है।” यह सुन, अमरदत्तने कहा,—“मित्र ! चाहे जो कुछ हो; पर मैं तो सुख या दुख तुम्हारे साथ ही भोग करूँगा।” उसकी ऐसी बात सुनकर मित्रानन्दके हृदयका विचार जाता रहा और दोनोंके दिल मिल गये। इसके बाद वे दोनों सलाह करके घरसे बाहर हुए और क्रमशः पाटलिपुत्रनगरमें आ पहुँचे। वहाँ उन्होंने नगरके बाहर एक नन्दन वनके समान मनोहर उद्यानमें ऊँची चहारदिवारीसे घिरा हुआ और ध्वजा-पताकाओंसे सुशोभित एक सुन्दर प्रासाद देखा। उसे देखकर दोनों मित्रोंको बड़ा आश्चर्य हुआ और वे पासवाली घावलीके जलमें हाथ, पैर और मुँह धोकर प्रासादके अन्दर चले गये और उसकी सुन्दरता देखने लगे। वहाँ अमरदत्तने एक पुतली देखी, जो रुपद्रावण्यमें ठीक देवाङ्गनासी मालूम होती थी। उसे देखकर अमरदत्त चित्रलिखितकी भाँति अचल सा हो रहा और भूख, प्यास तथा थकावट भी भूल गया। इतने में मध्याह्नका समय हो गया देखकर मित्रानन्दने कहा,—“भाई ! चलो नगरमें चलें; बहुत दिलगिरी हो रहा है।” यह सुन, उसने कहा,—“हे मित्र ! क्षणभर और टहर जाओ, जिसमें मैं इस पुतलीको अच्छी तरह देख लूँ।” उसकी यह बात मान, कुछ देर टहरनेके बाद मित्रानन्दने फिर कहा,—“प्रिय मित्र ! चलो, नगरमें चलकर वहीं टहरनेका ठीक-ठिकाना करें, चायें-पायें, फिर वहाँ चले आयेगे।” यह सुन अमरदत्तने कहा,—“यदि मैं वहाँसे दूटा, तो जरूर मर जाऊँगा।” यह सुन मित्रानन्दने कहा,—“मित्र ! इन पत्थरकी पुतली पर तुम्हारा इतना अनुराग क्योंकर हो गया ! यदि तुम्हें खी-दिलासकी हो इच्छा हो, तो नगरमें चलकर मोड़न करके अपनी इच्छा पूरी कर लेना।”

इसी प्रकार बार-बार करने परन्तु अब वह वहाँसे न दूटा, न मित्रा-

मन्द प्रोषके मारे बड़े जोर-जोरसे रोने लगा। यह देख—ममरदन भी रोने लगा; पर वहाँसे दृष्टनेका नाम नहीं लिया। इतनेमें उस प्रासादका स्वामी सेठ रत्नमार भी यहाँ आ पहुँचा। उसने उन्हें देखकर कहा,—“भरे भाइयो! तुमलोग इस प्रकार स्त्रीकी मार क्यों रो रहे हो?” यह सुन, मित्रामन्दने पिताके समान उस सेठसे अपनी सारी रामकहानी आरम्भमेही कह सुनायी और मित्रकी वर्तमान स्थितिका हाल बतलाया। यह सुन, उस सेठने भी उसे बहुत समझाया-बुझाया। पर उसका उस पुनली परसे अनुराग नहीं दूर हुआ। यह देख, सेठको भी बड़ा खेद हुआ। उसने अपने मनमें विचार किया,—“जब पत्थर की बनी हुई मारी इस तरह मन हर लेगी है, तब साक्षात् स्त्रीकी बाग तो कहना ही क्या? कहा भी है,—

भावभौरी वनिर्जानी, एतन्मयी त्रिनेन्द्रियः ।

भावमन बोधितां दृष्टि-बोधरं वानि पुनर. ॥ १ ॥

अर्थात्—“पुरुष जबतक स्त्रीको नहीं देखता, तभीतक वह मौनी, यति, ज्ञानी, तपस्वी और त्रिनेन्द्रिय बना रहता है।”

यह सेठ वही बात सोच रहा था, कि इतनेमें मित्रामन्दने उससे पूछा,—“हे तात! इस विषय स्थितिमें मैं अब कौनसा उपाय करूँ? इस बातका क्या उपाय दूँ, यह न सूझ पड़नेके कारण यह सेठ घुप्पी साधे रहा। इतनेमें मित्रामन्दने फिर कहा,—“सेठजी! यदि मैं इस कारीगरका पना या आऊँ, जिसने यह पुनली गढ़ी है तो मैं अपने मित्रकी इच्छा पूरी कर दूँ।” यह सुन, सेठने कहा,—“कोकण देशमें सोपारक नामक नगर है। वहींके शूरा नामक कारीगरने यह पुनली गढ़ी है। यह मामाद और इसकी मारी बीजे मेरी बनवायी हुई है। इसीलिये मैं यह बात जानता हूँ।” यह कह उसने फिर कहा,—“यह हाल सुन कर, जो तुमने अपने मनमें विचार हो सो मुझे कहो।” तब मित्रामन्दने कहा,—“सेठजी! अगर आप मेरे मित्रकी रखवालीका

भार ले लें, तो मैं सोपारक जाकर उस कारीगरसे पूछूँ, कि उसने यह मूर्ति अपनी बुद्धिसे बनायी है अथवा किसीके रूपको देखकर उसीके अनुरूप गढ़ डाली है ? यह बात मालूम होनेपर यदि उसने किसीको देखकर यह मूर्ति गढ़ी होगी, तो मैं उसका पता लगाकर अपने मित्रकी इच्छा पूर्ण करनेका प्रयत्न करूँगा ।” यह सुन, सेठने अमर-दत्तकी रक्षाका भार अपने ऊपर ले लिया । तब अमरदत्तने कहा,—
“मित्र ! मैं जिस समय यह बात जान जाऊँगा, कि तुम कष्टमें पड़े हो, उसी समय प्राण दे दूँगा ।” मित्रानन्दने कहा,—“मित्र यदि मैं दो महीने तक न आऊँ, तो समझ लेना, कि मेरी मृत्यु हो गयी ।”

इस प्रकार पड़ी-थड़ी मुश्किलोंसे उसे समझा-धुभाकर, अमरदत्त-को सेठके हाथोंमें सौंप, दिन-रात चलना हुआ मित्रानन्द क्रमसे सोपा-रकपुर पहुँच गया । वहाँ अपनी अंगूठो घेचकर उसने योग्यताके अनुरूप घस्त्रादि लेकर धारण किये और हाथमें ताम्बूलादिक लिये हुए उस कारीगरके घर गया । कारीगरने उसे धनधान समझकर उसकी पड़ी आवमगत की । इसके बाद उसे उत्तम आसन पर बैठा कर उससे आनेका कारण पूछा । तब मित्रानन्दने कहा,—“भाई ! मुझे तुमसे एक महल बनवाना है । यदि तुम्हारे पास तुम्हारी कारी-गरीका कोई नमूना हो, अथवा तुमने कहीं प्रासाद बनाया हो, तो मुझे दिखलाओ ।” इसपर सूत्रधारने कहा,—“सेठजी ! पाटलिपुत्र-नगरके बाहरवाले उद्यानमें जो प्रासाद है, वह मेरा ही तैयार किया हुआ है । आपने उसे देखा है या नहीं ? ” मित्रानन्दने कहा,—“हाँ उसे तो मैंने हालहीमें देखा है : परन्तु उस प्रासादमें जो एक जगह एक पुतली है, वह तुमने किसीका रूप देखकर गढ़ी है, या योंही अपनी कला-कुशलता का चमत्कार दिखलाया है ।” कारीगरने कहा,—“अवन्ती नगरीके राजा महासेनकी पुत्री रत्नमञ्जरीका रूप देख करही मैंने वह पुतली गढ़ी है ।” यह नुन, मित्रानन्दने कारीगरसे कहा,—“बहुत अच्छा । अब मैं चलना है और एक अच्छा दिन देखकर तुम्हें महलके काममें

हाथ लगानेके लिये बुलवाऊंगा ।” यह कह, वह बाजारमें चला गया ।
 यहाँ उसने अपने लिये जो अच्छे-अच्छे वस्त्र खरीदे थे, उन्हें बेच डाला
 और सफ़रकी तैयारी कर, निरन्तर चढता हुआ, क्रमसे एक दिन
 सन्ध्याके समय उज्जयिनी (मन्ती) नगरमें आ पहुँचा ।

उज्जयिनीके नगर-द्वारपर घने हुए नगरदेवीके मन्दिरमें आकर मित्रा-
 नन्द बैठाही था, कि उसने नगरमें इस प्रकार खौंड़ी गिट्ठी सुनी,—
 “ जो कोई आज रातके चारों पहरोमें इस शयकी रक्षवाली करेगा, उसे
 ईश्वर सेठ हज़ार मुहरें देंगे ।” यह सुन, मित्रानन्दने पासके ही एक
 प्रणिहारसे पूछा,—“ भाई ! इस रातभरकी रक्षवालीके लिये यह सेठ
 इतना धन क्यों दे रहा है ? इसका कारण क्या है ?” यह सुन, द्वार-
 पालने कहा,—“ भाई ! इस समय इस नगरमें महामारी फैली है ।
 सेठके घरका कोई आदमी महामारीसे ही मर गया है । लाश उठते-न-
 उठते सूर्यास्त होगया और अब नगरद्वार बन्द हो गये । अब रातभर इस
 सागर परहरा देनेको कोई तैयार ही नहीं होता, क्योंकि यह महामारीसे
 मरा है । इसीलिये सेठ इसकी रक्षवालीके लिये इतना धन दे रहा
 है ।” यह सुन, मित्रानन्दने अपने मनमें विचार किया,—“ बिना धनके
 मनुष्यको किसी काममें सिद्धि नहीं मिलती, इसलिये मैं द्रिष्ट कदा
 करके यह धन दियेगा हूँ, तो ठीक है ।” ऐसा विचार कर, मित्रा-
 नन्दने साहस धारण किया और धनके लोभसे उस साशकी रात भर
 रक्षवाली करना स्वीकार कर लिया । ईश्वर सेठने उसे आधा धन देकर
 मुहूर्तको उसके हवाले किया और आधा सवेरे देनेको कह कर अपने घर
 चला गया ।

मित्रानन्द उस साशको लेकर रातके समय बड़ी सावधानीके साथ
 उसकी रक्षवाली करने लगा । मध्यरात्रिके समय शाकिनी, भूल, घेनाछ
 आदि प्रकट होकर तरह-तरहके उपद्रव करने लगे, परन्तु उसने धीरता-
 के साथ सब कुछ सहन करने हुए रात बिनाही और शयकी मली भाँति
 रक्ता की । इसके बाद अब भयेरा हुआ, अब उस मूलकके स्वप्नोंने

बाकर उसे झतानमें ले जाकर उसका अग्निसंस्कार किया । मित्रानन्दने बाकीका धन माँगा, तो ईश्वर सेठ साफ़ मना कर गया । तब मित्रानन्दने कहा,—“ अच्छी बात है, यदि यहाँके राजा महासेन न्यायी होंगे, तो मुझे मेरा धन अवश्य ही मिल जायेगा ।” यह कह, वह बाज़ारमें चला गया । वहाँ उसने सौ मुहरें खर्च कर उत्तमोत्तम वस्त्र खरीदे और बढ़िया बेस बनाये हुए वस्त्रत्रिलका नामकी बेस्पाके घर पहुँचा । उसे देखतेही वह ठठ खड़ी हुई और उसका आदर-सत्कार करने लगे । उसी समय मित्रानन्दने उसे चार सौ मुहरें दे डालीं । उसकी ऐसी बड़ी-बड़ी उदारता देख, वस्त्रत्रिलकाकी माँ बड़ीही हर्षित हुई और अपनी बेटीसे आकर बोली,—“देखना, तु इस पुरपकी मली मालि बनने छाने बनना । क्योंकि उसने एक मुन इतना धन दे डाला है अधिक क्या चाहें ? यह तो बलवृद्धी मन्त्र पढ़ता है ।” यह कह, उसने सपंही मित्रानन्दकी महत्प्रशंसा-धुलाया । इसके बाद सायंवालेके समय उत्तमोत्तम भूङ्गारमें सजी हुई, कप-लङ्गोंके कारण देवाङ्गनाके समान बनी हुई, विदग्ध-आत्मामे मनबली बनी हुई वस्त्रत्रिलका मित्रानन्दके पास कर्तव्य शष्पाके ऊपर चली अपनी और हाव-भाव दिखानेकी हुई मधुर बचन बोलने लगी । उस समय मित्रानन्दने अपने मनमें विचार किया,—“विदग्ध-आत्मके लेनमें पड़े हुए प्राणियोंकी बाल-निधि नहीं होना, इसलिये मुझे इस लालचमें नही पड़ना चाहिये ।” यही सोच कर उसने उस बेस्पासे कहा,—“मुन्दरी ! मुझे छोड़ी देर ध्यान करना है, इस लिये एक बँकी ले जाओ ।” वह लज्जामे एक मोनेकी बँकी ले आयी, जिसपर मित्रानन्द एकसम मारे धरने करता मारा हरीर हाके, ठोंग बनाने बैठ रहा । इसी तरह लज्जा शून्य पार चले गए । पर देव, पालने उसने विदग्ध-आत्मकी मर्दानगी की । पण्डु पर कुछ भी नहीं बोला, पालनेकी मार मीन साधे ध्यानमग्न हो, बैठ रहा । इसी प्रकार उसने ध्यानमें ही अपना रात्र बिता दी । अन्तर्धान होनेकी पर उठकर ईश्वरसे मिले गए । देखते देखते वह मरने का कदम

अम्मासे जाकर कह सुनायी। सुन कर, यह बोली,—“यह जैसा करे, वैसा करने दे और युक्तिपूर्वक उसकी सेवा बजा।” वैश्याने वैसा ही किया। दूसरी रात भी मित्रानन्दने इसी तरह गिना की। यह सुन कर उस कुट्टिनीने क्रोधके साथ उसकी दिलगी उड़ाते हुए कहा,—“यह साहय ! मेरी यह लड़की राजकुमारोंके भी हाथ आनी मुश्किल है और तुम इस प्रकार इसकी उपेक्षा कर रहे हो, इसका क्या कारण है ?” यह सुन, मित्रानन्दने कहा,—“माता ! समय आनेपर मैं सब कुछ ठीक ठिकानेके साथ कर दूँगा ; परपहले यह तो बनलाओ, तुम्हारा राजमहलमें जाना-भाना होता है या नहीं ?” यह बोली,—“मेरी यह पुत्री राजाके यहाँ घंघर बुलानेपर मौकर है, इसीसे मैं भी जब चाहूँ, तभी—रात हो या दिन सब समय—राजमहलमें आ-जा सकती हूँ। मेरे जाने-आनेमें कोई रोक धाम नहीं होनेकी।” यह सुन, मित्रानन्दने कहा,—“हे माता ! तब तो तुम राजकुमारी रत्नमञ्जरीको भयदयही पहचाननी होगी ?” यह बोली,—“यह तो मेरी पुत्रीकी मन्दा ही है।” मित्रानन्दने कहा,—“तब तो पुत्रा ! तुम राजकुमारीसे जाकर यह कहो, कि हे सुन्दरी ! लोगों के मुँहमें जित्त अमरदत्तके गुणोंका बखान सुनकर तुमने जित्तपर मोति करनी भारम्भ की और जित्तें पत्र लिख भेजा था, उन्ही अमरदत्तका मित्र यहाँ आया हुआ है।” वैश्याकी मति यह बात स्वीकार कर ली और उसका मन्देश्वर लिये हुई राजकुमारीके पास आयी। राजकुमारीने कहा,—“पुत्रा ! आओ, कोई नयी बात सुनाओ।” उसने कहा,—“हे राजकुमारी ! आज मैं तुम्हारे पास तुम्हारे प्यारेका संदेश्वर लेकर आयी हूँ।” यह सुन, माध्यमेमें पत्रकर राजकुमारीने कहा,—“मेरा प्यारा कौन है ?” इसके उत्तरमें उस कुट्टिनीने मित्रानन्दका कहो हुई सब बातें कह सुनायीं। सुनकर राजकुमारीने अपने मनमें विचार किया,—“आज तक तो हम कप-रंगका कोई पुरुष मेरा वक्षस नहीं हुआ, न मैंने किसीको कभी पत्र लिखा। मुझे अमरदत्तका नामनक नहीं मालूम। यह सब किसी घुसकी बान्धवाओ मालूम पड़नी है। तो भी चाहे जो कुछ

हो, जिस मनुष्यने यह फन्द-फरेब रचा है, उसे भाँखों देख लेना जरूरी है।" ऐसा विचार कर, उसने उस घुड़ियासे कहा,—“बच्चा, जो मादमो मेरे प्यारेका नंदेसा ले आया है, उसे आज खिड़कीकी राह मेरे पास ले आओ।” यह सुन, घुड़िया बड़ी प्रसन्न हुई और मित्रानन्दसे आकर सब हाल कह सुनाया। इससे मित्रानन्दको भी बड़ा आनन्द हुआ।

रातके समय घुड़िया मित्रानन्दको राजमहलके पास ले जाकर बोली,—“भद्र ! यह सात किलोंसे घिरा हुआ राजमहल है। इसीके मन्दर राजकुमारीका कमरा है। यदि तुममें ऐसी शक्ति हो, तो इसके भीतर चले जाओ।” यह सुन, मित्रानन्दने उस घुड़ियाको चले जानेकी आज्ञा दे दी और आप मन्दरको तरह उछल कर सातों किले तड़प कर राजमहलके भीतर प्रवेश किया। उसको इस प्रकार सात किले लाँघकर जाते देख, उस कुट्टिनीने अपने मनमें विचार किया,—“यह तो कोई बड़ा ही धीर पुरुष मालूम पड़ता है। इसके पराक्रमका तो कोई पार-घार ही नहीं है।” ऐसा ही विचार करती हुई वह अपने घर चली आयी। इधर ज्योंही मित्रानन्द राजमहलमें राजकुमारीके महलपर चढ़ा, त्योंही उसको यह अनुपम धोरता देख, आश्चर्यमें पड़ी हुई राजकुमारी नींदका सहाना किये पड़ रही। उस धीर पुरुषने उसे सोयी हुई देख, उसके हाथसे राजाके नामके चिह्नसे अङ्कित कड़ा निकाल लिया और उसकी दाहिनी जाँघमें छुरीसे त्रिशूलका निशान बनाकर झटपट राजमहलसे निकलकर, एक देवमन्दिरमें जा, सो रहा। उसके चले जानेपर राजकुमारीने सोचा,—“यह विचित्र चरित्र देखकर तो यह कोई सामान्य मनुष्य नहीं मालूम पड़ता। यह मैंने बड़ी भारी मूर्खता की, जो उससे बोली तक नहीं।” इसी तरहके विचारमें डूबी हुई राजकुमारी रातके पिछले पहर निद्राकी गोदमें पड़ गयी।

प्रातःकाल होतेही वह धीर पुरुष (मित्रानन्द) राजमन्दिरके द्वारपर जाकर ज़ोर ज़ोरसे पुकार कर कहने लगा,—“अरे बाबा ! मेरे ऊपर बड़ा भारी अन्याय हो गया—बहुत बड़ा अन्याय !” राजाने जब यह

घात सुनी, तब एक द्वारपालके द्वारा उसे सामने बुलवा मँगवाया । राजसभामें आतेही मित्रानन्दने राजाको प्रणाम कर फ़र्याद की,—“हे स्वामिन् ! आप जैसा प्रचण्ड प्रतापशाली राजा होने हुए भी—ईश्वर सेठने मुझ परदेशीको धोखा दे दिया ।” राजाने पूछा,—“उसने तुम्हारे साथ कौनसा धोखा किया ?” यह सुन मित्रानन्दने कहा,—“उसने मुझे भारी रात एक मुर्देकी रखवालीके लिये भाड़ेपर रखा ; पर वह भाड़ेकी भाधी रक़म देकरही रह गया । भाधी देनेका नामही नहीं लेता ।” यह सुन, राजाने क्रोधित होकर अपने सिपाहियोंको हुक्म दिया,—“तुमलोग सभी जाकर उस हुए बनियेको पाँच लाखो ।” राजाके इस हुक्मकी बात सुनकर ईश्वर सेठ स्वयंही रुपया लिये हुए राजसभामें आया और उसने उस परदेशीको पाँचसी सुनहरी मुँहरे गिनकर दे दीं । इसके बाद सेठने राजासे कहा,—“हे महाराज ! उस समय शोकातुर होनेके कारण मैं इस परदेशीको प्रतिज्ञानुसार धन नहीं दे सका । इसके बाद तीन दिन लोकाचारमें ही बीत गये, इसी लिये रुपये भ्रष्ट करनेमें और भी देर हो गयी ।” यह कह राजाको प्रसन्न कर, वह घर चला गया । तब राजाने मित्रानन्दसे शयकी रखवालीका हाल सुनानेके लिये कहा, जिसके उत्तरमें उसने कहा,—“हे राजन् ! यदि सबमुख आपको वह बात जाननेका कीमूहल हो, तो सायबान होकर सुनिये । धनके छीमसे शयकी रखवाली करना स्वीकार कर, मैं हाथमें छूरी लिये, रातभर उसी मुर्देके पाम बिना सोये ही बैठा रहा । रातके पहले पहरमें बड़े मयदूर मियारोंकी बोली सुनाई दी और तत्काल ही मेरे धामों और पीले रोंगटेवाले मियात्र जमा हो गये ; पर हमने मुझे ज़रा भी मय नहीं मान्यम हुआ । इसके बाद दूसरे पहरमें काले-काले और अनिराय मयदूर राज्ञम प्रकट होकर ‘किन्ड-किन्ड’ शब्द कहने लगे । पर ये भी मेरे सत्यके प्रमाणसे मृष्ट हो गये । तीसरे पहरमें “अरे दाम ! तू कहाँ जायेगा ?” यह पूछनी और हाथमें शस्त्र लिये हुई शाकिनियों दिखलाई पड़ीं । ये भी मेरे धर्मके भागे मृष्ट

होगयीं। इससे बाद, मे राजन्! रातके चौथे पहरमें, दिव्य यस्त्र धारण
 बिन्दे, विविध साधूधर्मोंसे सुशोभित, देवाङ्गनाके समान रूपवती, मुक्त-
 केशी, भयङ्कर मुखवाली, हाथमें बख्त्रिका (बक्ता) लिपे मय उत्पन्न
 करती हुई एक स्त्री मेरे पास आकर बोली,—“घर जा, रे दुष्ट ! मैं ममी
 तुम्हे जहन्नुम भेजे देती हूँ।” उसे देखकर मैंने अपने मनमें विचार
 किया,—“हो न हो, यही महामारी है।” महाराजा ! यह विचार मन-
 में खाते ही मैंने बायें हाथसे उसे पकड़ा और दाहिने हाथसे छुरी मारने-
 के लिये उठापी। इतनेमें यह मेरे हाथको मरोड़ कर भागने लगी। यस
 मैंने उसे भागते-न-भागते उसकी दाहिनी जाँघमें छुरीसे झूल कर दिया
 और इसी खेवातानोंमें उसके हाथका कड़ा मेरे हाथमें चला आया। इसी
 समय सूर्योदय हो आया। उसको ऐसा आश्चर्य-भरी कहानी सुनकर
 राजाने कहा,—“हे वीर पुरष ! तुमने उस महामारीके हाथसे जो
 कड़ लिया, वह मुझे दिखलाओ।” यह सुनतेही उसने घटपट मरने दुपट्टे-
 के छोरमें बंधा हुआ वह कड़ निकाल कर राजाके हाथमें दे दिया।
 उस कड़े पर अपना नाम देध, राजाने सोचा,—“वे ! तो क्या मेरी
 पुत्री ही महामारी है ! यह गहना तो उसका है।” ऐसा विचार मनमें
 जातेही राजा शीवादिक्के बडाने उठे और कन्याके महलोंमें चले
 आये। वहाँ पहुँच कर उन्होंने देखा, कि उनकी कन्या सोयी हुई है।
 उसका दाहिना हाथ खाली है,—उसमें कड़ा नहीं है। साथही
 उन्होंने उसकी जाँघमें झूलकर पड़ी बंधी हुई भी देखी। यह सब देख-
 कर राजाकी तो ऐसा दुःख हुआ, मानों उनके सिरपर बिजली गिर
 पड़ी हो। उन्होंने सोचा,—“अहा ! मेरे इस निर्मल कुलको इस
 दुष्ट कन्याने कलङ्कित कर दिया ! चाहे जैसे हो इसका निग्रह करना
 अत्यन्त आवश्यक है, नहीं तो यह सारे नगरके लोगोंको मार डालेगी।”
 ऐसा विचार कर वे फिर सनानें लौट आये और निजानन्दसे बोले,—
 “माई ! यह तो बतलाओ, तुमने जो उस मुर्देकी रखवाली की, वह
 केवल साइसके ऊपर मरोसा करके की, अथवा तुम कोई मन्त्र भी

जानने हो ! उसने उत्तर दिया,— “हे महाराज ! आप वार्त्तोंके सम्बन्ध ही मेरे धर्ममें सन्त-अन्त होना क्या आया है । मैं मन्त्र भी जानता हूँ ।” यह सुन, राजाने समासे मन्त्र ओगोंको हटाकर एकान्तमें मित्रानन्दके पूछा,— “माई ! मुझे तो ऐसा मालूम पड़ता है, कि मेरी ही पुत्री महामारीका भयगार है । इसमें कोई संदेह नहीं । इसलिये तुम अपनी मन्त्र-शक्तिसे उसे दृष्ट हो ।” मित्रानन्दने कहा,— “महाराज ! यह बात तो अनहोनी मालूम पड़ती है । आपके कुलमें उत्पन्न क्या मला महामारी कैसे होगी ?” राजाने कहा,— “माई इसमें अनहोनी कुछ भी नहीं है । क्या मेघसे पैदा हुई बिजली प्राणोंका नाश नहीं कर देती ?” मित्रानन्दने फिर कहा,— “अच्छा, महाराज ! आप कृपाकर मुझे अपनी कम्याको दिखाइए, जिसमें मैं देखकर इस बातकी जाँच कर लूँ, कि वह मेरे द्वारा साध्य है वा नहीं ?” राजाने कहा,— “आमो तुम वहीं जाकर देन आमो ।” तदनन्तर राजाके कुलमेंके मुलाधिक वह राजकुमारीके महलमें गया, उस समय राजकुमारीकी नींद बूट गयी थी और वह अंगी हुई थी । उसे आते देख, राजकुमारीने सोचा,— “यह तो यही मनुष्य मालूम पड़ता है, जिसने मेरा कड़ा छोन लिया था और छुरीसे मेरी अंगामें घाव कर दिया था । परन्तु यह वैधव्य कहाँ चला आ रहा है, इससे तो मालूम पड़ता है, कि इसे राजाकी आज्ञा प्राप्त हो चुकी है ।” ऐसा विचार कर उसने उसको बैठनेके लिये आसन दिया । आसन पर बैठकर उसने कहा,— “राजकुमारी ! मैंने तुम्हारे ऊपर महामारी होनेका बड़ा भारी कलङ्क लगा दिया है, जिससे आज ही राजा तुमको मेरे हवाले करने वाले हैं । इसलिये यदि तुम्हारी इच्छा हो, तो मेरे साथ चलो, मैं तुम्हें अपने साथ ले चलूँ, और अपने मित्र अमरवत्ससे मिला दूँ । यदि तुम्हें यह बात नहीं पसन्द हो, तो कहो, मैं इतना ही जानेपर भी तुम्हारे ऊपरसे कलङ्क दूर कर यहाँसे चला जाऊँ ।” यह सुन, उसके गुणोंसे प्रसन्न बनी राज-कन्याने सोचा,— “अहा ! यह मनुष्य मेरे ऊपर कितना प्रेम रखता

है ? इसलिये मुझे तो कुछ दुःख उठाकर भी इसका आश्रय ग्रहण करना चाहिये । राज्यका लाभ तो सुलभ है ; परन्तु ऐसा स्नेही मनुष्य मिलना बड़ा ही दुर्लभ है ।” ऐसा विचार कर उसने कहा,—
“हे भाग्यवान् ! मेरे प्राण भी तुम्हारे अधीन हैं । मैं तुम्हारे साथ चलने-
को तैयार हूँ । क्या तुमने नहीं सुना है, कि,—

“अंधो नरिंदधितं, वरसादां पादियं च नहिना य ।

ततो गच्छन्ति कुदं, जतो धुतंदि निजन्ति ।”

अर्थात्—“अन्धा मनुष्य, राजाका मन, वरसातका पानी
और सौ इन्हें ज़िधर धूर्त लोग लें जाते हैं, उधर ही ये चले जाते हैं ।

यह सुन, अपना मनोरथ सफल हुआ समझकर मिश्रानन्दने राज-
कुमारीसे कहा,— “हे सुंदरी ! जब मैं तुम्हारे सिरपर सरसोंके दाने
छोड़ूँ, तब तुम उनको फूँक मारना ।” राजकुमारीने यह बात स्वीकार
कर ली । इसके बाद उसने राजाके पास आकर कहा,— “राजन !
मैं इस महामारीको वशमें ला सकता हूँ ; पर आप एक तेज चालका
घोड़ा मँगवाकर तैयार रखिये, जिसमें मैं उसी पर चढ़ाकर रातोंरात
आपके देशसे याहर ले जा सकूँ । अगर कहीं राहमें सूर्योदय हो गया,
तो वह वहीं रह जायगी । यह सुन, डरे हुए राजाने एक हवाकी सी
तेज चाल वाला मनोमिष्ट नामक अच्छी नसलका घोड़ा तैयार करवाकर
उसके सुपुर्द किया । इसके बाद सन्ध्याके समय राजाके सेवक राज-
कुमारीको राजाके हुक्मसे बाल पकड़ कर ले आये और मिश्रानन्दके
हवाले कर दिया । उस समय उसने ज्योंही उसके ऊपर सरसोंके
दाने छोड़े, त्योंही वह फुफकार सी छोड़ने लगी । इस पर मिश्रानन्दने
उसे बड़े जोरसे ललकारा, जिससे वह शांत हो गयी । इसके बाद
उसने राजकुमारीको घोड़े पर घेठा, आगे रथाना कर दिया और
आप उसके पीछे-पीछे चला । राजा दरवाजे तक उसे पहुँचा कर महलों-
में लौट आये ।

इसके बाद मार्गमें जाते-जाते राजकुमारने मिश्रानन्दसे कहा,—

“हे सुन्दर ! तुम भी भाकर इसी घोड़े पर बैठ जाओ। ऐसी अच्छी सवारी रहते हुए भी तुम पाँच प्यादे क्यों चलते हो ?” यह सुन, मित्रा-नन्दने कहा,— “जबतक मैं इस राज्यकी सीमासे बाहर नहीं हो जाता, तबतक मैं पैदलही चलूँगा।” उसके ऐसा कहने पर कुछ देर ठहर कर राजकुमारीने फिर कहा,— “हे भद्र ! अब हमलोग अपने देशकी सीमासे बाहर हो गये, अब तुम भी भाकर इसी घोड़े पर बैठ जाओ।” मित्रानन्दने कहा,— “सुन्दरी ! मैं नहीं बैठनेके कई कारण हैं।” उसने पूछा,— “कौनसा कारण है ?” यह बोला,— “सुन्दरी ! मैं तुम्हें अपने लिये नहीं ले जा रहा हूँ ; बल्कि अपने मित्र अमरदत्तके लिये।” ऐसा कह उसने अपने मित्रकी सारी कथा उसे सुनाते हुए फिरसे कहा,— “हे भद्र ! इसीलिये मेरा तुम्हारे साथ एक आसन या हाथ्या पर बैटना उचित नहीं है।” मित्रानन्दकी ये बातें सुन, विस्मय होकर राजकुमारीने अपने मनमें विचार किया,— “ओह ! इस मनुष्यका चरित्र तो बड़ा ही आदौकिक है। माला जिसके लिये लोग अपने बाप, मा, भाई और मित्रके साथ घोषाघड़ी किये बिना नहीं रहने, ऐसी सुन्दर रूपवाली स्त्री पाकर भी यह अपने मनमें उनकी अमिताया नहीं करना, यह तो बड़े ही आश्चर्यकी बात है। यह अवश्य ही कोई महात्मा है। अपने कार्यकी निश्चिके लिये तो सब लोग दुःख उठानेको तैयार रहने हैं, पर दूसरे-के लिये दुःख उठाना किसी शिखरे ही पुण्यका काम है।” ऐसा विचार करती हुई राजकुमारी उसके गुणोंपर लट्ठू हो गयी। अमरा; ये दोनों पाटलिपुत्र नगरके पास आ पहुँचे।

इधर दो महीनेकी अवधि बीत जाने पर भी जब मित्रानन्द नहीं आया, तब अमरदत्तने रत्नमार सेठने कहा,— “हे नान ! मेरा मित्र तो आज्ञाचक नहीं आया, इसलिए आप क्याकर मेरे लिये अकड़ियोंकी एक चिन्ता तैयार कराइये, जिसमें दुःखसे जल्ता हुआ मैं प्रवेश कर जाऊँ।” यह सुन, सेठकी बड़ा दुःख हुआ, परन्तु स्थावर उसका बड़ा अग्रदूत, उसने बहोत कुछ आर्थिक माला नगरके बाहर जाकर एक चिन्ता तैयार

कलश लेकर हाथीने आपही भाए भाकर उसके मस्तक पर राज्याभिषेक किया और उसे खड़े उठाकर अपनी पीठपर बैठा लिया । इसके बाद बहुतसे मनुष्योंसे घिरा हुआ, पाँच प्रकारके बाजोंके शब्दसे मन-हो-मन परम भानन्द अनुभव करता हुआ अमरवत् नगरमें आया । उस समय पुर-भारियाँ उसे देखनेके लिये घिर आयों और दम्पतिकी सुन्दरता देख आपसमें कहने लगीं,—“महा ! इस राजाका रूप कैसा अपूर्व है !” दूसरी ली बोली,—“इस सुन्दरीका सा रूप तो शायद देवलोकमें भी नहीं होता होगा !” तीसरी बोली,—“यह लो बड़ी ही भाम्ययती है, क्योंकि इसने ऐसा गुण और रूपसे सुरोमिन स्वामी पाया है ।” चौथी बोली,—“यह पुरुष बड़ाही पुण्यात्मा है, जो इसने परदेशमें भाकर भी देवाङ्गनाकी सी अनुपम स्त्रीप्राप्त की ।” और कोई दूसरी ली बोली,—“इसके मित्रकी जितनी प्रशंसा की जाय, कम है ; क्योंकि उसने जी-तोड़ परिश्रम करके अपने मित्रके लिये ऐसी सुन्दरी और मृग-लोचनी ली दूँद निकाली ।” फिर दूसरी बोली,—“यह सेठ भी कम बड़ाईके योग्य नहीं है, क्योंकि इस भाम्ययान्ने कुछ और शील जाने बिना ही इसे अपने पुत्रकी तरह रखा ।” इसी प्रकारकी पुर-लियोंकी बातें सुनता हुआ अमरवत् राजमहलके द्वार पर आया और हाथीसे नीचे उतर, राज-मण्डलसे सेविन होकर राजसभामें जा, सिंहासन पर बैठ रहा । रानी रत्नमञ्जरी और मित्र मित्रानन्द उसके सामनेही बैठे । और-और लोग भी अपने अपने योग्य स्थानोंपर बैठ गये । इसके बाद मन्त्री और सामन्तोंने मिल जुलकर उसका राज्याभिषेक करके प्रणाम किया । राजा होने पर उसने रत्नमञ्जरीको पटरानी बनाया, बुद्धिमान् मित्रानन्दको सारे राज्यकी मुद्राओंका अधिकारी बनाया और सेठ रत्नसारको पिताकी जगह पर माना । इस प्रकार उचित व्यवस्था कर वृत्तोंमें शिरोमणि अमरवत् राजा न्याय-पूर्वक अपने अलङ्कित राज्यकापालन करने लगा ।

मित्रानन्द राजकाजमें फँसे रहने पर भी अपनी मृत्युकी सूचना देने-पाव्दी उस लाशकी बातका नहीं मूलना था । इसीसे यह मन-ही-मन

सुख-सैन नहीं बना था । एक दिन हमने राधा मन्नाइलसे निवे-
दन किया,—“ हे राजा ! हम जानते हैं कि, जो हमने मेरी मृत्युके
विषयमें जाना था, मुझे कभी नहीं मूल्य । उसीसे निवे तो भी नाना
मेरा सोच रहा है ।” यह सुन, राजने कहा,—“ हे मित्र ! तुम बेद न
बनो, यह सब भ्रमनीय बात थी ।” निजामुद्दीनने कहा,—“ निजामुद्दीन
बाराह वहाँ रातेर भी मेरा मन दुःखित होकर रहता है, इसलिए मुझे
हुछ दूर भेज दो ।” यह सुन, राजने कुछ दिवार करनेके बाद कहा,—
“ हे मित्र ! यदि तुम्हारी ऐसी ही इच्छा है तो तुम कुछ विद्यापीठोंमें
के साथ वसन्तपुर चले जाओ ।” इसके बाद निजामुद्दीन ठीकर ठीकर
वसन्तपुरकी ओर चला । राजने अपने भद्रमियोंकी भी उसीके साथ
रखवा कर दिया । साथ ही उन्हें उनके समय पर भी कहा, कि भुक्तोंसे
कोई एक भादनी वसन्तपुर पहुंचनेके बाद वहाँ सब निजामुद्दीन
इशान-समाचार मुझे सूना जाना ।” उन भद्रमियोंने “ बहुत अच्छा ”
कहाकर राजाकी आज्ञा स्वीकार कर ली ।

एक राजा बनारस निजामुद्दीनसे विदोषसे घिल होने पर भी मुक्तोंसे
प्रभावसे प्राप्त राजलक्ष्मीकी पछोछे साथ भोगते रहे । बहुत दिनों बाद
उनेर भी राजाके भेजे हुए भद्रमियोंसे से कोई लौटकर नहीं गया,
इसलिए राजने कुछ अन्य मनुष्योंके उपरकी ओर भेजा । कुछ दिन
बाद वे लौट आये और राजासे बोले,—“ हे स्वामिन् ! हम लोग वसन्त-
पुर तक जाकर लौट आये, पर वहाँ निजामुद्दीन नहीं मिला, न उन-
का कुछ समाचार वहाँ सुननेमें आया ।” यह सुन, राजने अपने सैन
काहुल होकर भली रातोंसे कहा,—“ मित्रे ! अब मैं क्या करूँ ? निज-
ाम तो कुछ पताही नहीं लाया ।” यही बोले,—“ हे स्वामिन् ! यदि
कोई जानें पुराने वहाँ का आये, तो संभव है कि, और तो कोई उत्तर
इस संशयके दूर होनेका नहीं मालूम पड़ता ।” वे दोनों इस तरहकी
बातें करता रहे थे, कि अकस्मात् दगाई मालीने आकर कहा,—“ हे
राजन् ! यह प्रकारके जनकी धारण करनेवाले धोषधंदोप नामक व्यक्ति

श्रीमान्के नगरसे बाहरवाले उद्यानमें, जिसका नाम अशोकतिलक है, पधारे हैं और लोगोंको धर्मका उपदेश कर रहे हैं ।” यह सुनतेही राजा-ने उस मालीको पाँचों अंगोंके आभूषण इनाममें दिये । वे तिनकी राह देख रहे थे, उन्हीं गुदके आगमनकी बात सुन उनके घिसमें बड़ी मजि उत्पन्न हुई । इसके बाद वे बहुतसी सामग्रियाँ साथ लिये, पटरानी ममेन गुदकी चन्दना करने गये । यहाँ पहुँच राजाने खड्ग, छत्र, भादि राज्यके धिड़ोंकी दूर फेंक, गुदकी तीन बार प्रक्षिप्ता और उत्तरासङ्ग कर, विधि-पूर्वक उनकी चन्दना की । इसके बाद वे परिचार सहित उचित स्थान पर बैठे । गुद महाराजने कहा,—“हे राजन् बुद्धि-मान् मनुष्योंको चाहिये, कि सब दुःखोंका नाश करनेवाले और सब सुखोंके देनेवाले धर्मकी सेवा करें ।”

इसी समय अशोकदत्त नामक एक बड़े भारी सेठने गुदसे पूछा,—
“हे पूजनीय ! मेरे अशोकप्री नामकी एक पुत्री है । वह न मालूम किम कर्मके दोषसे शरीरसे बहुत ही दुःखी होरही है ? कृपाकर बतलाइये, कि बड़े-बड़े उपचार करनेपर भी उसका रोग तनिक भी कम क्यों नहीं होता ?” सूरिने कहा,—“संजयी ! तुम्हारे यह पुत्री पूर्ण मयमें मृत-शाल नामक नगरके मृतदेव नामक सेठकी कुमुमयनी नामक स्त्री थी । एक दिन हमारे घरमें बड़ा हुमा दूध बिही गी गयी । यह देख, कुमुमयनीने मोथमें आकर अगनी देवमनी नामक पुत्रपथुने कहा,—“मरी, क्या मेरे मिर हाकिमी मवार हो गयी है, जो तू हम प्रकार दूधने देखकर हो रही ?” यह सुन, वह बेवारी बालिका डर गयी और घर-घर काँपने लगी । यह हाल देख, उन्नी समय उन्की घरके पास खड़ी एक घंटा-की मने, जो हाकिमीका मन्त्र जानती थी, बहाना पाकर उस बट्टके शरीरमें हाकिमी प्रविष्ट करदी, त्रिमने वह बड़ा दुःख पाने लगी । वह तेरे देखने उसकी चिन्ता की, पर वह किसीमें अच्छी नहीं हुई । एक दिन वह रोगी यहाँ आ पहुँचा । उन्ने मंत्रके बलमें मन्त्रमें अगनी मन्त्र लपका । कम लपकावती देवमने मन्त्रे नष्टकी हुई घर गयी ।

लिनी घाल खोले वहाँ आ पहुँची । योगीने पूछा,—“तूने इस बेचारी बहूके शरीरमें क्यों डाकिनी प्रविष्ट कर दी ?” वह बोली,—“इसकी सासने पेसीही बात इसे कही थी, जिसे सुनकर यह बेचारी उसके मारे घर-घर काँपने लगी थी । बस यही मीका देखकर मैंने इसके शरीरमें डाकिनी प्रविष्ट कर दी ।” यह सुनकर, योगीने अपने मन्त्रके बलसे उस डाकिनीको बहूके शरीरसे बाहर निकाल डाला । यह समाचार पाकर उस नगरके राजाने उस चण्डालकी स्त्रीको देश-निकाला दे दिया और लोग कुसुमावतीकी सासको काल-जिह्वा कहने लगे । इस तरह बुरा नाम धराकर वह बेचारी संसारसे विरक्त हो गयी और एक साध्वीसे दीक्षा ग्रहण कर, शुभ-भाव-युक्त हो, चारित्र्य पालन करती हुई मरकर स्वर्ग चली गयी । वहींसे च्युत होकर वह तुम्हारी पुत्री हुई है । उसने पूर्व भवमें जो दुष्ट वचन कहा था, उसको उसने गुस्से नहीं धिक्कराया, इसीसे वह इस समय आकाशदेवीके दोषसे दूषित हो रही है । इसलिये सेठजी ! तुम अपनी पुत्रीको यहाँ ले आओ । मेरा वचन सुनकर उसे जातिस्मरण उत्पन्न होगा, जिससे उसे पूर्व भवकी बातें स्पष्ट दिखायी देने लगेंगी और वह तत्काल दोषसे मुक्त हो जायेगी । सूरफे पेसे वचन सुन, सेठ तुरत ही अपनी पुत्रीको गुरुके पास ले आया । उसी समय गुरुके प्रभावसे आकाशदेवी जाती रहीं, अपना चरित्र सुनकर उसे जातिस्मरण हो आया और पूर्व भवकी बातें मालूम कर बोली,—“हे प्रभु ! आपने जो कुछ कहा, वह ठीक है । अब मुझे इस संसारमें रहनेकी जी नहीं चाहता, इसलिये मुझे दीक्षा दे दीजिये ।” इसपर गुरुने कहा,—“हे सुन्दरी ! अब तो तुम्हें अपने कर्मों-के फल भोगने बाकी हैं, इसलिये तुम उन्हें भोग लेनेके बाद चारित्र्य ग्रहण करना ।”

यह सुनकर उस सेठने गुरुकी चन्दना कर, कुछ धर्मकी बातें करनी बढ़ीकार कर, पुत्रीके साथ घरकी राह ली ।

यह सब हाल सुनकर राजाने सोचा,— “देखना है”, कि इस

संसारमें हमारे इन गुह्य महाराजका ज्ञान बढ़ा ही बहुत है । उन्होंने इस सेठकी लड़कीके पूर्व जन्मकी बात माँछों देनी बातको तरह साफ-साफ बतला दी । ऐसा विचार कर राजाने गुह्यसे पूछा, “हे भगवन् ! क्याकर मैंने प्राणप्रिय मित्र मित्रानन्दका समाचार मुझे सुनाये ।” यह सुन, गुह्यने कहा,—

“हे राजन् ! तुम्हारा यह मित्र तुम्हारे पाससे चलकर क्रमशः जल-दुर्गका डलझुन कर, स्थल दुर्गमें गया । वहीं भरण्यमें किसी पर्वतसे जहाँ नदी धरती थी, वहीं तुम्हारा मित्र अपने सब साथियों समेत भोजन करने बैठा । सब सेवक भी भोजन करने लगे । इसी समय अकस्मात् भीलोंने उन पर घावा कर दिया और उन प्रवण्ड भीलोंके सामने सब धीर परास्त हो गये । यह हाल देख, डरके मारे मित्रानन्द भकेला भाग गया । उसके सेवकोंमेंसे भी कुछ लोग भाग गये और कुछ मरकर वहीं चेत रहे । जो भागे, वे शर्मके मारे फिर नहीं लौटे और जो मरे, वे वहीं पड़े रहे । उधर तुम्हारा मित्र भागता-भागता जङ्गलमें एक जगह सरोवर देख, उसका जल पी, एक बड़े पेड़के नीचे सो रहा, इतनेमें उस पेड़के कोटरमेंसे निकलकर एक काले नागने उसे काट खाया । थोड़ी ही देरमें कोई तपस्वी वहाँ आया । उसने तुम्हारे मित्रकी यह अवस्था देख, जलको प्रक्षिप्त करके उसके भंगोंपर छिड़क दिया । इससे उसकी जान लौट आयी । तब योगीने पूछा,— “हे माई ! तुम भकेले कहीं जा रहे हो ?” इस पर उसने अपनी राम-कहानी उषोंकी स्थों कह सुनायी । सुनकर तपस्वी अपने स्थानको चले गये । मित्रानन्दने सोचा,—“यह देखो, मैं मृत्युका कारण उपस्थित हो जानेपर भी नहीं मरा और झूठमूठ हठ करके मित्रका भी साथ छोड़ आया । अच्छा, चलो, मित्रके ही पास चली ।” ऐसा विचार कर वह तुम्हारे पास आने लगा । रास्तेमें उसे चोरोंने पकड़ लिया और उसको अपने गाँवमें ले गये । इसके बाद उन्होंने उसको गुलामी-का व्यापार करने वालोंके हाथ बेच दिया । वे व्यापारी पारसकुल नामक

परदेशको चले जा रहे थे । जाते-जाते वे उज्जयिनी नगरके बाहर बागोचेमें रातको टिक रहे । आधी रातके समय वन्धन कुछ शिथिल होनेके कारण मित्रानन्दने उससे शीघ्र छुटकारा पा लिया और भागते-भागते नगर की मोरीकी राहसे नगरमें प्रवेश किया । उस समय उस नगरमें चोरोंका बड़ा उपद्रव जारी था; इसलिये चोरोंका दमन करनेके निमित्त राजाने कोतवाल पर कड़ी ताकीद कर रखी थी । दैवयोगसे स्वयं कोतवाल-ने ही मित्रानन्दको इस प्रकार चोरोंकी तरह शहरमें घुसते देख लिया । अतएव उसने तुम्हारे मित्रकी मुरके कसबा कर, बेंतों और घूसोंसे उसकी पूरी तरह भरभरा कर, अपने सेवकोंके हाथमें बंध करनेके लिये सौंप दिया और कहा,—“इसे सित्रा-नदीके तीरपर ले जाकर बड़के पेड़से लटकाकर मार डालो, जिसमें नीरोंकी आँखें खुल जायें ।” सेवकोंके साथ जाते हुए तुम्हारे मित्रने विचार किया,—“उस दिन मुझे जो बात बड़ी थी, वह आज सब निकली । शहरमें कहा है कि

यत्र वा तत्र वा यतु, यदा तदा कर्तव्यम् ।

तथापि मुञ्चने शक्ती, न पूर्वज्ञानेन ॥ १ ॥

विभवो निर्धनत्वे च, दम्भे नरत्वे तथा ।

येन यत्र यदा मर्त्ये, तस्य न तमसा भवेत् ॥ २ ॥

यानि दूरम्भी ज्ञानेनानाम्नादाहृतानि ।

तत्रैवार्जयते नृणां श्रमिदानीदृक्कर्मणा ॥ ३ ॥

इत्यादि—“शरीर चाहे जहाँ जाये या जो कुछ करे, परन्तु ज्ञाने बिदे हुए कर्मने उसका छुटकारा होता अतन्त्र है । वैभव, निर्धनता, दम्भ और नरत्व—ये चारों चीजें दिन शरीरके विविक्तस्थान पर और दिन समय मिलने वाली होती हैं, उनको, उनमें स्थान पर और उनमें समय प्रान्त हुआ करता है । दुःखके स्थानमें उदर शरीर चाहे विद्वान् दूर भागजाये : परन्तु उदर कर्मके प्रभावसे वह फिर वहाँ का जाता है ।”

इस प्रकार विचार करते हुए मित्रानन्दको कोतवालके सेवकों ने निगरावही बड़के पेड़में लटका कर फाँसी दे दी, जिससे यह मृत्युको प्राप्त हो गया । तदनन्तर एक दिन ग्यालोंके लड़के गिल्ली-डण्डा खेलते हुए वहाँ आ पहुँचे और पूर्व कर्मके योगसे उनकी गिल्ली तुम्हारे मित्रके मुकाममें आ गयी ।”

इस प्रकार गुरु महाराजके मुकामसे मित्रका वृत्तान्त भवण कर, उसके गुणोंका स्मरण करते हुए राजा अमरवत्त बड़े जोर-जोरसे तिसकने लगे और राजमञ्जरी देवी भी उसके गुणोंको याद करके बड़ी दुःखित हुई । उन दोनोंको विनय करते देवकर गुरुने कहा,—“दुःख छोड़ कर संसारके त्यक्तकी चिन्ता करो । इस चार प्रकारकी गतिवाले संसारमें प्राणियोंको वास्तविक सुख तो शेषमात्र नहीं होता और दुःख बराबर ही मिलता रहता है । संसारमें ऐसा कोई जीव नहीं, जिस मरणकी देवता न सहन करनी पड़ी हो । कालवर्ती और वासुदेवके से महापुरुषोंको भी मृत्युने नहीं छोड़ा । इसलिये हे राजन् ! शोक छोड़ो और धर्म-कर्ममें लग जाओ, जिनमें फिर इस तरहका दुःख न हो ।” राजाने फिर पूछा —“हे भगवन् ! मैं धर्म करूँगा, पर भाव यह तो कष्टप्रद है, कि मित्रानन्द मरकर कहाँ चला हुआ है ?” मुनिने कहा,—“हे राजन् ! तुम्हारी इस राजीकी कोखमें मित्रानन्दका जीव पुरस्कारसे आया है । क्योंकि उमने मरने समय इसी तरहकी चिन्ता की थी । समय पूरा होने पर वह पुनः संसारमें उत्पन्न होगा । इसका नाम कल्याणन रखना । वह वहलें कुमार-वन्दी वाकर फिर राजा होगा ।” वह सुन, राजाने पूछा, —“हे महारथ ! मित्रानन्दकी चिन्ता किसी अन्तर्धान ही कोरकी तरह मृत्यु क्यों हुई ? अन्तर्धान ही राजीको मर-भारी कल्याणन क्यों लगा ? कृते कल्याणनवाले ही कल्याण-विरोध क्यों अनुभव करना पड़ा ? और इस दोनोंमें इतना अन्तर क्यों होने का क्या कारण है ?”

राजाने वे प्रश्न सुन, मुनिने कभी कालके द्वारा उन दोनोंका

मालूम कर कहा,—“हे राजन् ! सुनो—इस भवसे तीन भव पहले तुम क्षेमद्वर नामके एक कृपक थे । तुम्हारी पत्नीका नाम सत्यश्री था । तुम्हारे यहाँ घण्टसेन नामका एक नौकर था । वह नौकर अपने स्वामी पर बड़ी भक्ति तथा प्रीति रखता और साधवी बड़ा विनयी था । एक दिन उस नौकरने अपने खेतमें काम करते हुए पास वाले किसी खेतमें एक मुसाफिरको भनाजकी वालें तोड़ते देखा । यह देख तुम्हारे उस नौकरने कहा,—“रदो, मैं इसी खोरको पकड़ कर घृक्षसे लटकाये देता हूँ ।” यह सुनकर भी उस क्षेपके स्वामीने उसे कुछ नहीं कहा । यह देख, उस मुसाफिरने, उस नौकरकी बातोंसे मन-ही-मन दुःखित होकर विचार किया,—“खेतका मालिक तो कुछ बोलता ही नहीं और यह पापी दूसरे खेतमें रहता हुआ भी कैसे कठोर वचन बोल रहा है ?” ऐसा विचार करता हुआ वह अपने घर चला गया । इस प्रकार उस कर्मकरने कठोर वचन बोलकर दुःखदायी कर्मका उपार्जन किया ।

एक दिन भोजन करते समय जल्दबाज़ीके मारे उस कृपककी पुत्र-वधूके गलेमें कौर अँटक गया । इसपर उस कृपककी पत्नी सत्यश्रीने कहा,—“अरी, राक्षसी ! तू छोटे-छोटे कौर क्यों नहीं खाती, जिससे गलेमें न अँटके ?” इसके बाद एक दिन उस कृपकने नौकरसे कहा,—“हे भृत्य ! आज तुम्हें एक गाँवमें एक ज़रूरी कामके लिये जाना है, इस लिये तुम वहीं जाओ ।” इसपर उस नौकरने कहा,—“आज तो मैं अपने स्वजनोंसे मिलनेके लिये जाना चाहता हूँ, इसलिये आज तो नहीं जाऊँगा ।” यह सुन, कृपकने बिगड़ कर कहा,—“आज तो तुम्हें अपने स्वजनोंसे मिलनेके लिये नहीं जाना होगा ।” यह सुनकर उस नौकरको दुःख तो ज़रूर हुआ ; पर लाचार अपने स्वजनोंसे मिलने न जाकर वहीं रह गया । दूसरे किसी दिन उस कृपकके घरपर दो मुनि भिक्षा करने आये । कृपकने अपनी खोसे कहा,—“इन मुनियोंको दान दो ।” यह सुन, वह मन-ही-मन बड़ी हर्षित हुई और भाग्य-योगसे ऐसे सुपात्रोंका आना हुआ,

यही सोचकर शुभ भावनाओंसे युक्त हो, सुन्दर अन्न-जलसे उनको सन्तुष्ट किया । यह देख, पास ही खड़े उस नौकरने सोचा,—“ ये स्त्री-पुरुष धन्य हैं, जिन्होंने अपने घर आये हुए महामुनियोंका इस प्रकार भक्ति-पूर्वक आदर-सत्कार किया ।” इसी समय एकाएक उन तीनोंके सिर पर बिजली गिर पड़ी, जिससे ये तीनों एकही साथ मर गये और सी-धर्म नामक पहले देव-लोकमें अत्यन्त प्रीतियुक्त देव हुए । वहाँसे श्रुत होकर क्षेमदुरका जीव तो तुम्हारे शरीरमें आया, सत्यश्री रानी रत्न-मंजरी हुई और यह नौकरही तुम्हारा मित्र मित्रानन्द था, जो जीव पूर्व भयमें जैसा कर्म बाँधता है, उसको इस भयमें वैसाही प्राप्त होता है । पूर्व भयमें जो कर्म हँस-हँस कर बाँधा जाता है, उसका फल इस भयमें रो-रोकर भोगना पड़ता है ।” इस प्रकार अपने पूर्व भयकी कथा सुन कर राजा और रानी तत्काल सूर्च्छित होकर गिर पड़े । इसी समय उन्हें जाति-स्मरण हो आया और ये अपने पूर्व भयका सारा हाल प्रत्यक्ष देखने लगे । इसके बाद होशमें आनेपर राजाने कहा,—“ हे भगवन् ! शानरूपी सूर्यके समान आपने जो कुछ कहा, यह मैंने भी प्रत्यक्ष देख लिया । भय कृपाकर मुझे यह धर्म अतलाहये, जिससे धर्ममें मेरी योग्यता बढ़े ।”

गुरुने कहा,—“ हे राजन् ! जब तुम्हारे पुत्र उत्पन्न हो, तब तुम चारित्र्यग्रहण कर लेना । भगो तुमको धायक-धर्म ग्रहण करना चाहिये ।” यह सुनकर राजाने रानीके साथ-ही-साथ बारह प्रकारका धायक-धर्म ग्रहण किया । इसके बाद राजाने गुरुसे पूछा,—“ उस समय जिस मुर्देने मित्रानन्दको यह बात कही थी, वह कहनेवाला कौन था ?” सूरिने कहा,—“ यह मनाजकी बालोंका चोर मुन्नाफ़िर कमलः मृत्यु होनेपर संसारमें भ्रमण करता हुआ उस बट-यूद्धपर जाकर ग्रेन हो गया । उसने जब उस दिन मित्रानन्दको देखा तब पूर्वजन्मका घेर याद हो जानेके कारण उस मुर्देके मुखमें उतर कर वैसा यधन बोल गया ।” यह सुन, राजा अमरदत्तके सारे सन्देश दूर हो गये और ये रानी सहित सूरिको प्रणाम कर घर चले गये । गुरु भी अन्यत्र विहार कर गये ।

इसके बाद समय पूरा होनेपर रानी रत्नमञ्जरीके पुत्र उत्पन्न हुआ । उसका नाम वही रखा गया, जो गुरुने बतलाया था । धात्रीसे पालित होता हुआ वह राजकुमार क्रमशः बाल्यावस्था बिनाकर, बहुसर कला-ओंका अभ्यास कर, राज्यका भार संभालने योग्य हो गया । इसी समय एक दिन वही गुरु फिर वहां पधारे । भालीने आकर राजासे गुरुके आगमनकी यात कही । बस उसी समय राजाने अपने पुत्रको राज्यका भार सौंप, रानीके साथ ही वैराग्यकी दीक्षा ग्रहण कर ली । धर्मघोष सुनिने राजा और रानीकी प्रपञ्चा देकर प्रतिबोधके निमित्त समाके समक्ष इस प्रकारकी शिक्षा दी,—“इस संसार-रूपी समुद्रकी तरनेके लिये यह दीक्षा नौकाके समान है और यद्दे पुण्यसे प्राप्त होती है । इसे प्राप्त कर जो जीव विषयोंके लोभमें पड़ता है, वह जिनरक्षितकी तरह घोर संसार-सागरमें पड़ता और जो प्राणी प्रार्थना करने पर भी विषय-से विमुख रहता है, वह जिनपालितके समान सुखी होता है ।” यह सुन, राजर्षि अमरदत्तने गुरुसे पूछा,—“जिनरक्षित और जिन पालितने किस प्रकार सुख और दुःख पाया, इसका हाल क्याकर बतलाइये ।” यह सुन, गुरुने सिद्धान्त ग्रन्थोंमें कहां हुई उनकी कथा इस प्रकार कह सुनायी:—

जिनरक्षित और जिनपालितकी कथा

धन्वापुरीमें जितशत्रु नामके राजा थे । उनकी रानीका नाम धारिणी था । उसी नगरमें माकन्दो नामका एक धनी सेठ रहता था । यह शान्त, सरल-हृदय, और उदार हृदिवाला मनुष्य था । उसकी स्त्री का नाम भद्रा था । उसके दो लड़के थे, जिनमें एकका नाम जिनरक्षित और दूसरेका जिनपालित था । वे अब सुपाठम्याकी श्रम हुए, तब अज्ञान पर चढ़कर परदेस जाने और धन कमाने लगे । इस प्रकार उन्होंने ग्यारह बार समुद्र-यात्रा सातन्द् मन्यत्र की और धन भी कुछ कमाया ।

इसके बाद जब वे बारहवीं बार धन कमानेके लिये जलके मार्गसे जाने-को तैयार हुए, तब उनके पिताने कहा,—“पुत्रो ! अपने घरमें धनकी कोई कमी नहीं है। तुम लोग जैसे चाहो, इस धनको दान और भोगमें नष्ट करो। ग्यारह बार तो तुम लोग क्षेम-कुशलसे यात्रा कर भाये। पर कहीं इस बार विघ्न हुआ, तो ठीक नहीं होगा, इसलिये बहुत धोम करना उचित नहीं। यदि मेरी बात मानो, तो तुम लोग घरही रहो।” पिताकी यह बात सुन, उन दोनोंने कहा,—“पिताजी ! ऐसी बात न कहिये। इस बारकी यात्रा भी मापकी हवासे सकुशलही बीतेगी।” यह कह कर उन दोनोंने किरानेका बहुतसा माल जहाज़ पर लादा और जल, ईंधन इत्यादि सामग्रियोंके साथ जहाज़ पर सवार हो, समुद्रकी राह चल पड़े। क्रमशः वे मध्य समुद्रमें आ पहुँचे। इतनेमें मेघ घिर आनेसे धन्धकार होने लगा, आकाशमें बादल गरजने लगे, बिजली चमकने लगी और बड़े जोरकी आँधी चलने लगी। बैद्य-योगसे यह जहाज़ क्षण भरमें टूट गया। जहाज़ पर मिलने लोग सवार थे, वे सबके सब डूब गये। उस समय जहाज़के स्वामी जिनपालिन और जिनरक्षितको एक तफ्ता हाथ लग गया, जिसे उन्होंने बड़ी मज़बूतीसे पकड़ लिया। उसेही पकड़े हुए वे तीसरे दिन रत्नद्वीपमें आ निकले। यहाँ पहुँच कर वे नारियलके फल खा-खाकर जीवन-निर्वाह करने लगे और नारियलका तेल शरीरमें लगाकर सुन्दर देहपाले होकर यहीं रहने लगे।

एक दिन बटोर, निर्दय और तीक्ष्ण चक्षु हाथमें लिये, उस द्वीपकी मधिष्ठात्री देवीने उनके पास आकर कहा,—“यदि तुम मेरे साथ विनय-भोग करो, तब तो तुम यहाँ कुशलसे रह सकोगे, नहीं तो मैं इसी चक्षुसे तुम्हारे मिर काट डालूंगी।” यह सुन, उन्होंने मयमीन होकर कहा,—“हे देवी ! मैंने जहाज़के टूट जानेसे हम यहाँ मुशारी शरण-में आ पहुँचे हैं। अब जो कुछ तुम्हारी आज्ञा होगी, वह करनेके लिये हम तैयार हैं।” यह सुन, प्रसन्न होकर वह देवी उनको अपने घर ले

गयी और उनके शरीरसे अशुभ पुद्गल निकाल कर शुभ पुद्गलोंका प्रक्षेप कर, उन दोनोंके साथ मनमाने तौरसे विषय-सुख भोगने लगी । वह उन दोनोंको सदा असूत-फल खानेकी देती थी। इसी तरह वे कुछ दिनों तक वहाँ बड़े सुखसे रहे । एक दिन देवोंने उनसे आकर कहा,— ‘लवण-समुद्रके अधिष्ठाता सुस्थित नामक देवने मुझे आह्वा दी है, कि तुम इस समुद्रको इसीसे धार इसके बन्दरसे कुड़ा-कवरा निकाल कर शुद्ध कराओ । समुद्रमें जो कुछ वृक्ष, काष्ठ और अन्य अपवित्र पदार्थ हो, उन सबको निकाल कर किसी एकान्त स्थानमें फेंक दो ।’ उनका यह हुक्म पाकर मैं अब वहाँ जा रहा हूँ । तुम दोनों सानन्द यहीं पड़े रहो । यहाँ सुन्दर फल खाकर तुम अपना पेट भरना । बड़ाचित्र यहाँ अकेले रहते-रहते तुम्हारा जो उच्छट जाये, तो तुम क्रीड़ा करनेके निमित्त पूर्व दिशामें जो वन है, उसमें चले जाना । उस वनमें निरन्तर मोक्ष और वर्ण—ये दो स्तुप छायाँ रहती हैं । वहाँ दो स्तुप होनेके कारण तुम्हारा जो स्नान लगेगा । पर यदि वहाँ भी तुम्हारा मन न लगे, तो मैं आह्वा देती हूँ, कि तुम उत्तर दिशावाले वनमें चला जाना, जहाँ शरद और हेमन्त, ये दो स्तुप सदा बनी रहती हैं और अगर वहाँ भी मनको तुष्टि न प्राप्त हो, तो पश्चिम दिशावाले वनमें चले जाना, वहाँ शिशिर और वसन्त—ये दो स्तुप निरन्तर वर्धमान रहती हैं । वहाँ जाकर मनमाना मौज करना : परन्तु दक्षिण दिशावाले वनमें तो हर्गिज न जाना; क्योंकि वहाँ बड़ा भारी दृष्टिविर नामका एक काला सर्प रहता है । ”

यह कह, वह देवी चली गयी । उसके जाने बाद वे दोनों सँठके देटे देवाँके दललाये हुए तीनों वनोंमें आनन्दसे विहार करने लगे । एक दिन उन दोनोंने सोचा,— ‘देवाँने हमें दक्षिण-दिशाके वनमें नहीं जाने के लिये इतना जोर देकर क्यों कहा ? इसका कारण क्या है ?’ इसलिये चलो, एक धार चढ़कर देखें तो सही, कि वहाँ क्या है ?’ ऐसा विचार कर वे स्याङ्गित-चित्तसे उस वनमें गये । वहाँ पहुँचते ही

उनकी माकमें कड़ी दुर्गन्ध पहुँची । वे दुपट्टेसे नाक बन्द किये भागे पड़े । यहाँ पहुँचकर उन्होंने मनुष्यकी हड्डियोंका ढेर देखा । उसे देखकर उन्हें बड़ा डर हुआ । तो भी वे भागे जाकर जङ्गलकी सैर करने लगे । इतनेमें एक मादमी फाँसीसे लटका हुआ दिलाप करता दिखाई दिया । उन्होंने उसके पास जाकर पूछा,—“हे भाई ! तुम कौन हो ? तुम्हारी ऐसी दशा किसने की ? यहाँ जो चारों ओर मनुष्योंके मुँह दिखाई देते हैं, उसका क्या कारण है ? ” यह सुन, वह स्त्रीपर लटका हुआ मनुष्य बोला,—“मैं काकन्दी-नगरका रहनेवाला, जातिका धनिपति हूँ । ईश्वरयोगसे मार्गमें अज्ञान दूट जानेसे मैं एक तपस्ती पत्नीके रूप रत्नद्वीपमें भा निकला । यहाँको विषय-भोगके लिये मतवाली पत्नी हुई देवीने मुझे विषय-भोगके लिये रख छोड़ा । कुछ दिन बीतने पर उसने थोड़ेसे भयराधके कारण मुझे इस प्रकार शूली पर लटका दिया । ये सब मुझे भी उसीके मारे हुए हैं । मासूम होता है तुम भी उसी दुष्टा देवीके चक्करमें भा फँसे हो । भला यह तो बनलाभो, तुम यहाँ कैसे भाये ? ” इसके उत्तरमें उन दोनोंने भी अपनी सारी राम-कहानी उसे सुना कर पूछा,—“भाई ! अब यह तो बताओ, कि हम यहाँसे किसी प्रकार जीते-जागते निकल भी सकते हैं या नहीं ? ” उनमें कहा,—“हाँ एक उपाय है । यहाँसे पूर्वकी ओर एक वन है जिसमें शूलक नामक एक वृक्ष रहता है । वह पर्यंके दिन अम्भका रूप बनाकर पृथ्वी है कि मैं किसकी रक्षा करूँ ? किसे विपद्के मुँहसे बचाऊँ ? तुम दोनों उसी वृक्षकी भक्ति पूर्वक आराधना करो । जिस दिन वह तुमसे भाकर पूछे, कि किसकी रक्षा करूँ ? उस दिन तुम उससे कहना, कि हमारी रक्षा करो । इस प्रकार वह तुम्हारी रक्षा करनेको प्रस्तुत हो आवेगा । ” यह कह, वह उलट्टा देगा हुआ मनुष्य मर गया ।

तदनन्तर वे दोनों भाई उस मनुष्यके बनलाये हुए वनमें भाकर मनोहर पुष्पोंसे वन वृक्षकी पूजा-अर्चा करने लगे । इसी प्रकार करते

10-15-51

For all my friends and family who are in the military, I hope you are all safe and healthy. I love you all.



एक पक्षी दिन का पड़ना । उस दिन यक्षने आकर पूछा,—“बोली, मैं किसकी रक्षा करूँ ? जिसे आपसिमें प्यारूँ ? ” इतनेमें उन दोनोंने धड़पट कहा,— “हे यक्षराज ! हमें दुःख-सागामें दुबनेमें प्यारो । ” यह सुन, शैलबने कहा,— “मैं तुम्हें दुःखमें डगर उद्योगों का पर तुम सावधान होकर मेरी एक बात सुनो । मैं जब तुम्हें यहाँसे ले चलूँगा, तब वह देवी भी तुम्हारे पीछे पीछे भावेगी और मोंटे-मोंटे पवन सुना-वेगी । उस समय यदि तुम उसकी बिबनी-भुरड़ी-पातोमें मतमें पसीज उठोगे, तो वह जरूर हाँ तुम्हें उठाकर समुद्रमें फेंक देगी और यदि उसकी ज़रा भी परवा न बिदे हुए राग-रहित होकर मेरे पीछे-पीछे चलते रहोगे, तो मैं तुम्हें निधय हाँ निषिंघ वन्यानगरीमें पहुँचा दूँगा और क्या कहूँ ! यदि वह देवी आये, तो तुम उसके साथ चार भाँसे भी न करता । वह उराने-धमकानेके लिये कुछ भी बदे, तो उसे सुन कर डरना नहीं । यदि तुम ऐसा करनेमें समर्थ हो सको, तो मामो, सभी मेरी पीठ पर सवार हो जाओ । ”

यक्षकी इस बातको दोनों भाइयोंने स्वीकार कर लिया । इसके बाद वे दोनों उस अश्वरूपी यक्षकी पीठपर सवार हो गये । वह अश्व-रूपी यक्ष उन्हें समुद्रके ऊपर-ही-ऊपर आकाशमें ले उड़ा ।

इधर देवी अपने हाथका काम पूरा कर अपने स्थानपर भायी और अपने मन्दिरमें उन दोनोंको न देखकर उपपुंस सप वनोंमें उन्हें दूँढ़ने लगी, पर वे कहीं नहीं दिखाई दिये । इसके बाद अपने ज्ञानसे यह मान्दूम कर, कि वे वन्यापुरीकी ओर चले जा रहे हैं, वह क्रोधके साथ पड़ हाथमें लिये दौड़ पड़ी । जब वह दौड़ते-दौड़ते उन लोगोंके पास पहुँच गयी, तब उन्हें घोड़ेकी पीठपर चढ़कर आते देख, बोली,— “अरे ! तुम लोग क्यों मुझे इस तरह छोड़कर भागे जा रहे हो ? अगर तुम्हें जानकी इच्छा हो हो, तो मेरे साथ चलो, नहीं तो मैं इसी छद्मसे तुम्हारे सिग उतार लूँगी । ” देवीकी यह बात सुन, यक्षने उन दोनोंसे कहा, “जब तक तुम दोनों मेरी पीठपर हो, तब तक तुम्हें कोई भय

नहीं है ।” यह धैर्य-वचन सुन, दोनों भाइयोंके विषयमें बड़ी शान्ति आयी । तब देवी अनुकूल वचन बोलने लगी,— “मेरे प्राण-प्यारों ! तुम लोग मुझे इस तरह मकेली छोड़ कर कहाँ चले जा रहे हो ?” इस वीन-वचनसे भी उनके विषय खसल नहीं हुए । तब उसने मकेले जिनरक्षितसे कहा,— “जिन-रक्षित ! तुम मेरे परम प्रिय हो । तुम्हारे ऊपर मेरा स्नेह निश्चल है । अब मैं तुम्हारे न रहने पर किसके साथ विषय-सुख भोगूँगी ? तुम्हारे वियोगमें मैं ज़रूर मर जाऊँगी । और एक बार मेरी ओर देख तो लो, जिसमें जो मरते समय भी तो थोड़ा शान्ति पा जाऊँ ।” उसके इन माया-युक्त वचनोंको सुनकर जिनरक्षितको बड़ा दुःख हुआ और उसने देवीके साथ भाँलें खार कीं । बस शीतल यक्षने उसे तत्काल अपनी पीठ परसे उतारकर नीचे फेंक दिया । देवीने उसे समुद्रके जलमें फेंक डालनेके पहले त्रिशूलसे बीँधकर कहा,— “दे पापी ! ले, त्वरे साथ धोखेवाज़ी करनेका फल भोग ।” यह कह, उसने उसे लङ्कासे धीरे डाला । इसके बाद वह माया-जाल फैलाकर जिनपालितको फँसाने आयी । यह देख, यक्षने कहा,— “यदि तूने इसकी बातों पर ज़रा भी ध्यान दिया, तो तेरी गति भी जिनरक्षितके ही समान होगी ।” यक्षकी यह बात सुन, वह और भी दृढ़ हो गया और उसकी कपट-रचनाकी उपेक्षा कर, यक्षकी सहायतासे सन्तुलाल चम्पापुरी पहुँच गया । यह भूतनी निराश होकर पीछे लौट गयी । यक्ष भी उसे उसके घर पहुँचाकर पीछे लौट गया । उस समय जिनपालितने उससे अपने अपराधोंकी क्षमा माँगी और विनय-पूर्ण वचनोंसे उसकी प्रशंसा की ।

अपने घर पहुँच कर जिनपालित अपने स्वजनोंसे मिला और बड़े शोक भरे स्वरमें अपने माँके मरनेका हाल उन्हें कह सुनाया । सेठ माकन्दी अपने पुत्र की मरण किया कर, एकही पुत्र और अन्य स्वजनोंके साथ गृहधर्मका पालन करने लगा । एक दिन धीमहाधीरस्वामीने उस पुरीके उद्यानमें पशुार्पण किया । माकन्दी और जिनपालित भावि प्रभुकी घण्टना करनेके लिये आये और मायावन्की देखना ध्वज

कर, ज्ञान लाभकर, संयम ग्रहण करनेकी इच्छासे दोनोंने ही श्रीजिनेश्वरको प्रणाम किया । इसके बाद वे घर चले आये । तदनन्तर सेठ माकन्दीने पुत्रको घरका कारबार सौंपकर जिनपालितके साथ धीवीर प्रभुके पास आकर दीक्षा ग्रहण की । जिनपालित साधुपिताके साथ कठिन तपस्या करते हुए आत्मकार्यका साधन करने लगा ।

जिनपालित—जिनरक्षित-कथा समाप्त ।

यह कथा सुनकर राजर्षि अमरदत्तने श्रीधर्मघोष सूरिसे इस कथा का उपनय पूछा । इसके उत्तरमें गुरुने कहा,— “ उस सेठके दोनों पुत्रोंके स्थानमें इस संसारके समस्त जीवोंको जानो । रत्नद्वीपकी उस देवीको अविरति (माया) जानो । इसी अविरतिके कारण मनुष्योंको दुःख होता है, वे भव-भ्रमण करते रहते हैं । यह मृतकोंका समूह उसीकी करनीका फल था । शूली पर लटकाए हुए मनुष्यके स्थानमें हितकी यात यतलानेवाले गुरुको जानना । जिसप्रकार उस शूलीपर चढ़े हुए मनुष्यने रत्नद्वीपकी देवीका स्वरूप अपने अनुभव किये हुए अनुसार यतलाया था, उसी प्रकार गुरु भी अविरतिके द्वारा उत्पन्न होनेवाले दुःखको पूर्वमें अनुभव किये अनुसार और आगे जैसा कुछ जीवको अनुभव होगा, वैसा यतला देते हैं । जिस तरह उस शूली पर टंगे हुए मनुष्यने रत्नद्वीपकी देवीका स्वरूप अपने अनुभव किये हुए अनुसार यतलाया था, उसी प्रकार गुरु भी अविरतिके द्वारा उत्पन्न होनेवाले दुःखको पूर्वमें अनुभव किये अनुसार और आगे जैसा कुछ जीवको अनुभव होगा वैसा यतला देते हैं । जिस तरह उस शूली पर टंगे हुये मनुष्यने दोनों सेठ-सुतोंको यह यतलाया था, कि शूलक यक्ष तुम्हें इस दुःखसे उबारेगा, उसी तरह गुरु भी संयमको उद्धारकर्त्ता यतलाते हैं । समुद्रके स्थानमें इसी संसारको समझना । जिसप्रकार रत्नद्वीपकी उस देवीके फेरमें पड़ा हुआ जिनरक्षित नाशको प्राप्त हुआ, उसी प्रकार अविरतिके दशमें पड़कर मनुष्य नाशको प्राप्त हो जाता है, ऐसा समझना । जैसे देवीकी यातकी परवा न कर, यक्षके आद्या-

धीन रहता हुआ जिनपालित क्रमशः अपनी नगरीमें आ पहुँचा, उसी प्रकार जीव अतिरिक्तता त्याग कर, यन्त्रि चरित्रमें निश्चल हो रहता है और समस्त कर्मोंका श्रवण कर चोढ़ेही कालमें मोक्ष सुखका अधिकारी होता है । इसलिये हे राजर्षि ! चरित्र भङ्गीकार करने बाद लोकमें मनको प्रवृत्त नहीं होने देना चाहिये । ”

गुरुके ऐसे बचन सुन, राजर्षि बड़े आदरसे अनिवारसे रहित संयमका पालन करने लगे । गुरुने रत्नमञ्जरीको साध्वी प्रवर्तिनीको सौंपा वह वहाँ रहकर निरन्तर तप और संयमका पालन करने लगी । क्रमशः वे दोनों निर्मल तपस्या कर, मनोहर चरित्रका पालन कर, मोक्षलोकको प्राप्त हुए ।

अमरद्वन्द्व — मित्राक्षर-कथा समाप्त ।

इस प्रकार स्वर्णप्रसन्न मुनिके मुँहसे धर्मदेशना अथवा स्निग्ध-सागर राजाको बड़ा बोधप्राप्त हुआ । इसके बाद उन्होंने अपने पुत्र मन-मोहनीयको राज्यारोहण कर, कुमार अराजितको युवराजकी पदवी प्रदान की और आप वहाँ मुनीश्वरसे वीक्षा ग्रहण कर ली । उन्होंने गुरुतासे वीक्षाका पालन तो किया परन्तु अन्तमें मन-ही-मन संयममें कुछ विराधना कर दी इसलिये वे मरकर अधोलोकमें अवतरण-आदिमें अमरद्वन्द्व नामक असुरोंके अधिपति हुए ।

कुमार अराजित और राजा मनमोहनीय राज्य करने लगे । इसी समय किन्नी विद्याधरने उनकी मैत्री हो गयी । इस विद्याधरने उन्हें आकाशगामिनी आदि विद्याएँ निःकलायीं और उनकी साधनाकी विधि भी बतला दी । राजाके कर्षी और विद्यामी नामकी दो दासियाँ थीं । वे भीतर और नाट्यकलामें बड़ी निपुण थीं । इसलिये उनके गीत नाट्यसे प्रसन्न रहनेवाले अराजित और मनमोहनीय निरन्तर नाच गानके ही रङ्गमें डूबे रहते थे । एक दिन वे दोनों आई जिन्म समय गीत-नाट्यके रसमें डूबे हुए थे, इसी समय स्नेहकावरी नारद वहाँ आ पहुँचे । इस समय नाचने-गानेकी वृत्तिमें डूबे हुए इन दोनों आशयोंके कहे होकर

या और तबसे नारदके प्रति सम्मान नहीं प्रकट किया । इससे मोहित होकर नारदने विचार किया,— 'ये ! इन दोनों माइयोंका मन दासियोंके नाचने-गानेमें इतना मोहित हो गया है, कि मेरा यहाँ भाना भी इन्हें नहीं मालूम हुआ ! अच्छा, रहो, मैं किसी पलवान् राजासे इन नृत्य-गीत-कलामें होशियार दासियोंका दर्शन करवाये देता हूँ ।' ऐसा विचार कर, तीनों लोकमें स्वेच्छापूर्वक पिचरण करने वाले और लड़ाई-झगड़ा करनेमें बड़ी प्रीति रखनेवाले नारद ऋषि विद्याधरोंके राजा और तीन खण्डोंके स्वामी दमितारि नामक प्रतिवासुदेवके पास गये । मुनिको देखते ही राजा तत्काल उठ खड़े हुए और उनके सामने जा, सत्कार-पूर्वक उन्हें आसनपर बैठाकर पूछा,— 'हे मुनि ! पृथ्वी पर आपने कोई आश्चर्य-जनक बात देखी हो, तो कहिये ।' नारदने कहा,— 'हे राजेन्द्र ! सुनो । मैं सुमगानगरीमें राजा अनन्तवीर्यके पास गया हुआ था । उनके यहाँ खर्वरी और चिलाती नामकी दो दासियोंका नाट्य मैंने देखा, जिससे मुझे बड़ा आश्चर्य हुआ । हे राजन ! यदि तुम्हारे यहाँ वैसी गीत-नाट्यमें कुशल स्त्रियाँ नहीं रही, तो तुम्हारा विद्याल किस कामका ? और तुम्हारा यह इतना बड़ा राज्य ही किस कामका है ! तुम्हारी यह सारी समृद्धि, व्यर्थ ही है ।' यह कह, मुनि अन्यत्र चले गये ।

इसके बाद प्रतिवासुदेव राजा दमितारिने अभिमानके मारे तत्का लही राजा अनन्तवीर्यकी राजधानीमें एक दूत भेज कर कहलवाया, कि— 'सब प्रकारके रत्न राजाधिराजोंके ही आश्रयमें रहते हैं । इसलिये तुम्हारे यहाँ गीत-नाट्यमें जो दो कुशल दासियाँ हैं, उन्हें शीघ्र ही मेरे पास भेज दो । इस विषयमें तनिक भी विलम्ब न करो ।' दूतकी यह बात सुन, अपराजित और अनन्तवीर्यने कहा,— 'हे दूत ! तुमने जो कुछ कहा, सो ठीक है ; परन्तु हम लोग इन दासियोंके भेजनेके धारेमें पीछे विचार कर जैसा उचित समझेंगे, करेंगे । अभी तो तुम अपने स्वामीके पास लौट जाओ ।' यह कह, उन्होंने उस दूतको

रवानः कर दिया और दोनों भाइयोंने परस्पर विचार किया,—“यह राजा दमितारि विद्याके बलसे कहीं हमलोगोंको हरा न देवे, इसलिये हमलोगोंको चाहिये, कि उसके पहलेही विद्याका साधन कर उसका गर्व धूर-धूर कर डालें।” वे दोनों भाई इस प्रकार विचार कर ही रहे थे, कि उनके पूर्व भयकी विद्यार्थ उन्हें भापसे भाप पाव हो भायी और उनके पास आकर बोलें,—“तुम लोग तो हमें सिद्ध कर ही चुके हो, भय हमारे लिये नये सिरसे साधना करनेकी कोई ज़रूरत नहीं है।” यह कह, वे सब उन दोनोंके शरीरमें प्रविष्ट हो गयीं। उस समय वे दोनों भी विद्याओंके प्रभावसे बड़े बलवान् विद्याधर हो गये। इसके बाद उन्होंने चन्दन, पुष्प इत्यादिसे उन विद्याओंका पूजन किया।

इसी समय राजा दमितारिके दूतने उनके पास छोट आकर कहा,—“भरे, क्या तुम्हें मौत सवार है, जो तुमने अभी तक प्रभुके पास उन दासियोंको नहीं भेजा।”

यह सुन, दोनों भाइयोंने कहा,—“भला स्वामीका काम कैसे शांती रह जाता। हमलोग उन्हें भेज चुके।”

यह कह, उन्होंने दूतको शान्त कर दिया। इसके बाद उन दोनों भाइयोंने राजा दमितारिकी पुत्री स्वर्णश्रीके साथ विवाह करनेके लोभसे स्वयं दासियोंके रूप धारण कर, तत्काल राजा दमितारिके पास आ पहुँचे। तदनन्तर अपनी कला-कुशलता दिखलाकर उन्होंने राजाको प्रसन्न कर दिया। राजाने उनसे कहा,—“दासियों! तुम दोनों में से कनकश्री नामक कन्याके पास रहो और उसका दिल बहलाया करो।” यह सुन, उन दोनोंने बहुत अच्छा, कह कर अपने मनमें विचार किया,—“जैसे कोई बिल्लीको दूधकी रछपाली सौंप दे, वैसेही इस राजाने अपनी कन्याको हमारे हवाले कर दिया है।” यही सोचने-विचारते हुए वे दोनों दासीका रूप धारण किये अद्वितीय रूपवती राजकुमारी कनकश्रीके पास आये, उसका रूप देखकर उन्होंने

सोचा,—“बड़ा ! विधाताने सारी सुन्दरता और समस्त उपमान-
द्रव्योंको एकत्र करके ही इस कन्याका रूप बनाया है, ऐसा मादूम
पड़ता है । इसका सा रूप तो शायद दुनियाँमें दूसरा नहीं है ।” ऐसा
विचार कर उन्होंने नयुरता तथा हास्य-रससे भरे हुए मनोहर वचन
और देशी भाषाओंसे मिले-जुले वाक्योंका प्रयोग कर उस कन्याको
पुकारा । उस समय राजकन्या कनकधनीने उनके वचनोंकी चतुराई
देख, उनका सत्यन्त लादर किया और उन्हें आसन आदि देकर उनका
मली भाँति सत्कार किया । इसके बाद उसने पूछा,—“अनन्त-
वीर्यका रूप कैसा है ?” यह सुन, दासीका घेरा बनाये हुए अरराजित-
ने अनन्तवीर्यके गुणोंका इस प्रकार वर्णन करना आरम्भ किया,—
“हे राजकुमारी ! अनन्तवीर्यके चानुर्य, रूप, सौन्दर्य, गान्धार्य, औदार्य
और धैर्य आदि गुणोंका वर्णन एक जिह्वासे हो नहीं सकता । तीनों
लोकोंने राजा अनन्तवीर्यका सा गुणवान और रूपवान पुरख दूसरा नहीं
है । पिता भाग्य अच्छा हुए उनका नाम तो सुनाई ही नहीं देता,
किर उनके रूप-लावण्यका दर्शन करना तो कहाँसे हो सकता है !”
उनके गुणोंका ऐसा वर्णन सुनकर राजकुमारी कनकधनीके रोंगटे खड़े
हो गये । उनके गुण-वर्णनसे मुग्ध बनी हुई राजकुमारीको देख कर
दासीका रूप धारण किये हुए अरराजितने कहा,—“हे राजकुमारी !
यदि तुम्हें उनका दर्शन करनेकी मन्निलाया हो, तो मैं मनी दिखला दे
सकती हूँ ।”

यह सुन, उसने कहा,— “यदि ऐसा हो, तो फिर क्या बात है !
यदि एक बार मैं उनका रूप देख पाऊँ, तो फिर मेरा जीवन सफल हो
जाये ।” उसकी यह बात सुन, उन दोनोंने अपना असली रूप प्रकट कर
राजकुमारीको दिखलाया, जितने देख, दर्पित हो राजकुमारीने कहा,—
“अब मैं तुम्हारी आज्ञाके अधीन हूँ ।” यह सुन, अनन्तवीर्यने कहा,—
“यदि ऐसा बात है, तो चलो, हम मनी मगराने चले ।” राजकुमारी-
ने कहा,—“तुम्हारे बहुत ही ठीक कहा : परन्तु मेरे पिता बड़े दयादार

हे, ये तुम्हें भयभय ही दरा देंगे ।” इसके उत्तरमें उन्होंने कहा,—
 “इसके लिये तुम कुछ चिन्ता न करो । ये हमारे सामने युद्धमें क्षणभर
 भी न ठहर सकेंगे ।” उनके ऐसे वचन सुनकर उनके स्नेह-पाशमें बंधी
 हुई तथा उनके रूप-सौन्दर्यसे मोहित राजकुमारी कनकधारी उनके साथ
 जानेको तैयार हो गयी ।

इसके बाद राजा अनन्तवीर्यने अपनी विद्याके प्रभावसे विमान रच
 कर, उसी पर आरुढ़ हो, आकाशमार्गसे जाते-जाते समामें बैठे हुए
 राजा क्षमिनादि और उनके साथ समासर्गोंको सुना-सुना कर कहा,—
 “हे मन्त्रियो ! सेनापतियो ! और सामन्तो ! सुनो—देखो, मैं तुम्हारे
 स्वामीकी पुत्री कनकधारीको हरणकर अपने साथ लिये जा रहा हूँ ।
 कहीं तुम पीछे यह न कह देना, कि हमें पहलेसे खबर नहीं थी ।”
 ऐसा कहते हुए राजा अनन्तवीर्य अपने भाईके साथ उस कन्यात्मको
 लिये हुए आकाशकी राह चले गये । राजा क्षमिनारिने उनकी बात सुन,
 आवल्ल कोपित हो, आक्रोशके साथ कहा,—“हे वीरो ! इस दुष्टको
 जल्दी गिरफ्तार कर ओ । अभी पकड़ लो ।” इसप्रकार अपने स्वामीकी
 बात सुन, विद्याधरोंने बड़े जोरसे लड़कारा,—“अरे गुरात्मा ! ठहर
 जा । तू हमारे स्वामीकी पुत्रीको कहीं लिये जा रहा है ?” यह कहते
 हुए वे शस्त्र धारण किये उनके पीछे दौड़े । उनको इसप्रकार अपने
 पीछे-पीछे भाते देख, राजा अनन्तवीर्यने उन्हें उन्नी तरफ क्षण भरमें
 निर-विनर कर डाला, जैसे हवा नृणोंके समूहको धान-की-धानमें
 डबा है जाती है । अपने सैनिकोंको हारकर छोटा हुआ जानकर राजा
 क्षमिनारिभ्यर्ष राजा अनन्तवीर्यकी ओर चले । मार्गमें आते-आते जब
 राजा अनन्तवीर्यकी दृष्टि राजा क्षमिनारि पर पड़ी, तब ये छोड़ी देरके
 लिये विमानको लड़ा करके उनकी सेनाको देखने लगे । उन्होंने देखा,
 कि उस सैन्यके समूहमें कन्यात्मकालके समुद्रकी तरह फैले हुए हाथी,
 घोड़े और वैद्य गिरादियोंकी कतारें लगी हैं और उनका विशद दण्ड
 आकाशको गुंजा रहा है । वह सैन्य देखकर उन्होंने अनन्तवीर्य कुछ

करनेको तैयार हुए, त्योंही उस सैन्य-सागर पर निगाह पड़ते ही कनक-
श्री घेतरह व्याकुल हो गयी। उसने अनन्तवीर्यको आश्वासन देकर
तत्काल अपने सैनिकोंको इकट्ठा किया। इसके बाद राजा दमितारि
और अनन्तवीर्यके सैनिक परस्पर युद्ध करने लगे। दोनों ओरके सिपाही
खूब जी होमकर लड़े। अन्तमें राजा दमितारिके सिपाहियोनि अनन्त-
वीर्यके सैनिकोंको पराजित कर दिया। यह देखकर अनन्तवीर्य कुछ
चिन्तामें पड़ गये। इतनेमें उनके सौभाग्यसे तत्काल देवाधिष्ठित घन-
माला, गदा, खड्ग, कौस्तुभमणि, पांचजन्य शंख और शार्ङ्ग-धनुष—ये
छः रत्न उत्पन्न हुए। यह देख, राजा अनन्तवीर्यने उत्साहित हो,
पांचजन्य शंखको मुँहके पास ले जाकर पूरी ताकत लगाकर बजाया,
जिसकी प्रचण्ड ध्वनि ध्वज कर तत्काल ही शत्रुसेना मूर्च्छित हो
गयी और उनकी अपनी सेनाका बल बढ़ गया। यह देख, राजा दमि-
तारि स्वयं युद्ध करनेको तैयार हुए। राजा अनन्तवीर्य भी अपरा-
जितके साथ बहुर पहन कर, रथारूढ़ हो, शस्त्र हाथमें ले, उनसे
लड़नेको अप्रसर हुए। दोनों ओरसे घमासान लड़ाई हुई—यहुतेरे
वीर मारे गये। मरे हुए हाथी-घोड़ोंकी तो गिनती ही नहीं रही।
लहूकी नदीसी यह बली। राजा दमितारिके छोड़े हुए सभी अस्त्रोंको
अनन्तवीर्य काट डालते थे। इसलिये प्रतिवासुदेवने महातीक्ष्ण और
देवीप्यमान चक्र अनन्तवीर्य पर चलाया। वह चक्र वासुदेवके हृदयमें
तुम्यङ्गीकी तरह हलका चोट करके रह गया और उन्हींके हाथमें आकर
स्थित हो गया। तब विष्णुने वह चक्र हाथमें ले, प्रतिवासुदेवसे कहा,—
‘हे राजा दमितारि ! तुम युद्धसे हाथ धींच, मेरी सेवा करना स्वीकार
करो और सुखसे जाकर राज्य करो, व्यर्थ ही अपनी जान न गँवाओ।
तुम कनकधीके पिता हो, इसीलिये मैं तुम्हें छोड़े देता हूँ।’ यह सुन
राजा दमितारिने कहा,—‘इन विचारोंको दिलसे दूर कर तुम छुशोसे
चक्र चलाओ, नहीं तो मैं इसी खड्गसे चक्र और तुम दोनोंका सफ़ाया
कर डालूँगा।’ यह कह, वे खड्ग उठाये हुए उन्हें मारने दीड़े। इसी

समय जड़ और ढाले हाथमें धारण किये हुए अनन्तधीर्यने अपने सामने चले आते हुए दमितारिके ऊपर चक्र चलाकर उन्हें मार गिराया । उसी समय देव-यक्षादिकोंने अनन्तधीर्यके ऊपर फूलोंकी वर्षा करते हुए सबको सुना-सुनाकर ऊँचे स्वरसे कहा,—“यह अनन्तधीर्य अर्धविजयके स्वामी घासुदेव और इनके भाई अपराजित बलदेव हुए हैं । इसलिये इनकी चिरकाल जय हो ।” इसके बाद सब विद्याधर-वीरोंने घासुदेवको प्रणाम कर, उनकी अधीनता स्वीकार ली और घासुदेवने भी उनका भली भाँति सत्कार किया ।

तदनन्तर राजा अनन्तधीर्य और अपराजित सब विद्याधरोंके साथ मनोहर विमानपर चढ़कर अपने नगरकी ओर चले । मार्गमें जाते-जाते जब वे कनकाचल पर्वतके समीप (मार्गमें मेघ-वर्षत किस तरह आया ?) आये, तब विद्याधरोंने उनसे कहा,—“हे स्वामी इस महागिरिके ऊपर जितेन्द्रके छैत्य है । इसलिये यहाँ धलकर भगवान्‌को प्रणाम कर आगे बढ़ना चाहिये । कारण, तीर्थका उल्लङ्घन नहीं करना चाहिये । यह सुन, तत्काल ही अपराजित और अनन्तधीर्य विमानसे उतरकर हृष और भक्तिके साथ तीर्थकी घन्दना करनेके बाद चारों ओर इष्टि दौड़ाने लगे । इसी समय उन्होंने छैत्यके मध्यमें कीर्तिधर नामक महामुनिको देखा । उस समय विद्याधरोंने कहा,—“हे स्वामी ! ये महामुनि साल भरका उपवास लेकर कर्मोंका क्षय कर केवल-ज्ञान प्राप्त कर चुके हैं, इसलिये आप इनके चरणोंकी घन्दना कीजिये ।” यह सुनतेही उन्होंने परिवार सहित बड़े आनन्दके साथ उन केयलीकी घन्दना की और शुद्ध पृथ्वीपर बैठकर केयलीकी मनोहर वाणी श्रवण करने लगे । केयली ने कहा,—

मिथ्यात्वमविरतिश्च, कषायो दुःखदायिनः ।

प्रमादो दुष्टपेणाश्च, पञ्चते बन्धकारकाश्च ॥ १ ॥

अर्थात्—“मिथ्यात्व, अविरति, कषाय, प्रमाद और दुष्ट योग ये पाँचों बन्धनके कारण और परिणाममें दुःख देनेवाले हैं ।”

“हे भग्य प्राणियो ! ये पाँचों सांसारिक जीवोंके कर्मबन्धके कारण

हैं। पहला कारण मिथ्यात्व है। मिथ्यात्वका अर्थ सत्य-देव, सत्य-गुरु और सत्य-धर्मके ऊपर धृष्टा न होना है। दूसरा कारण अवि-रक्तिका तनिक भी त्याग नहीं करना है। तीसरा कारण कषाय अर्थात् क्रोध, मान, माया और लोभ करना है। चौथा कारण प्रमाद, जिसके चार भेद हैं। इनमें पहला प्रमाद, काष्ठ तथा वज्रसे उत्पन्न दोनों प्रकार के मर्घोंका सेवन करना है। दूसरा प्रमाद है,—शब्द, रूप, रस, गन्ध और स्पर्श—ये पांच इन्द्रियोंके विषय। तीसरा प्रमाद है,—निद्रा, निद्रा-निद्रा, प्रचला, प्रचलाप्रचला और स्त्यानर्द्धि—ये पांच प्रकारकी निद्राएँ। चौथा प्रमाद है,—राज-कथा, देश-कथा, स्त्री-कथा और भक्त (भोजन) कथा—ये चार प्रकारकी विकथाएँ। ये चारों प्रकारके प्रमाद चौथे बन्धके कारण होते हैं। दुष्ट योगका अर्थ है—मन, ध्वन और कायाके अशुभ व्यापार। ये पाँचवें बन्धके कारण होते हैं। इन सब पाप-बन्धोंके कारणोंका त्यागकर, मोक्षके सुख देनेवाले धर्ममें मति करनी चाहिये।”

इस प्रकारकी देशना ध्वनकर, राजा दमितारिकी पुत्री कनकध्रीने विनय-पूर्वक कीर्त्तिधर मुनिसे पूछा,—“हे मुने ! मेरा अपने माई-बन्धोंसे जो वियोग हुआ और मेरे पिताकी मृत्यु हो गयी। इसका क्या कारण है ? कृपाकर बतलाइये।” यह सुन, मुनिने कहा,—“हे भद्रे ! तुम अपने बन्धु-वियोग और पिताकी मृत्यु आदिके कारण सुनो,—

“घातकीखण्ड नामक द्वीपमें, जो पूर्व भरतक्षेत्रमें, शङ्खपुर नामका नगर है, वह बड़ी समृद्धिवाला है। उस नगरमें धौदत्ता नामकी एक निर्धन स्त्री रहती थी, जिसके कोई सन्तान नहीं थी। वह दूसरोंके घर काम-धन्दा करके अपना पेट पालती थी। एक बार उसने दक्षितासे पीड़ित होनेपर भी मुनिसे धर्म ध्वनकर धर्मचक्रवाल नामक तप किया। उस तपमें पहले और पीछे “अष्टम” करना होता है और मध्य-में संतीस उपवास करने होते हैं। इसके बाद तप सङ्पूर्ण होने पर शक्तिके अनुसार देव और गुरुकी भक्ति करनी होती है। उस धेचारीने ठीक विधिके अनुसार तप कर, पारणाके दिन सब किस्मोंको मनोहर

भोजन भादि दिया । जिन-जिन गृहस्थोंके यहाँ यह काम किया करती थी, उन लोगोंने भी उसकी तपस्या देखकर, उसे ये जितना भोजन-फल सत्ता दिते थे, उससे पुगुना दे डाला । इससे उसके पास कुछ धन जुड़ गया । एक दिन उसके घरकी एक दीवार गिर पड़ी, जिसमेंसे बहुत धन निकला । उस धनको लेकर उसने उद्यापन (उजमना) प्रारम्भ किया तथा जिनचेत्योंकी विशेष पूजा की । अन्तमें उसने साधर्मिकयातसञ्चय किया । उसी दिन उसके घर पर महीने भरसे उपवास किये हुए सुमत्त नामक महामुनि पधारे । श्रीशान्तिनाथ तत्काल उठे पड़ी भक्तिके साथ शुद्ध भोजन कराया और पीछे भक्तिपूर्वक मुनिकी चम्दना की । इस प्रकार धर्मका प्रत्यक्ष फल देखकर उसने मन-ही-मन हर्षित होने हुए मुनिसे धर्मका रहस्य पूछा । मुनिने कहा,—“हे भद्रे ! इस समय यहाँ पर धर्मका विचार करनेका नहीं है । यदि तुम्हें धर्मका रहस्य जानना हो, तो भवसरके समय उपाधयमें जाकर विस्तारपूर्वक धर्मदेखना ध्वज करे ।” यह कह, अपने स्थानपर जाकर, मुनिने विधिपूर्वक पारणा किया । इसके बाद जिस समय मुनि स्नाध्याय-ध्यान कर बैठे हुए थे, उसी समय मोक्ष देखकर नगरवासी लोगोंके साथ-ही-साथ श्रीशान्तिनाथ भी उपाधयमें आ पहुँची और मुनिकी प्रणाम कर, उक्ति स्थानमें बैठ रही । मुनिने उसे धर्मलाभ करी आशीर्वाद दिया । तदनन्तर श्रीशान्तिनाथ और नगर-निवासियोंके प्रतिबोधके लिये उन्होंने धर्मदेखना आरम्भ की । उसमें उन्होंने कहा,—

“अधमयो वगोऽनघे-इति निश्चयामिना ।

आधर्माया अध्विमज्जा, वगोऽनघे किनेकिना ॥ १ ॥”

अर्थात्—“यही अघ है और सब अनघ है—इन प्रकारके निश्चयसे शोभित निवेदी पुनः धर्ममें ही अपनी अध्विमज्जाको नाशित कर गमने है, अर्थात् यही मोक्ष गमने है, कि अध्विमज्जा-वर्धन धर्मका पवार करने योग्य है ।”

अध्वेकी पुरस्कोका करने मनमें यह विचार करना चाहिये, कि पर धर्म-वृत्ति करके (यदि ठीक-ठीक देखिये तो) धर्मका आराधन करना ही आधमकर्म है । इसके निवा और सब सांसारिक व्यापार धर्मके

मूल साक्षात् धर्मके रूप ही है । येना निश्चय करके उत्तम जीवोंको अपनी भस्मि-मज्जाको भी धर्मसे ही प्राप्त करना चाहिये ।”

यह सुन धोइराने पूछा,—‘हे भगवन् ! धर्म तो भस्मी है, उसमें भस्मि-मज्जा कैसे प्राप्त की जा सकती है ?’ यह सुन, सुमन मुनिने धीरुता तथा अन्य पुरुषोंको धार्मिक धर्मको सिद्ध करनेवाली यह कथा कह सुनायी,—

नरसिंह राजर्षि की कथा

“उज्जयिनी-नगरीमें जितराज नामके राजा थे । उनकी स्त्रीका नाम धारिणी था । उनके पुत्रका नाम नरसिंह था । जब यह राज-कुमार क्रमशः सब कषायोंका अभ्यास कर युवावस्थाको प्राप्त हुआ, तब राजाने उसका विवाह पत्नीस मनोहर रूपवती कन्याओंके साथ कर दिया । एक समयकी बात है, कि जाड़ेके दिनोंमें एक जंगली हाथी नगरमें आकर उपद्रव करने लगा । वह हाथी मर्के मारे मतवाला हो रहा था, उसका रङ्ग शीशकी तरह सफ़ेद था, उसका शरीर पर्वतकी तरह बड़े भारी झोल-झोलवाला था । वह यमराजकी तरह लोगोंको दुःख दे रहा था । उस हाथीको देखकर डरे हुए लोगोंने राजाके पास जाकर फ़र्याद की । यह सुनकर राजाने उसका उपद्रव दूर करनेके लिये स्वयं अपनी सेना भेजी, पर जब यह बलवती सेना भी उस जंगली हाथीका उपद्रव न रोक सकी, तब राजा स्वयं तैयार हुए और वीरोंकी सेना साथ ले, उस हाथीकी तरफ जाने लगे । इसी समय राजकुमार नरसिंहने उन्हें रोका और आपही सैन्य समेत उस हाथीको मर्दन करनेके लिये चल पड़े । पास पहुंचकर राजकुमारने उस नी हाथ लम्बे, सात हाथ ऊंचे, तीन हाथ चौड़े, लम्बे दांत और लम्बी सूँड़वाले, छोटी पूँछवाले, मधुकी भाँति पीले-पीले लोचनोंवाले और सारे शरीरमें एक सौ चालीस लक्षणोंसे युक्त हाथीको देखा । तदनन्तर

गजकी चिघामें निपुण कुमारने कमी सामने जाकर, कमी पीछे हटकर और कमी उछलकर उस हाथीको हिरान कर मारा और मृतमें उसे घशमें कर लिया । तदनन्तर उस घेराघत जैसे हाथी पर सवार हो नरसिंहकुमार इन्द्रकी शोभा धारण किये हुए उसे फीलखानेमें ले आये और उसे आलान-स्तम्भमें बाँध दिया । उसके बाद हाथीसे नीचे उतर कर उन्होंने उस हाथीकी आरती उतारी और घिनयसे तब बने हुए पिताके पास आये । पिताने हर्षपूर्वक उनकी आलिंगन कर अपने मनमें विचार किया,—“मेरा यह पुत्र राज्यका भार वहन करनेमें पूर्णरूपसे समर्थ हो गया है, इसलिये इसीके ऊपर राज्यका भार सौंप कर मुझे संयमका ही राज्य स्वीकार करना चाहिये ।” ऐसा विचार कर राजाने सब मन्त्रियों, सामन्तों और पुरजनोंके सामने शुभमुहूर्तमें नरसिंहकुमारको अपनी गद्दी पर बैठा दिया और आपने जयन्धर शुद्धसे दीक्षा ले ली ।

राज्य पाकर राजा नरसिंह बड़े श्यायके साथ प्रजाका पालन करने लगे । एक समयकी बात है, कि एक बड़ा भारी मायाघी चोर, जो किसीको दिखलाई नहीं देता था और किसीसे पकड़ा नहीं जाता था, उस नगरमें आया और उसने कितनेही घरोंमें चूँ चार चोरी की । नगरके महाजनोंने यह बात राजाके कान तक पहुँचायी । राजाने उस चोरको पकड़ कर दण्ड देनेके लिये कोतवालको बुझम दिया ; पर वह चोर कोतवालसे नहीं पकड़ा गया । उल्टा और भी नगरवालोंकी हाँग करने लगा । इस पर महाजनोंने फिर राजाके पास कुर्याई की,—“हे देव ! इस दुष्ट चोरने आपके समस्त नगरमें हलचल सी मचा रखी है । यह रातको जबरदस्ती जवान और खूबघूरत औरतोंको पकड़ ले जाता है । इसलिये आप कृपाकर हमें ऐसी कोई जगह बन-लाइये जहाँ हम इस उपद्रवसे बचे रहें ।” उनकी ऐसी बातें सुन, कोषसे घर-घर काँवने हुए राजाने कोतवालको बुलाकर कहा,—“रे दुष्ट ! तू बैठा-बैठा मनमानी ननलवाह लाया करता है और नगरकी रक्षा

नहीं करता ? इसका क्या कारण है ?" इसपर महाजनोंने कहा,—“हे नाथ ! इसने इस बेचारेका क्या दोष है ? वह चोर तो एक पूरी पल्ल-
तनके गिरफ्तार करने पर भी गिरफ्तार होनेवाला नहीं है ।” यह
सुन, राजाने महाजनोसे कहा,—“बच्छा, देखो, मैं इसका उचित उपाय
करता हूँ ।” यह कह, राजाने महाजनोको बिदा कर दिया ।

इसके बाद राजा मिशरीका घर बनाये, उस चोरकी तलाशमें
महलसे बाहर निकले और अनेक शंकास्थानों और गुप्तस्थानोंमें घूमने
लगे । पहले दिन वे नगरके बाहर बहुत घूना किये ; पर किसी
जगह वह चोर न दिखाई दिया । दूसरे दिन सन्ध्या समय राजा
नगरके बाहर एक वृक्षके नीचे बैठे हुए थे, इसी समय उन्होंने एक
गेदजा वस्त्र पहने तथा रास्तेकी धूल सारे कड़ुनें लपेटे हुए त्रिदण्डीकी
भांति देखा । उसके पास आनेपर राजाने उसकी प्रज्ञान किया ।
त्रिदण्डीने पूछा,—“भरे ! तू कहाँसे आ रहा है और कहाँ जायेगा ? तू
मठलब क्या है ?” यह सुन, मिशरीका घर बनाये हुए राजाने कहा,—
“मगध ! मैं द्रव्यके लिये बहुतसे देश घूम आया ; पर मुझे कहीं धन
नहीं मिला । इससे मैं बहुत ही विन्ताप्रस्त हो रहा हूँ ।” यह सुन,
उस त्रिदण्डीने कहा,—“क्योंही भर्ष ! यह तो कही, तुमने धनकी खोजमें
दिन-दिन देशोंकी सैर की ?” राजाने कहा,—“हाँ तो मैं बहुतसे
देशोंमें घूना हूँ, तो भी जो थोड़े-बहुत नाम सुने पाद है, वे तुम्हें बन-
लाये देता हूँ । ॥ त्रिदण्डी ! मैंने वह साह-देश भी देखा है, जहाँकी
छियाँ एकही वस्त्र पहनती हैं । उस देशके प्रायः सभी लोग मधुर-
भाषी हैं और किसीको ‘बात’ करते हैं । मैं सौराष्ट्र-देश भी देखा
हूँ । वहाँ लम्बे केशवाली, मधुर स्वरवाली तथा कमल पहननेवाली
महिलोंकी छियाँ दिखाई देती हैं । इसके सिवा मैं कच्छ-देश भी
देखा है । वहाँ शालि-धानही विशेष कर खाया जाता है । मगर-
बेलके पत्त और केलोंसे सारा देश भरता हुआ है । इसी तरह मैंने गुजरात,
मैसूर और मालव इत्यादि बहुतसे देशोंमें घूमन किया, वहाँ

भाचार देखे ; पर कहीं भी मुझे धन नहीं मिला । यह सुनकर उम त्रिदण्डीने अपने मनमें विचार किया,—“यह आदमी सचमुच कोई पर-देशी और धनका इच्छुक मालूम पड़ता है ।” ऐसा विचार कर उस त्रिदण्डीने कहा,—“हे पथिक ! यदि तू मेरी बात मानकर चले तो थोड़े ही दिनोंमें मनपाञ्छिन फल पा जाये ।” इसपर राजाने कहा,—“हे त्रिदण्डी ! जो कोई अपना पाञ्छिन फल देता है, उसकी भाझामें तो मनुष्य रहता ही है ।” यह सुनकर त्रिदण्डीने कहा,—“सुसाज़िर ! देख, रातका समय हो गया है, जिसमें परखी-गमन करनेवालों और घोरोंको अपना मनलज पूरा करनेका ज़ूब मौक़ा मिलता है । इन लोगोंको यह समय बहुत पसन्द है । मनपथ तू यहीं हाथमें जड़ग लिये खड़ा रह । मैं नगरमें जाकर किसी धनी मनुष्यके घरसे बहुत सा धन लिये आता हूँ ।”

उसकी यह बात सुन, राजाने अपने मनमें सोचा,—“हो न हो, यही यह खोर है । तो फिर क्यों नहीं मैं इसी जड़गसे इसका निर उगार लूँ । मथथा देखूँ तो सही, यह क्या करता है ?” ऐसा विचार कर राजाने छद्म बाहर निकाला, जिसे देखकर योगीने अपने मनमें विचार किया,—“इस जड़गसे तो यह राजा मालूम पड़ता है, तब तो जैसे ही घैसे, मुझे इसे भार ही गिराना चाहिये ।” ऐसा विचार कर, यह कुछ दूर आगे बढ़कर फिर पीछे लौट आया । तब राजाने कहा,—“मग क्यों देर कर रहे हो ?” उसने जवाब दिया,—“अभी नगरके लोग आगते होंगे, इसलिये थोड़ी देर यही विधाम करता हूँ ।” यह कह, कुछ देर विचार कर उसने कहा,—“हे पथिक ! यहाँ पत्तोंकी सेत विछाओ ।” यह सुन, राजाने उसके लिये तत्काल ही पत्तोंकी सेत बिछायी और दूसरी अपने जिपे तैयार की । उन्हीं सेतोंपर दोनों मो रहें । उम समय त्रिदण्डीने सोचा,—“अबनक मैं आगता रहूँगा, तबनक यह कामी न सोयेगा ।” इसलिये यह खोर भीड़का बहाना कर सी रहा । तब राजाने धीरे-धीरे उठकर अपनी जगह पर काठका

एक कुन्दा रखकर उसपर कपड़ा फैला दिया और आप एक झाड़में जाकर छिप रहे तथा हाथमें खड्ग लिये रहे । थोड़ी देर बाद उस चोरने उठकर राजाके भ्रममें उस लकड़ीके कुन्देपर खड्गका प्रहार किया, जिससे लकड़ी दो टुकड़े हो गयी । प्रहारके शब्दसे उसे कुछ खुटका हुआ, इसलिये उसने उसके ऊपरसे कपड़ा हटाकर जो देखा, तो महज़ लकड़ीका कुन्दा दिखाई दिया । कोई आदमी नज़र नहीं आया । यह देख, उसने सोचा,—“अरे ! उस धूर्त्तने तो मुझे खूब छकाया !” वह इसी तरह बैठा हुआ हाथ मल-मल कर पछता रहा था, कि इतनेमें राजाने उससे कहा,—“रे दुष्ट ! आज तेरा अन्त-समय आ पहुँचा है । इसलिये यदि तुझमें तनिक भी पुरुषार्थ हो, तो मेरे सामने आ जा । यह सुन बहुत अच्छा, आता हूँ, कहता हुआ यह चोर राजाके पास आकर युद्ध करने लगा । दोनों खूब जमकर लड़े । दोनों एकसे बलवान् और युद्ध-कलामें कुशल थे, इसलिये बड़ी देर तक लड़ाई होती रही । अन्तमें राजाने उस त्रिदण्डोंके मर्मस्थानमें चोट पहुँचाकर उसे पृथ्वी पर गिरा दिया । उस प्रहारसे व्याकुल होकर तस्करने राजासे कहा,—“हे घोर योद्धा ! मैं ही यह चोर हूँ, जिसकी चोरियोंसे यह सारा नगर आरौ आ गया था । आज मेरी मृत्यु आ गयी । परन्तु हे घोर ! मेरी एक बात सुनो । इस देव-मन्दिरके पीछे एक बड़ा सा पाताल-मन्दिर है । उसमें बहुतसा धन पड़ा हुआ है । वहीं पर मेरी बहन धनदेवी तथा इस नगरकी वे सब स्त्रियाँ भी हैं । जिन्हें मैं चुरा लाया हूँ । हे घोरवर ! तुम मेरी तलवार लिये वहीं चले जाओ । शिलाके विचरकी राह तुम मेरी बहनको मेरी तलवार दिखाकर मेरे मरनेकी खबर सुना देना । बस, वह तुम्हें भीतर ले जायेगी । उस समय तुम वह सब धनादि ले लेना और जो कुछ जिसका हो, उसे दे देना ।” यह कह कर वह घोर मर गया ।

उसके बाद रातको ही राजा उस पाताल-मन्दिरमें जाकर उसकी बहनसे मिले । उसने बड़े मीठे शब्दोंसे राजाका स्वागत किया ।

और साध्वी बोली,—“तुम थोड़ी देर इसी फलङ्ग पर बैठो । यहाँका सब कुछ तुम्हारा ही है । मेरा पापी भाई अपने पापोंके फलसे ही इस तरह मारा गया ।” यह कह, उस खोरकी बहनने उस भृगुर्भ-मन्दिरका द्वार बन्द कर दिया । उस समय राजाने खोरकी बहनको बार-बार अपनी ओर कजलियोंसे देख, सराहुन होकर सोचा,—“इस दुहाका पिध्वास करना ठीक नहीं । बिना विचारे एकदम इसके फलङ्ग पर बैठना तो और भी अनुचित है । हो सकता है, कि इसमें भी कोई कपट हो ।” ऐसा विचार कर वे शय्याके ऊपर तकिया रखकर दीपेकी ऊँजियालीमें हट कर अँधेरेमें बड़े हो रहे । इनमें यह काल-काँटोंपर बड़ी हुई शय्या बन्सी जीधनेही दूट गयी और उसपर रखा हुआ तकिया शय्याके नीचेवाली गहरी अम्बकूममें गिर पड़ा । राजा सारी कपट रचना समझ गये । खोरकी बहनने तकियेके कुर्चेमें गिरनेकी आवाज़ सुन कर अपने मनमें यही समझा, कि शय्यापर बैठा हुआ पुरख कुर्चेमें गिर पड़ा । यही सोचकर उसने हँसने और ताली पीटने हुए कहा,—“बहुन ठीक हुआ । अपने भाईकी आज लेनेवालेकी मेने भी जदनुम मेज दिया ।” यह सुन, राजाने उसके पीछेमें आकर उसके बाल पकड़ लिये और कहा,—“अरी रीढ़ ! तू इस करनीका मजा तू भी देख और अपने भाईके पास जा ।” यह सुनते ही वह रोने लगे-मिड़-मिड़ाने लगी । राजाको हवा आ गयी, उन्होंने उसे छोड़ दिया । इसके बाद उस पानाळगृहका द्वार खोल कर राजा अपने घर आये ।

प्रान.काल राजाने जगत् भरके लोगोंको वहाँ ले आकर जो-जो चीजें त्रिमकी थीं, उन्हें दे डालीं और उस पानाळ-गृहको एकदम हटा दिया । त्रिम त्रियोंको वह बार-बार हरण करके वहाँ ले गया था, उन्हें भी लोग राजाके हुक्मसे लाने लाने पर ले गये । परन्तु उस त्रियों पर हम बोलते आदु कर रहा था, इनलिसे इनका मन लाने पर पर नहीं लगता था और वे बंधन हो रहकर वहाँ अन्तर्गत करी जाया करती थीं ।

लोगोंने जब यह बात राजासे कही, तब उन्होंने एक जादू-टोनेके जानने-वाले वैद्यको बुलाकर इसका उपाय पूछा । यह सुन, वैद्यने कहा,—“हे राजन् ! उस चोरने इन स्त्रियोंको कोई ऐसा चूर्ण खिला दिया है, जिससे ये परवश हो गयी हैं । यदि आपकी आज्ञा हो, तो मैं भी इन्हें कोई चूर्ण खिला दूँ, जिससे ये फिर अपनी असली हालतमें आ जायें ।” राजाने हुक्म दे दिया । वैद्यने उन स्त्रियोंको अपना चूर्ण खिलाकर उनपरसे जादूका असर उतार डाला ; परन्तु उनमेंसे एक स्त्री ज्यों-की त्यों रही । इसपर राजाने फिर उसी वैद्यको बुलाकर इसका कारण पूछा । वैद्यने कहा,—“हे राजन् ! उस चोरके दिये हुए चूर्णका प्रभाव किसी-किसी स्त्रीकी त्वचा तक और किसी-किसीके मांस-रुधिर तक ही पहुँचा था ; पर इस स्त्रीकी अस्त्रि-मज्जामें भी वह प्रवेश कर गया है, इसीलिये उन पर तो मेरी दवा कारगर हुई ; परन्तु इसपर उसका कुछ असर नहीं हो सकता ।” यह सुन, राजाने पूछा,—“तो क्या इसके लिये कोई और उपाय नहीं है ?” वैद्यने कहा,—“यदि उसी चोरकी हड्डी घिसकर इसे पिला दो जाये, तो यह भी अपने स्वभावको प्राप्त हो जायेगी, अन्यथा नहीं ।” यह सुन, राजाने वैसाही किया । वह स्त्री भी जादूके प्रभावसे छुटकारा पा गयी । सब लोग सुखी हो गये, राजा नरसिंह भी बड़े सुखसे राज्य करने लगे ।

इसके बाद फिर वही जयन्धर आचार्य वहाँ पधारे । इन्हींसे राजा-के पिता जितशत्रुने वीक्षा ली थी । उनके आगमनका समाचार सुनकर राजा नरसिंह उनकी वन्दना करने गये और उनसे धर्म-कथा ध्वषण कर, प्रतियोध प्राप्त कर, अपने पुत्र गुणसागरको राज्यपर बैठाया और वैराग्य-युक्त होकर चारित्र्य ग्रहण कर लिया । इसके बाद उग्र तपस्या कर, कर्मका क्षय करनेके अनन्तर राजर्षि नरसिंहने मोक्ष-पदवी प्राप्त कर ली ।

नरसिंह राजर्षि-कथा समाप्त ।

इस प्रकारकी कथा सुनाकर साधु सुमनने श्रीदत्तासे कहा,—“हे भद्रे ! जिस प्रकार उस योगी येश-धारी खोरके चूर्णके प्रभावसे उस स्त्रीकी अस्थि-मज्जा भी घासित हो गयी थी, उसी प्रकार तुम भी कन्या-वृक्ष तथा चिन्तामणिकी मांति घाञ्छित फलके देनेवाले तथा जिसका फल तुमने साक्षात् देख लिया है, उसी धर्मसे अपनी आत्माको घासित कर लो और अपने चित्तमें धर्मके ऊपर निश्चल प्रीति उत्पन्न कर लो ।” यह सुन, श्रीदत्ताने वन्हीं मुनिवरसे शुद्ध समकित सहित धायक-धर्म ले लिया । मुनि अन्यत्र विहार करने चले गये । श्रीदत्ता घर जाकर विधि-पूर्वक धर्मका पालन करने लगी ।

एक दिन कर्म-परिणामके प्रभावसे श्रीदत्ताके मनमें यह सन्देह हुआ, कि मैं इतने प्रयत्नसे जिनधर्मका पालन कर रही हूँ, पर न मालूम, इसका कोई फल होगा या नहीं ? इसी प्रकार सन्देह करती हुई एक दिन श्रीदत्ता वायु पूरी होनेपर मृत्युको प्राप्त हुई । इसके बाद वह कहाँ उत्पन्न हुई, उसका हाल सुनो,—

“इसी विजयमें पैताल्लय-पर्वतके ऊपर सुरमन्दिर नामक नगरमें कनक पूज्य नामके राजा राज्य करते थे । उनकी स्त्रीका नाम वायुवेगा था । उनके कीर्त्तिधर नामका एक पुत्र भी था । यही मैं हूँ । मेरी स्त्रीका नाम अनल-वेगा था । उसने हस्ती, कुम्भ और वृषभ—ये तीन स्वप्न देखकर दमितारि नामक पुत्र प्रसव किया । वह प्रतिपासुदेव हुआ । जब दमितारि युवावस्थाको प्राप्त हुआ, तब मैंने उसका विवाह कित-नीही कन्याओंके साथ कर दिया । इसके बाद मैंने उसे राज्यपर बैठा-कर चारित्र्य ग्रहण किया । दमितारिकी एक स्त्रीका नाम मद्रिा था । उसीके गर्भसे श्रीदत्ताके जीवका अवतार हुआ । यही तुम कनकश्री कहला रही हो । पूर्ण भयमें तुमने एक बार धर्मके विषयमें सन्देह किया था । इसीलिये तुम्हें बन्धु-वियोगादिक दुःख प्राप्त हुए ।”

इस प्रकार कनकश्रीने जब अपने पितामह मुनिके मुँहसे अपने पूर्ण भयका वृत्तान्त सुना, तब उसे संसारसे घेराव्य हो गया और उसने दाघ

जोड़कर अरराजित तथा अगस्त्योर्यसे कहा,—“हे श्रेष्ठ पुरुषो ! यदि तुम साक्षात् हो, तो मैं चारित्र्य ग्रहण कर लूँ ।” उन्होंने कहा,—“एक घार सुमगापुरीमें चलो । वहाँ जानेपर स्वयंप्रभ नामक जिनेश्वरसे दीक्षा ग्रहण कर लेना ।” यह सुनकर कनकधारी सन्तुष्ट हो गयी । बलदेव और घासुदेव भी उन कीर्तिघर मुनिको प्रणाम कर, विमानपर बैठे हुए उस कन्याके सहित अपनी पुरीमें चले आये

एक घार धीस्वयंप्रभ तीर्थद्वार पृथ्वीपर विहार करते हुए सुमगापुरीमें आये । उसी समय बलदेव और केशवने वहाँ जाकर, प्रभुकी चन्दना कर, कनकधारी सहित धर्म ध्वज किया । कनकधारी पहलेसे तो विरक्त थी ही, जिनेश्वरकी घाणों ध्वजकर उसे और भी घेराम्य हो आया और उसे मृत ग्रहण करनेकी समझाया उत्पन्न हुई । बलदेव और घासुदेवने बड़े हर्षके साथ उसका दीक्षा-महोत्सव किया । दीक्षा ग्रहण कर, कनकधारी, एकावली आदि उत्कृष्ट तप करने लगी । तदनन्तर शुक-ध्यान करती, चार घाटी कर्मोंका हथकर, केवल-ज्ञान प्राप्त कर उसने मोक्ष पा लिया ।

अरराजित नामक बलदेवकी स्त्रीका नाम विरता था । उसीके गर्भसे उसके सुमति नामकी पुत्री उत्पन्न हुई थी । वह बचपनसे ही जीवा-जीवादि तत्त्वोंके जाननेमें निपुण, तप-कर्मोंमें उद्यमशील और धीजिनधर्ममें प्रीति रखनेवाली थी । एक दिन उपवास और पारणामें समता रखनेवाले इन्द्रियोंके दमन करनेवाले और क्षमा गुणसे शोभित वरदत्त नामक मुनि उसके घर आये । उस समय वह उपवासके अन्तमें पारणा करनेके लिये थालमें मनोहर भोजन परोसे हुए थी । उसीमें से उसने शुभ-भावनासे चुक होकर मुनिको भोजन कराया । उसी समय उत्तम मुनिको दान करनेके प्रभावसे उसे तत्काल उसकी भक्तिसे रञ्जित देवोंति पाँच दिव्य प्रकट किये । मुनि अपने स्थानको चले गये । यह साक्षर्य देख, बलदेव और घासुदेव विचार करने लगे,—“यह कन्या बड़ी पुण्यशालिनी है, इसलिये धन्य है ।” ऐसा विचार कर, उन्होंने कन्याको विवाह

योग्य दूर देना, मन्त्रियोंके साथ विचार कर, बड़े भाग्यके साथ स्वयं
 वर-मण्डप रचाया । इसके बाद चारों दिशामें पत्र भेज कर उन्होंने
 सब राजाओंको बुलवाया । स्वयंवरके समय सब लोग आकर मण्डपमें
 बैठ रहे । इसके बाद कन्या भी सब शृङ्गार किये, हाथमें वर-मन्त्रा
 लिये शुभमुहूर्तमें मण्डपमें आयी । इतनेमें उसके पूर्ण भयकी बहन-
 देवता, जिमको उसने पूर्ण भयमें अपनेको प्रतिबोध देनेका संकेत किया
 था, भा पहुँची और उसको मन लेनेके लिये प्रतिबोध देने लगी । इसमें
 वह प्रतिबोध प्राप्त कर, दृढ़ वैराग्यवती हो गयी । कम, स्वयंवरमें भाये
 हुए सब राजा लोगोंने विश्वास माँगकर, वह बलदेव और बेतापकी सम्मति
 ले, पाँच सौ कन्याओं सहित संयम भङ्गीकार कर, सुमना नामक भगनी
 गुरुमात्रीके पास आकर रहने लगी । तदनन्तर निर्मल तपस्या कर,
 क्षयकधेनी पर आकृष्ट हो, केवल-ज्ञान प्राप्त कर, भय प्राणियोंको प्रति-
 बोध देकर मुमति साधनी होकर मोक्षको प्राप्त हुई ।

अनन्तरीय वामुदेव, चौरामी लाला पूर्वका भागुधर पूर्ण कर,
 मरणको प्राप्त हो, निष्काशित कर्मके योगसे, बपालीम १ शर वर्षके
 आयुष्यवाले नरकमें जाकर नारकी हुए । राजा नरराजिन बहुत दिनों
 तक बन्धुमें वियोग हो जानेके कारण अत्यन्त शोकाहत रहे । उन
 समय धर्ममें निपुण एक मन्त्रीने उनसे कहा, — “हे स्वामिन् ! जब भाग
 जैने महापुरुष भी मोक्षकी विधाबधे होते जाते हैं, नच ये-गुण किमने
 प्राप्त जाकर रहेगा ?” वह मृत, बलदेवका पुत्र बहुत कुछ दूर हुआ ।
 एक दिन यशोधर नामक गुणधर महाराज वहाँ आ पधारे, उनके भाग
 मनका वृत्तान्त श्रवण कर, राजा नरराजिन को यह हठार राजाओंके साथ
 उनकी सम्मता करने गये । वहाँ पहुँच, गुणधरकी पत्न्या कर, वे
 लोग इतने मोड़े हुए, उल्लिख स्थानों पर बैठ गये । उन समय गुणधर
 महाराजने इन प्रकार देखा ही, — “इह जनोंके विभागसे उत्पन्न होते
 बड़े शोकको मनुष्यजातोंको चाहिये, कि स्वयं दे बर्षोंके पूर्व
 वर्तमान इसकी विधाबधे देखा ही है । इह निर्वाण की महाराजने

पीड़ित प्राणियोंको सुधुतमें^६ बतलाये हुए श्रेष्ठ धर्मोपधका सेवन करना चाहिये ।^१ इस प्रकार गणधरकी वैशना ध्वज कर, अपराजित बल-देव, शोक त्याग कर, गणधरकी चन्दना कर, घर आये और अपने पुत्रको राजगद्दी पर बैठा कर राजाओंके समूहके साथ उन्हीं गणधरसे दोहा ले ली। इसके बाद बहुत दिनों तक कठोर तपस्या करनेके पश्चात् अनशन-प्रवृत्ति अवलम्बन कर, शुभ ध्यान करते हुए, मृत्युको प्राप्त होकर अच्युत-देवलोकमें जा देवेन्द्र हुए ।

इस जम्बुद्वीपके भरतक्षेत्रमें घैताद्वय-पर्वतके ऊपर उसकी दक्षिण श्रेणीमें गगन-वल्लभ नामका नगर है। उसमें किसी समय मेघनाद नामक विद्याधरोंके राजा राज्य करते थे। उनकी रूप-लावण्यमयी भार्याका नाम मेघमालिनी था। अनन्तधीर्यका जीव ऊपर कहे हुए नरक-मेंसे निकलकर उसी रानीको कोखमें आया और समय आनेपर वही मेघनादके नामसे उनका पुत्र प्रसिद्ध हुआ। पमशः वह युवावस्थाको प्राप्त हुआ। उसके पिताने उसकी शादी बहुतसी राजकन्याओंके साथ कर दी। कुछ काल व्यतीत होनेपर राजाने उसीको अपना राज्य देकर आप दीक्षा ग्रहण कर ली।

राजा मेघनाद, दोनों श्रेणियोंके स्वामी हुए। उन्होंने घैताद्वय-पर्वत पर बसे हुए एक सौ दस नगरोंको अपने पुत्रोंके बीच बांट दिया। एक दिन राजा मेघनादने मेघ-पर्वतके ऊपर जाकर शाश्वती जिन-प्रतिमाओं और प्रशस्ति-विद्याकी पूजा की। इतनेमें वहाँ स्वर्गवासी देवगण आ पहुँचे। वहाँ अपराजितका जो जीव अच्युतेन्द्र हो गया था, वह भी आया। अच्युतेन्द्रने मेघनादको देख, स्नेहसे अपने पास बुला, उनको पूर्ण मद्यका सारा वृत्तान्त सुनाकर धर्मका प्रतिबोध दिया। इसके बाद वे (अच्युतेन्द्र) अपने स्थानको चले गये। परन्तु मेघनाद सेचरेन्द्रने

^६ इसी शब्दका एक संस्कृत अर्थ है। इसमें रहने से अर्थात् रहने से रहने का अर्थ होता हुआ—आगम ।

उनके उपदेशसे घेराम्य-लाम कर, अमरसूरि नामक गुरुमें दीक्षा ग्रहण कर ली और मन्दन-वनमें जाकर उपव्रत करने लगे ।

अभ्यप्रीय प्रतिषासुदेवके पुत्र असुरकुमारमें उत्पन्न हुआ था । उमने मुनि मेघनादको देख, पूर्य भवका घेर याद कर, एक रातको प्रतिमाके पास रहनेवाले मुनिके प्रति बड़े-बड़े उपद्रव किये ; पर तो भी मुनि अपने ध्यानसे पिचलित नहीं हुए । प्रातःकाल ये प्रतिमाको प्रणामकर, पृथ्वी-तलपर विहार करने चले गये । अन्तमें उन्होंने समाधि-मरण पाया और अच्युत-देवलोकमें जाकर देवता हुए ।





इसी जम्बुद्वीपके पूर्वे, महाविदेह-क्षेत्रमें, शीतोदा नदीके किनारे, मङ्गलावती नामक विजयमें, सिद्धान्त ग्रन्थोंमें वर्णित रत्न-सञ्जया नामकी शाश्वती नगरी वर्तमान है। वहाँपर प्रजाका क्षेम करनेवाले क्षेमङ्कुर नामके राजा राज्य करते थे। वे छगवेशमें रहनेवाले तीर्थङ्कर थे। उनके रत्नमाला नामकी रानी थी। एक समयकी बात है, कि अपराजितका जीव घाईस सागरोपमका आयुष्य सम्पूर्णकर, अच्युत देवलोकके इन्द्रपदसे चूकर रत्नमालाकी कोखमें पुत्र-रूपमें आ उत्पन्न हुआ। उस समय सुख-पूर्वक शय्यापर सोयी हुई रानीने रातको हाथीसे अस्पर्श कर, निर्धूम अग्निपर्यन्त चौदह महास्वप्न देखे। पन्द्रहवीं-बार उसने वज्रका दर्शन किया। उस स्वप्नकी यातको हृदयमें धारण किये हुए उसने प्रातः काल अपने स्वामीसे सारा हाल कह सुनाया। तब राजा क्षेमङ्कुरने उन स्वप्नोंकी यातपर मन-ही-मन विचार कर कहा,—“हे प्रिये! इन स्वप्नोंके प्रभावसे तुम्हें बड़ा पराक्रमी पुत्र होगा।” यह सुनकर रानी बड़ी हर्षित हुई। इसके बाद समय पूरा होनेपर रानीने शुभ ग्रह-लग्नके समय पुत्र रत्न प्रसव किया। तत्काल दासियों-ने राजाके पास जाकर पुत्र-जन्मकी बधाइयाँ दीं। राजाने हर्षकी अधिकतासे दासियोंको इतना धन दान कर दिया, जिससे उनकी जीवन-पर्यन्त जीविकाका निर्वाह होता रहे। तदनन्तर राजाने पुत्र-जन्मका उत्सव बड़ी धूमधामसे मनाया। रानीने पन्द्रहवीं स्वप्न वज्रका देखा

या, इसलिये राजाने कुमारका नाम वज्रायुध रखा । कमराः धात्रियों से लालित-पालित होते हुए राजकुमार आठ वर्षके हुए, तब राजाने उन्हें कलाओंका अभ्यास करनेके लिये कलाचार्यके पास भेज दिया । धीरे-धीरे कुमारने सब कलाएँ सीख लीं और युवावस्थाको प्राप्त हुए, तब राजाने अनुपम, रूपवती लक्ष्मीवती नामक राजकुमारीके साथ उनका ब्याह बड़ी धूमधामसे कर दिया ।

इसके बाद कितनाही समय बीत गया । तब भगन्तवीर्यका जीव अव्युत्-देवलोकसे व्युत् होकर कुमार वज्रायुधकी पत्नी लक्ष्मीवतीकी कोखमें पुत्र-रूपसे उत्पन्न हुआ । समय पूरा होनेपर उसका जन्म हुआ । उसका नाम सहस्रायुध रखा गया । कमराः कलाओंका अभ्यास करते हुए वह युवावस्थाको प्राप्त हुआ । उसका विवाह राजकन्या कमलभी के साथ हुआ । उसीके साथ रहकर भोग-विलास करते हुए उनके एक पुत्र हुआ, जिसका नाम शतबल रखा गया ।

एक दिन राजा क्षेमद्वार अपने पुत्र, पौत्र और प्रपौत्रके साथ समा-मण्डपमें श्रेष्ठ सिंहासन पर बैठे हुए थे । इसी समय वहाँ ईशान-कल्प-घासी मिथ्यात्वके कारण मोह-प्राप्त चित्रधूङ्ग नामका कोई देव आया । उसने राजा क्षेमद्वारके पास आकर कहा,— “हे राजन् ! जगत्में न कोई देव है, न गुरु है, न पुण्य है, न पाप है, न जीव है और न परलोक ही है ।” उसकी यह नास्तिकता भरी बात सुन, कुमार वज्रायुधने उससे कहा,— “देव ! तुम्हारी यह नास्तिकताकी बातें उचित नहीं । क्योंकि इसके तुम्हीं स्वयं प्रमाण हो । यदि तुमने पूर्व भवमें कोई पुण्य नहीं किया होता, तो देवत्वको नहीं प्राप्त होते । पहले तुम मनुष्य थे, अब देव हो । इससे यह सिद्ध होता है, कि जीव है । यदि जीव न होता, तो शुभाशुभ कर्मोंका उपार्जन कौन करता ? और उन कर्मोंका भोग किसे होता ?” इस प्रकार वज्रायुधकुमारने उसको जीवका अस्तित्व सिद्ध करके दिखलाया और उसके अन्य संशयोंको भी हेतु, युक्ति और दृष्टान्तोंसे छिन्न-भिन्न कर डाला, जिससे उसे बोध हो

गया । तब देवताने प्रसन्न होकर कहा,— “हे कुमार ! आपने मेरा बहुत बड़ा उपकार किया, जो मुझे नास्तिकताके कारण भवसागरमें डूबनेसे बचा लिया । ” यह कह, उसने कुमारसे समकित ‘सहित श्री-जिनधर्म’ बड़ोकार कर कहा,— “हे धर्मके उपकारक ! मैं आपकी कुछ भलाई करना चाहता हूँ । इसलिये कहिये, मैं क्या करूँ ! देवका दर्शन कभी निष्फल नहीं जाता । ” उसके ऐसा कहने पर भी जब कुमारने पूरी निस्पृहता दिखलायी, तब देवने स्वयं बहुत आग्रह करके उनको एक आभूषण दिया और उन्हें प्रणाम कर स्वर्गमें चला गया । वहाँ पहुँच कर उसने ईशानेन्द्रसे यह सब हाल कह सुनाया । यह सुन, वज्रायुधके गुणोंसे प्रसन्न होकर ईशानेन्द्रने यह जान लिया, कि कुमार भरतक्षेत्रके सोलहवें तीर्थद्वार होनेवाले हैं और अपने स्थानपर बैठे हुएही उन्होंने कुमार वज्रायुधकी पूजा की ।

एक दिन घसल-भ्रतुके उमानेमें सुरशाना नामकी एक दासीने धीरे वज्रायुधकुमारकी पूजा देकर कहा,— “हे देव ! लक्ष्मीवती देवी आपके साथ सुरनिराज नामक उद्यानमें बौड़ा करनेकी इच्छा कर रही हैं । ” यह सुन, कुमार वज्रायुधने प्रेमपूर्ण हो, तत्काल अपनी स्नानसौ रानियोंके साथ उसी उद्यान की यात्रा कर दी । वहाँ अनेक प्रजा-जनोंकी तरफ-अरफकी बौड़ाओंमें लगे हुए देखकर वे स्वयं भी रानियोंके साथ-साथ बौड़ा घाटीमें प्रवेश कर अन्तर्बौड़ा करने लगे । इसी समय एक सर्पान घटना घटी ।

पहले मरुताजिनके भवमें वज्रायुध कुमारने जिन श्मितादि नामक प्रियशालुदेवकी हस्तता पा, वह संसारमें परित्रनय करने हुए बहुत दिनों तक तपस्याका अनुष्ठान करनेके पश्चात् स्थानर आनिष्ठा देव हो गया था । उसने वज्रायुधकुमारकी अन्तर्बौड़ा करने देखा, एवं भयसे हँसने प्रारंभ हो, उनका विनाश करनेकी इच्छामें एक बड़ा सा पर्वत उठाकर वह उसी घाटीमें फेंका और उसके नीचे पड़े हुए कुमारकी बड़ी मङ्गदूर्तसे मरुताजिनने हँस लिया : कुमार वज्रायुध स्वर्गमें

होनेवाले थे, इसलिये उनमें बड़ा बल था । वे दो हजार यज्ञों द्वारा अधिष्ठित थे । इसलिये ये तत्काल उस मागसाशको काट, पर्यंतको चूर-चूर कर, पेदाग शरीर लिये हुए बापीसे बाहर निकले और सब रानियोंके साथ घनमें क्रीड़ा करने लगे । इसी समय इन्द्र, महाविदेह में तीर्थद्वारकी धन्यता कर, शाश्वत तीर्थकी यात्रा करनेके लिये नन्दी-श्वर-क्षीपकी ओर चले जा रहे थे । उन्होंने यन्त्रायुधको पर्यंत तोड़, मागसाश काटकर बाघलीसे बाहर निकलने देखा लिया । यह देख, आश्चर्यमें आ, इन्द्रने अपने ज्ञानका उपयोग कर यह जान लिया, कि ये सापीतीर्थद्वार हैं । यह जान, उन्होंने भक्तिपूर्वक दोनों हाथ जोड़कर उन्हें प्रणाम किया और इस प्रकार उनकी स्तुति की — “हे कुमारम् ! तुम धन्य हो । क्योंकि तुम्हीं इस भरतक्षेत्रमें कल्याण और शान्तिके देनेवाले धीशान्तिनाथके नामसे श्रोलहवें तीर्थद्वार होनेवाले हो । ” इस प्रकार स्तुति कर इन्द्र नन्दीश्वर-क्षीप चले गये । इसके बाद कुमार भी क्रीड़ा कर अपने परिवार सहित घर आये ।

एक दिन पंचम देवलोक-वासी शोचान्तिनाथ देवने आकर राजा क्षेमदुरसे कहा, — “स्वामिन् ! अब आप धर्मनीर्णक अवलम्बन करें । यह सुन, भगना, क्षीप्रा-काण्ड निकट जान, क्षेमदुर राजाने यन्त्रायुध कुमा-रको राजगद्दी पर बैठकर सांख्यसन्निक दान किया । धर्मके अणमें आग्नि प्रदत्त कर, कुछ समय तक छत्रयशमें विहार करने हुए घाती कर्मोंका क्षय कर, वे कैवल्य-ज्ञानको प्राप्त हुए । इसके बाद उन्होंने देवनाभोका समग्रसम्पन्न रखाया । उसमें बैठकर त्रिकंशर क्षेमदुरसे इसप्रकार देखा दी, — ‘हे सत्य प्राणियों ! निम्नप्रसन्न, कलहप्र और कामधेनुकी तरह धर्मकी निम्नप्र सेवा करनी चाहिये । साथ ही इस धर्म की छत्र, शील और दया आदिमें गयी मूर्ति गरीबा करनी चाहिये, क्योंकि बिना गरीबा के यह आदर्श खोद नहीं । जैसी कि वेदमें दूध पीना बहुत गुणकारी बताया गया है, वर सुन कर यदि कोई मूर्ख आदमी दूध पी अर्थ, तो उसकी मूर्ति यह आर्थोंकी

और बहुत सारा बीमारी पैदा हो जायेगी । इधर यदि कोई बुद्धिमान विचार कर गायका दूध पीये, तो वह उसके बलको बढ़ायेगा और उससे उसकी पुष्टि होगी । इसी प्रकार मनुष्यको विचारके साथ धर्म का आदर करना चाहिये । यदि बिना विचार दूसरी तरहका कार्य किया जाये, तो अमृतान्नका विनाश करनेवाले राजादिककी भाँति वह बहुत बड़ा दोष उत्पन्न करता है । अर्थात् जैसे अमृत फलवाले आम्रवृक्ष का विनाश करनेवाले राजा आदिको पश्चात्ताप हुआ, उसीतरह उसको भी पश्चात्ताप होता है । यह सुन, समाके सब लोगोंने जिनेश्वरसे पूछा, 'हे प्रभु ! बिना विचार काम करनेके कारण उन लोगोंको कैसे दोष हुआ, सो बताकर कहिये ।' यह 'सुन, तीर्थङ्करने कहा,—'हे भव्य-जनो ! उनकी कथा इस प्रकार है, सुनो:—

'मालव-देशमें उज्जयिनी नामकी नगरी है । वह सारी पृथ्वीमें प्रसिद्ध है । उसमें जितशत्रु नामके राजा राज्य करते थे । उनकी रानी का नाम विजयश्री था । अपनी उस पटरानीके साथ विषय-सुख भोगते हुए राजा सुखसे राज्य कर रहे थे । एक दिन राजा समामें बैठे हुए थे । इसी समय द्वारपालने आकर विनय-पूर्वक कहा,—'हे स्वामिन् ! आपके मन्दिरके द्वारपर देखनेमें राजकुमारोंकी तरह रूप—रंगवाले चार पुरुष आये हैं और आपके दर्शन करना चाहते हैं ।' यह सुन, राजाने कहा,—'हे प्रतिहार ! उन्हें शीघ्रही अन्दर ले आओ' इसके बाद द्वारपाल उन चारों पुरुषोंको राजसभामें ले आया । वे राजा को प्रणाम कर विनयसे नम्र बने हुए खड़े रहे । राजाने उन्हें घैठनेके लिये आसन आदि देकर सम्मानित किया और उन्हें देखकर मन-ही-मन यह सोचकर, कि ये तो मेरे ही वंशके मालूम पड़ते हैं, उन्हें पान आदि देकर उनका और भी आदर किया तथा पूछा,—'तुम लोग कहाँसे आ रहे हो और क्या चाहते हो ?' यह सुन, उनमें जो सबसे छोटा था, वह बोला,—'हे देव ! उत्तर-प्रदेशमें सुवर्ण-तिलक नामक एक ध्येष्ठ नगर है । उसमें वैरो मर्दन नामके राजा थे, जिनकी स्त्रीका

और उन दोनों टुकड़ोंको एक स्थानपर छिपाकर रख दिया । इसके बाद यह फिर अपने स्थानपर आकर सायधानीके साथ पहरा देने लगा । इसी समय उसने देखा, कि रानीकी छाती पर साँपके कधिरकी बूँद पड़ी है । यह देख, यह सोचकर कि कहीं इससे रानीके शरीरमें विष का प्रवेश न हो जाय, उसने हाथसे उन बूँदोंको पोंछ दिया । इसी समय एकाएक राजाकी भीड़ टूट गयी और उन्होंने देवराजको रानीके स्तनोंपर हाथ फेरते देखा । इससे क्रोधमें आकर उन्होंने विचार किया,— “इस बुरादमाको मार ही डालना चाहिये ।” फिर विचारा,— “वह पलवान है, इसलिये मैं इसे अकेला ही नहीं मार सकूँगा । अतएव और ही किसी उपायसे इस विश्वास-घातकको मार डालना चाहिये ।” शास्त्रमें भी कहा हुआ है,—

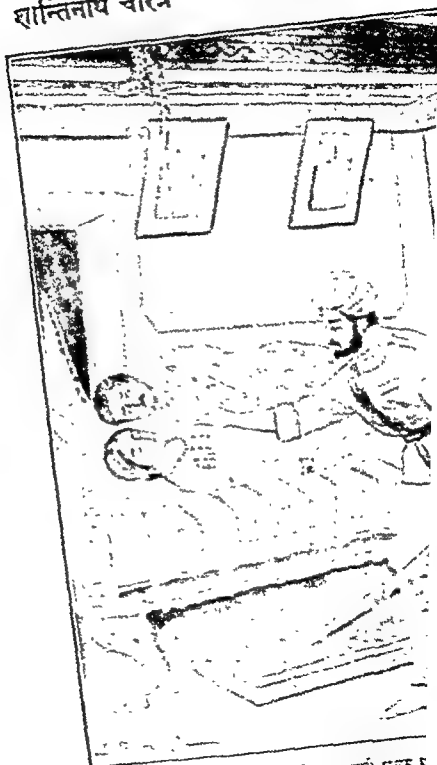
“आयुषो राज्ञ-चित्तस्य, घनस्य च घनस्य च ।

तथा स्नेहस्य देहस्य, नास्ति कालो विकुर्वताम् ॥ १ ॥”

अर्थात्—“आयु, राजाके चित्त, घन, मेघ, स्नेह और देह— इन चीजोंमें विकार होते ढेर नहीं लगती ।”

क्रोधित राजा सोयेही हुए थे, कि इसी समय अड़ियालने रातके पहले पहरकी घंटी बजायी । बस, देवराजने अपनी जगह पर अपने छोटे भाई वत्सराजको बैठा दिया और आप अपने स्थानको चला गया । उस समय राजाने पूछा,— “इस समय पहरे पर कौन है ?” उसने कहा,— “मैं हूँ—आपका सेवक, वत्सराज ।” राजाने कहा,— “हे वत्सराज ! क्या तुम मेरी एक आकांक्षा पालन करोगे ?” उसने कहा,— “स्वामिन ! आपको जो कुछ आज्ञा होगी, उसका मैं अवश्य पालन करूँगा—शीघ्र आज्ञा दीजिये ।” राजाने कहा,— “यदि ऐसी बात है तो जाओ, अपने भाई देवराजका सिर काट लाओ ।” उसने कहा,— “बहुत अच्छा” और यह कहनेके साथही राजमन्दिरसे बाहर निकलकर अपने मनमें विचार करने लगा,— “अवश्यही आज देवराजने ऐसा कोई काम किया होगा, जिससे राजा इतने नाराज़ हैं और वह काम अवश्यही शरीर,

शान्तिनाथ चरित्र



उसने हाथों से बंदों को खोल दिया। इसी समय व
हना की ओर झुकते देखा उसने हाथों से बंदों को खोल दिया

स्त्री मथवा धनके द्रोहका होगा, नहीं तो इनको इतना क्रोध हरगिज़ नहीं होता : परन्तु मेरे बड़े भाई ऐसा कोई काम करेंगे, यह तो बिल्कुल तनहीनोसो बात मानून पड़ती है। कदा भी है,—

“ममन्तुतना नोके, स्वमन्तुतने न भुवन् ।

अन्तर्गतोक्तो कृत्यं, अन्तर्गतं न भोक्तव्यम् ॥ १ ॥

भोज्यं जगत्प्राप्तम्, ये भवन्ति विवेन्द्रियाः ।

अन्तर्गतं न भुवन्ति, न भोक्तव्यं यथा ॥ २ ॥

अर्थात्—“उक्त शोकमें जो लोग नमस्कारने ही उत्तम हैं, वे मृत्यु-का भय ही आर्चिष्य कर ले : पर कुमारोंका अवसन्धन कभी नहीं करते । जो विवेन्द्रिय पुरुष लोकप्राप्त्यने उरने हैं, वे नहादुनवोंकी मूर्ति कुर्त्त नहीं करते ।”

यही विचार कर बत्सराजने सोचा,—“राजने तो आशा दे डाला: परन्तु मैं कुहल्य क्यों कहूँ ? पर उनकी आशा भी तो टालने लायक नहीं। इसलिये कुछ देर कर दूँ, तो ठीक है: क्योंकि काल-विलम्ब करनेसे अमुकका निवारण हो जाता है, ऐसा विद्वानोंका कथन है।” इसी प्रकार सोच विचार कर उसने राजाके पास आकर कहा,—“स्वामिन्! अनन्तक तो देवराज जगाही हुआ है। उसे जगतेमें कोई नहीं मार सकता। इसलिये जब वह सो जायगा, तब मैं उसे मार डालूँगा।” यह सुन, राजाने उसकी बात सब मान ली। फिर बत्सराजने कहा,—“प्रभो ! अच्छा हो, यदि समय बितानेके लिये आप कोई कहानी कह सुनाइये अथवा मैं कहूँ और आप बित देकर सुनें। राजाने कहा,—“भाई ! तुम्हीं क्या कह सुनाओ ?” राजाकी यह भाषा पक्ष्य बत्सराजने उन्हें यह कथा सुनायी,—

“इसी भरत-क्षेत्रमें पटलिपुत्र नामका नगर है। वहाँ प्रतापो, वितपदि गुप्तोसे विभूञ्जि पृथ्वीराज नामका राजा राज्य करता था। उसका प्राणप्रिया पत्नीका नाम सुमंगा था। उसीनगरमें रत्नसार नामका एक संठ रहता था, जो बड़ेही निमल आचारवाला, सद्बिचारपुरुष

भीर हृयाका आधारभूत था । उसकी छोटी नाम शत्रु का था, उसके गर्भसे उत्पन्न धनदत्त नामक एक पुत्र उस सेठके था, जो बड़ा ही पवित्र चरित्र था । सेठका यह बालक कलामोंका सम्पास करता हुआ बालक पनसे युवावस्थाको प्राप्त हुआ । एक दिन यह बढ़िया पोशाक पहन मित्रों भीर यन्धुमोंको साथ ले अपने घरसे बाहर हुआ और किसी कामके लिये कहीं खला आ रहा था । इसी समय किसीने उसे रास्तेमें आते देखा, कहा,—“यह सेठका बालक धन्य है, जो इस प्रकार मनमानी मीठों उड़ा रहा है ।” यह सुन, किसी दूसरोंने कहा,—“भरे भूखे ! मुक्तमें इतनी तारीफ़ क्यों कर रहा है ? जो अपने बापके धनपर मौज करते हैं, वे तो कुपुरुष कह जाते हैं । जो अपनी भुजाओंके प्रतापसे व्यापार की लक्ष्मीका उपभोग करता है और दान भी देता है, वही प्रसादके योग्य है । कहा भी है, कि—

“मातुः स्वल्पे विगृहीते, परेभ्यः कीदृशार्पणम् ।

पानुं भोजनं वृत्तानुं च, वाच्य एवोक्तिं वतः ॥ १ ॥

अर्थात्—“माताका स्तन-गान करना, पिताके द्रव्यका उपभोग करना अथवा दूमरोंसे कौड़ाके लिये कोई चीज लेना, यह बातोंको ही गोमा देता है ।”

उसकी यह बात सुन, उस सेठके लक्ष्मणने लीचा,—“तथापि वे लोग यह बाने डाहके मारे कह रहे हैं, तथापि बाने मेरे दिनकी हैं । जन्मपक्ष अब मेरे देशान्तरकी आकर धन कमाऊँ । तभी सत्पुरुष कह लानेगा, अन्यथा नहीं ।” ऐसा विचार कर, उसने अपना बिचार अपने मित्रोंपर प्रकट किया । मित्रोंने भी उसके विचारकी प्रशंसा की । सबसे पीछे उसने अपने घर आकर, पिताके कर्जोंमें प्रणाम कर, बड़े आग्रहके साथ कहा,—“पिताजी ! यदि आपकी आज्ञा हो, तो मैं धन कमानेके लिये परदेश आऊँ ।” यह बात सुन, वह सेठ देखा हुआ, मानों उसे बड़ा मार गया हो और बोला,—“बेटा ! मेरे घरमें बड़ा ही काज़ी धन है उसे अपने कामों-क्यों और दान भी दों । तुम्हें

उपार्जन करनेकी क्या फ़िक्र पड़ी है ? परदेशमें समय पर खानेकी नहीं मिलता, कभी-कभी तो पानी भी मयस्सर नहीं होता । बाराम से सोने बैठनेका सुमोता नहीं होता । इधर तुम्हारा शरीर बड़ा कोमल है । इसलिये परदेश जाना ठीक नहीं ।" पिताकी यह बात सुन, पुत्रने फिर कहा,—“पिताजी ! तुम्हारी उपार्जन की हुई लक्ष्मी मेरी माताके समान है । अतएव लड़कपनके सिवा और किसी अवस्थामें वह मेरे भोगने योग्य नहीं ।”

इसी तरहकी बड़ी आग्रह-भरी बातें कहकर उसने पिताकी आज्ञा प्राप्त कर ली और चाहन भाई सारी सामग्रियाँ तैयार कर, काम लायक किरानेकी चीज़ें ले, खाने-पानेकी भी चीज़ें साथ ले, पिताकी दी हुई शिक्षाओंको चित्तमें भली भाँति धारण कर, एक शुभ दिवसको सारे क़ाफ़िलेके साथ, यात्रा कर दी । इसके बाद निरन्तर चलता हुआ वह सेठका पुत्र अपने क़ाफ़िलेके साथ कितनेही दिन बाद धीपुर नामक नगरमें पहुँचा । वहाँ किसी सरोवरके पास क़ाफ़िलेका पड़ाव पड़ा । क़ाफ़िलेका सरदार एक खूबसूरत तम्बूके अन्दर डेरा डालकर रहा । इसी समय एक मनुष्य, जिसकी देह काँप रही थी और आँखें उरके मारे काम नहीं देती थीं, सेठके पुत्रकी शरणमें आया ।

धनदत्तने उससे कहा,—“भाई ! तुम डरो मत । केवल यही कह दो, कि तुम कौनसा अपराध करके मेरे पास आये हो ।” उसने ऐसा पूछाही था कि इतनेमें ‘मारो-मारो’की आवाज़ करते, शस्त्रधारी रक्तक वहाँ का पहुँचे और क़ाफ़िलेके सरदारसे बोले,—“सेठजी ! यह मनुष्य यहक़ि राजाका नौकर है और उनका एक चढ़िया सा गहनालेकर ज़ुल्ममें हार आया है । उस गहनेकी खोज करते हुए हमलोगोंने पता लगा जाने-पर राजासे जाकर कहा, तब उन्होंने जुबानसे वह गहना लेकर हुस्न दिया, कि इस चोरको पूरी सज़ा दो, यह राज़दोही है, इसे हरगिज़ न छोड़ो । उस समय दयालु मन्त्रियोंने राजासे कहा, कि ‘इस गहनेके चोरको सम्मति कारागृहमें डाल दो ।’ यह सुन, राजाने भी उसे

फेदवाने मित्रवा दिया । एक दिन रातके पिछले पहरेमें
 फेदवाना सोइ, वहकि पहरेदारको मार, यह घोर वहाँसे
 निकल भागा । हम लोग यह खबर पातेही उसके पीछे-पीछे दौड़ पड़े ।
 इसी समय यह घोर इस सरोवरके पास घने जङ्गलमें जा दबका । अब
 यह वहाँसे निकलकर आपकी शरणमें आया है, इसलिये आप इस राज-
 प्रोदीको कदापि अपनी शरणमें न रखिये ।" पहरेदारोंकी यह बात सुन,
 फ़ाफ़िला-सरदारने कहा,—“हे राजपुरुषो ! तुम लोगोंनि जो बात कही,
 वह तो ठीक है ; पर अच्छे मनुष्य कभी शरणमें आये हुए मनुष्यको नहीं
 त्यागते ।” सिपाहियोंने कहा,—“आप चाहे जो कहें ; पर हमलोग तो
 राजाकी आज्ञाके अनुसार काम करते हैं, हमें दूसरा कुछ नहीं मालूम ।”
 तब सार्धपतिने कहा,—“अच्छ, तो मैं राजाके पास चलकर अपनी बातें
 कह सुनाता हूँ ।” यह कह, वह राजाके पास गया और एक अमूल्य
 रत्नोंका हार, राजाकी मेंट कर उनके निकट बैठ रहा । राजाने उसका
 बड़ा आदर-मान कर, पूछा,—“हे सार्धपति ! तुम कहाँसे चले आ रहे
 हो ?” इसपर उसने उन्हें अपना सारा हाल सुनाकर कहा,—“हे महा-
 राज ! यदि आपका गहना आपकी मिल गया हो, तो मेरी शरणमें आये
 हुए इस घोरको आप माफ़ कर दें ।” राजाने कहा,—“गहना मिल
 जाने पर भी यह धन करनेही योग्य था । तो भी मैं तुम्हारी प्रार्थना
 सुनकर, इसे छोड़े देता हूँ ।” यह सुन, राजाकी प्रणामकर, वह कहने
 हुए, कि आपने मेरे ऊपर बड़ी भारी कृपा की, वह उस घोरको साथ
 लिये हुए अपने स्थानको चला गया । राजाके आश्चर्योंके कहे अनुसार
 सिपाही अपने-अपने स्थानपर चले गये । इसके बाद उस सेठके बेटेने
 उस घोरको भोजन आदि करानेके बाद कहा,—“देखो, अब आजसे तुम
 किसी दिन घोरी न करना ।” यह सुन, घोरी न करनेका निश्चय कर,
 उसने सेठमें कहा,—“सेठजी ! अब आजसे मैं आपकी कृपासे कभी घोरी
 न करूँगा और परलोकमें हिन करनेवाले मनकी प्रशंसा करूँगा ; परन्तु
 मेरे पास एक साधुका दिया हुआ, बड़े विकट प्रभावशाली भूर्गोका

हुमा और यह सार्वपतिसे विद्या प्रांग कर माने घर खला गया । इसके बाद धनदत्त भी अपने क्राफिलेके साथ यहाँसे कूचकर, धीरे-धीरे चलता हुआ समुद्रके पास ही 'गम्भीर' नामके बन्दरगाहमें पहुँचा । वहाँ यह कुछ दिनोंतक रहा भी ; परन्तु इच्छानुसार लाभ नहीं हुआ, इसलिये उसने एक जहाज़ खरीदा और उसे तैयार कर, समुद्रको पूज, देशान्तर-के योग्य सब तरहके किरानेका सामान उसपर लादकर समुद्रमें उबार मानेपर उस जहाज़पर सवार हो गया । इसके बाद मनुकूल वायु पाकर यह जहाज़ बड़े वेगसे चलता हुआ बीच समुद्रमें भा पहुँचा । इतनेमें उस सेठ-पुत्रने आकाश-मार्गसे आते हुए एक अच्छेसे तोतेको देखा । उसके मुँहमें आम्र-फल था । उसीको दौते-दौते यह इतना दैरान हो गया था, कि समुद्रमें गिराही चाहता था । यह देख, सेठने जहाज़के झलासियोंको एक लम्बा छोड़ा कपड़ा फैलाकर उसी पर उस तोतेको ले लेनेका हुक्म दिया । झलासी जब उस तोतेको इसी प्रकार पकड़कर ले आये, तब उसे हवा-पानीसे स्वस्थकर उसने उसे बुलवानेकी चेष्टा की, तब वह तोता, अपने मुँहका फल नीचे गिरा, मनुष्यकी सी बोलीमें बोला,—“हे सार्वनाथ ! आपने आजतक जितने उपकारके काम किये हैं, उन सबमें मेरा यह जीवन-दान सबसे बढ़कर है । मुझे जिलाकर आपने मेरे बूढ़े और अन्धे मा-बापको भी जिला लिया है । इस महान् उपकारका मैं आपको क्या बढ़िया दूँ ? अच्छा, तो इस समय मेरा लाया हुआ यह आम्र-फल ही स्वीकार कीजिये ।” सार्वपाहने कहा,—“हे शुक्र-राज ! मैं इस आम्र-फलको लेकर क्या करूँगा ? तुम्हीं इसे खा लो और इसके सिया मैं तुम्हें ईश और भगूर यगौरह और भी धीजें खानेको देता हूँ, उन्हें भी खा डालो ।” यह सुन, तोतेने कहा,—“हे सार्वपति ! यह फल बड़ा ही शुणकारी और दुर्लभ है । इस फलका वृत्तांत मैं आपको सुनाता हूँ, सुनिये,—

“इसी मरुतक्षेत्रमें विन्ध्य नामक एक बड़ा मारी पर्वत है । उसीके पास पथव्याट्यो नामक एक प्रसिद्ध जंगल है । उसी जंगलमें एक

पेड़पर एक तोतेका जोड़ा रहता था । मैं उन्हींका पुत्र हूँ । क्रमसे मेरे माँ-बाप बहुत बूढ़े हो गये और अब उनकी आँखोंसे ज़रा भी नहीं दीखता । इसलिये मैं ही उनके लिये आहार ला दिया करता हूँ । एक दिन मैं उस जंगलके एक आमके पेड़पर बैठा हुआ था, कि इतनेमें दो मुनि वहाँ आ पहुँचे । उन्होंने चारों ओर देखा, सझाटा पाकर आपसमें बातें करना शुरू कीं । उनकी बातोंका सार यह था, कि—समुद्रके मध्यमें कपिशैल नामक पर्वतके शिखरपर एक निरन्तर फलनेवाला आम्र-वृक्ष है । उसका एक फल एक बार कोई खाले, तो उसके शरीर-की सारी व्याधियाँ नष्ट हो जायें और उसे अकाल-मृत्यु या बुढ़ापेका डर न रहे । साथही उसे उत्तम सौभाग्य, श्रेष्ठ रूप और वेदीयमान कान्तिकी भी प्राप्ति हो । उन मुनियोंकी यह बातें सुन, मैंने अपने मनमें विचार किया, कि मुनियोंकी यात कदापि झूठी नहीं हो सकती, इसलिये मैं चलकर यदि वह फल ले आऊँ, तो मेरे बापकी गयी ज़वानी फिर लौट आये और उनकी आँखें भी पहलेकी सी अच्छी हो जायें । हे सायेंश ! मैं इसे विचारसे इस फलको लेता आया हूँ । अब तो इसे आपही ले लीजिये, मैं दूसरा फल लाकर अपने माँ-बापको दूँगा ।”

तोतेकी यह बात सुन, सेठने बड़े आग्रहसे उस फलको ले लिया । तोता फिर आसमानमें उड़ गया । इसके बाद सेठने अपने मनमें विचार किया,—“मैं यह फल क्यों खाऊँ ? अच्छा हो, यदि मैं इसे किसी राजाको दे डालूँ, जिससे बहुतसे मनुष्योंका उपकार हो । पर यदि मैं इसे नहीं खाऊँ तो फिर क्या करूँ ?” इसी तरह सोच विचार कर उसने उस आम्र-फलको अपने पास छिपाकर रख लिया ।

कुछ ही दिनोंमें वह जहाज़ सामने घाले तटपर आ लगा । सेठका बालक जहाज़से नीचे उतरा और भेंट लिये हुए राजाके पास गया । और-और चीजोंके साथ-साथ उसने वह आम्र-फलभी राजाकी भेंट किया । उसे देख, आश्चर्यके साथ राजाने पूछा,—“सेठजी ! यह फल कैसा है ।” यह सुन, उसने उस फलका पूरा-पूरा हाल कह सुनाया । सब कुछ

को धुलयाकर बड़ीमल्लिके साथ यह अमृतफल उसे दिया । उस ब्राह्मणने राजाका दिया हुआ वह आम्रफल घर ले आकर देवताको चढ़ाकर खा लिया और तत्काल मर गया । जब राजाने यह बात सुनी, कि वह ब्राह्मण तो उस फलको खातेही मर गया, तब उन्हें बड़ा ही खेद हुआ । उन्होंने कहा,—“ओह ! मैं तो घम करने जाकर घोर ब्रह्महत्याके पापमें फँस गया । अचर्यही यह अहरीला फल मेरे किसी शत्रुने ॥ मुझे मार डालनेके अभिप्रायसे मेरे पास इस तरह घोछाघड़ीसे पहुँचाया दिया होगा । इसलिये यद्यपि मैंने इस वृक्षको आपही रोपा और इस तरह इसकी रक्षा की है, तथापि इसे जहाँतक जल्य हो सके, कटया डालना चाहिये, जिसमें बहुतसे लोग न मरने पायें ।” यत्न, फिर क्या था ! तुरतही उन्होंने पेड़ काट डालनेकी आज्ञा दे दी । तत्काल राजाके सेवकोंने तेज़ कुल्हाड़ोंसे उस उत्तम वृक्षको जड़से काटकर पृथ्वीपर गिरा दिया । उस समय कौड़ बगैरह रोगोंसे दुःख पानेवाले मनुष्योंने उस विष-वृक्षके काटे जानेका हाल सुन, जीवनसे ऊँचे हुए होनेके कारण सोचा, कि धलो उसी विषफलको खाकर लूरी लूरी इस मसारसे कृष कर जायें । यही सोचकर ये लोग वहाँ भाये । उनमेंसे किसीने उस वृक्षका पका हुआ, किसीने अचपका फल—जोहो जिसके हाथ आया, यही खा गया । किसीने पत्तेही खवाये, किसीके मोंजरें ही प्रयत्नर हुए । इसका परिणाम यह हुआ, कि सबके सब निरोग और अद्वितीय स्वरूपवाले हो गये । इस प्रकार उन कुष्ठान्ति रोगोंसे पीड़ित व्यक्तियोंके दिव्यरूपवाले हो जानेका हाल सुन, राजाको बड़ा विस्मय हुआ । उन्होंने सोचा,—“ऐ ! यह तो बड़ेही अचम्बेकी बात है, कि सामान्य मनुष्य, तो इसके फल खाकर लाभान्वित हुए और बेचारा वेद-वेदाङ्गमें निपुण ब्राह्मण मुपनही मारा गया ।”

ऐसा विचार कर राजाने रत्नवालोंको बुलाकर पूछा,—“तुम लोग उम दिन यह फल पेड़परसे ताड़ लाये थे या जमीनपर गिरा देखकर उठा लाये थे ?” उन्होंने मन्त्र-सच बयान कर दिया । यह सुन, राजाने

को धुलयाकर बड़ीभक्तिके साथ यह अमृतफल उसे दिया । उस ब्राह्मणने राजाका दिया हुआ यह आन्नफल घर ले आकर देवताको चढ़ाकर खा लिया और तत्काल मर गया । जब राजाने यह बात सुनी, कि वह ब्राह्मण तो उस फलको खातेही मर गया, तब उन्हें बड़ा ही खेद हुआ । उन्होंने कहा,—“ओह ! मैं तो धर्म करने आकर घोर ब्रह्महत्याके पापमें फँस गया । अचश्यहो यह जहरीला फल मेरे किसी शत्रुने ही मुझे मार डालनेके अभिप्रायसे मेरे पास इस तरह घोसाघड़ीसे पहुँचाया दिया होगा । इसलिये यद्यपि मैंने इस वृक्षको भागही रोपा और इस तरह इसकी रक्षा की है, तथापि इसे जहाँतक जन्म हो सके, कटया डालना चाहिये, जिसमें बहुतसे लोग न मरने पायें ।” बस, फिर क्या था ! तुरन्तही उन्होंने पेड़ काट डालनेकी आज्ञा दे दी । तत्काल राजाके सेवकोंने तेज़ कुल्हाड़ोंसे उस उत्तम वृक्षको अड़से काटकर पृथ्वीपर गिरा दिया । उस समय जोड़ू जगैरह रोगोंसे दुःख पानेवाले मनुष्योंने उस बिग-वृक्षके काटे जानेका हाल सुन, जीवनसे ऊबे हुए होनेके कारण सोचा, कि खलो उम्मी विपश्यनको लाकर लुशी लुशी हम मंसारसे कुछ कर जायें । यही सोचकर वे लोग वहाँ आये । उनमेंसे किसीने उस वृक्षका पका हुआ, किसीने अधकका फल—ओहो जिसके हाथ भाया, वही खा गया । किसीने पत्तेही खवाये, किसीके मोंजरें ही मयसार हुए । इनका परिणाम यह हुआ, कि सबके सब निरोग और भक्तिर्ण्य स्वकृपावाले हो गये । इस प्रकार उन कुलुहाड़ि रोगोंसे पीड़ित धर्मियोंके दिव्यकृपावाले हो जानेका हाल सुन, राजाको बड़ा विस्मय हुआ । उन्होंने सोचा,—“ये ! यह तो बड़ही अचम्बेकी बात है, कि सामान्य मनुष्य, जो हमके फल खाकर आभाविष्य हुए और बेकारा वेद देनाहूँमें निपुण ब्रह्मज्ञ मुझही मारा गया ।”

ऐसा विचार कर राजाने स्वधार्मिकोंको बुलाकर पूछा,—“तुम लोग हम दिन बड़ बड़ पेड़परमें ताड़ लाये थे या जमीनपर गिरा देवदार टटा लाये थे ?” उन्होंने सब-सब बयान कर दिया । यह सुन, राजाने

इसके बाद वह शुभङ्कर, राजाकी उद्धारताके कारण, मन्तःपुर आदि स्थानोंमें भी आने-जाने लगा । एक दिन उस नगरके पास एक सिंह कहींसे चला आया, एक व्याधने आकर इसकी सूचना राजाको दी ।

यह सुनते ही राजाने उसी समय चतुरंगिणी सेना, और शुभङ्कर बटुकको साथ ले, उसी समय उस सिंहको मार गिरानेके लिये नगरसे प्रस्थान किया । व्याधके बतलाये हुए रास्तेसे चलकर राजा उसी उद्यानमें चले आये, जहाँ वह सिंह मौजूद था । वनके बाहरही सारी सेनाको छोड़कर, राजा एक हाथी पर सवार हो, शुभङ्करको अपने आगे बैठाये हुए सिंहके पास आये । यह देख, वह सिंह, मुँह बाये, उछलकर राजाके पास पहुँचनेके इरादेसे आसमानमें उड़ा । उस समय यह सोचकर, कि कहीं यह सिंह मेरे स्वामीपर हमला न कर बैठे, शुभङ्करने उस सिंहके पास पहुँचते-न-पहुँचते उसके मुँहमें बर्छा डालकर उसे मार गिराया । यह देख, राजाने कहा,—“शुभङ्कर ! तुमने यह बड़ा बुरा काम किया । यह सिंह मेरा शिकार था, तुमने जल्दयात्री के मारे इसे बीचमें ही मार डाला । बात सिर्फ़ इतनी ही नहीं है, कि तुमने इस सिंहको मार गिराया है, बल्कि सब राजाओंके बीच मेरा जो यश छाया हुआ था, उसे भी तुमने छीन लिया ।” यह सुन, बटुकने कहा,—“हे देव ! मैंने यही सोचकर इस सिंहको मार डाला, कि कहीं आपके शरीरको इसके द्वारा पीड़ा न पहुँचे । मैंने कुछ अपनी थड़ाईके लिये आपके हाथसे शिकारको नहीं छीना । मैंने जो इसे मारा है, वह भी आपके ही प्रतापसे, नहीं तो महज़ थल्लेकी छोटसे कहीं सिंह मारा जाता है ! लीजिये, मैं सब सैनिकोंसे यही कहूँगा, कि राजाने इस मृगेन्द्रको मारा है । हे स्वामी ! आप इस मामलेमें मेरे ऊपर क्रोध न करें । इस बातको सिर्फ़ हमीं दोनों जानते हैं, तीसरे किसीको इसकी खबर नहीं है । चार कानोंकी बातका भण्डा नहीं फूटता । कहा भी है,—

“वदन्त्यो मिथने मंत्र-अनुष्णो न मिथने ।

विष्णोऽस्य च मन्त्रस्य, ब्रह्माज्यन्तं न वच्छन्ति ॥ १ ॥”

अर्थात्—“छः कानोंमें पड़े हुए मन्त्रका भेद सुल्ल जाता है ; पर चार कानोंवाली बातका भेद दिया रहता है और दो कानोंवाले मन्त्रका भेद तो ब्रह्मा भी नहीं जान पाते ।”

यह सुन, राजाने कहा,—“हे शुमङ्गुर ! यदि इस बातका भयना फूटा तो मैं संसारमें झूठा कहलाऊँगा और मेरी बड़ी भारी बदनामी होगी ।” शुमङ्गुरने कहा,—“हे प्रभु ! क्या आपने यह नहीं सुना है, कि सत्पुरुषोंके पेटकी धान उनके साथ ही चितापर जल जाती है ।” यह सुनकर राजाको दिलजमर्ह हुई और वे शुमङ्गुरके साथ अपनी सेनामें चले भाये । वहाँ पहुँचकर शुमङ्गुरने इस प्रकार अपने प्रभुका प्रताप वर्णन करना आरम्भ किया,—“ओह ! जिसके नावसे मद्गोमच हाथीका भी मद उतर जाता है, उस सिंहको मेरे स्वामीने किस तरह जिल्लीनेके समान मार गिराया ।” यह सुनकर, सामन्तों और माण्डलिक राजा-ओंको आश्चर्यके साथ-साथ आनन्द भी हुआ । इसके बाद खूब बाजे-गाजेके साथ, बड़ी धूम-धामसे राजाने अपने नगरमें प्रवेश किया । जहाँ-तहाँ लोग इकट्ठे होकर राजाके बल-विक्रमकी बड़ाई करने लगे । यह महोत्सवमय-दिवस क्षणकी तरह देखते-देखते बीत गया । जब राजा समा-विसर्जन कर, रानीके महलमें भाये, तब उन्होंने पूछा,—“हयामी ! आज नगरमें ऐसी चहल-पहल किस लिये है ? क्योंकि बार-बार बाजे बजनेका शब्द सुनाई दे रहा है ।” इसपर राजाने कहा,—“आज मेने एक सिंहका शिकार किया है, उसीकी बर्छाईमें नगरके लोग उत्सव कर रहे हैं ।” यह सुन, रानीने फिर कहा,—“हे नाथ ! उत्तम वंशमें जन्म ग्रहण करके भी अपनी झूठी प्रशंसा कराते हुए आपको लज्जा नहीं आती !” राजाने कहा,—“झूठी प्रशंसा कैसे है ?” रानीने कहा,—“सिंह तो मारा शुमङ्गुरने और आपको बर्छाई मिल रही है । यह कैसी बात है ?” यह सुन, मन-ही-मन क्रोधित होकर राजाने सोचा,—

“उस दुरात्माने मुझसे तो ऐसा कहा, कि मैं यह गुप्त बात किसीसे न कहूँगा और इधर आजके आजही रानीके पास आकर अपनी बड़ाई हाँक गया । इसलिये इस रहस्यका भेद कहनेवाले इस बटुकको किसी तरह गुप्त रीतिसे मरवा डालनाही ठीक है ।” यही सोचकर राजाने एक सिपाहीको हुक्म दिया, कि इस बटुकको गुप्त रीतिसे मार डालो । राजाके आज्ञानुसार उसने बटुकको तत्काल मार डाला और राजासे शाकर कहा, कि मैंने आपके हुक्मकी तामील कर डाली । यह सुन, राजा बड़े प्रसन्न हुए । दूसरे दिन रानीने राजासे पूछा,—“स्वामिन् ! आज यह बटुक आपके साथ नहीं दिखाई देता । यह कहाँ गया ?” राजाने कहा,—“प्रिये ! तुम उस दुष्टका नाम भी न लो ।” रानीने कहा,—“स्वामी ! उसने आपका क्या बिगाड़ा है ? यह तो बड़ाही गुप्ती और कीतुकी है ।” तब राजाने उसका सारा कथा बिछा बह सुनाया । सब सुनकर रानीने कहा,—“नाथ ! सिंहके मारनेकी बात उस बेचारेने मुझसे नहीं कही थी । मैंने तो स्वयंही अपने महलके सातवें करद पर बैठकर तमारा देखते-देखते यह हाल अपनी आँखों देखा था । इस मामलेमें उस बेचारेका कुछ भी अपराध नहीं है ।” इतना कह रानीने फिर पूछा,—“स्वामी ! सब कहिये यह जीता है या मर गया ?” यह सुन, राजाने बड़े अफ़सोसके साथ कहा,—“रानी ! मुझसे तो बड़ा भारी पाप हो गया । मैंने तो उस गुप्त-रसोके समुद्रको मरवा डाला ।” इस प्रकार राजाने बड़ी देरतक उसके लिये शोक मनाया और मन-ही-मन दुःखी हुए, पर सब क्या हो सकना था ! बेचारा बटुक तो चल बसा ! इसलिये जो कोई दिना दिवारे काम करता है, वह बड़े पाप करीना है, और दुनियाँमें उसकी बदनामी भी खूब होगी है ।

दुर्लभराशिके कथा सुनते-सुनाने रातका तीसरा घण्टा बीत गया पर घराँसे उठकर अपने छेरेपर चला आया और उसकी जगहपर उनका घोंघा भाई बीतिराज आ पहुँचा । राजाने हमसे भी कहा,—
देवीतिराज ! क्या तुमसे मेरा एक बात हो सकेगी ?” उसने कहा,—

“स्वामी ! यदि मैं आपका कामही न कर सका, तो फिर आपका सेवक किसलिये कहलाया ?” तब राजाने कहा,—“हे कीर्तिराज ! यदि तुम मेरे सच्चे सेवक हो, तो अपने माई देवराजका सिर उतार लामो । यह सुन, “बहुत अच्छा,” कह कर वह राजमन्दिरसे बाहर हुआ और कुछ देर तक टालमटोल कर, लौट आया । तदनन्तर उस धीर पुरुषने राजासे कहा ‘हे नाथ ! रात बीन खली है, इसलिये सभी पहरेदारोंके साथ-साथ मेरे तीनों माई भी जगे हुए हैं । इसलिये मैं भीका पाकर किसी और समय आपका काम कर दूंगा ।’ यह कह उसने भी समय पितानेके इरादेसे राजाको एक कथा सुनायी । यह इस प्रकार है,—

“इसी भरतक्षेत्रमें महापुर नामक नगरमें शत्रुजय नामके एक राजा रहते थे । उनकी रानीका नाम शिपकु था । एक बार किसी विदेशीने राजाको एक अच्छी नसलका घोड़ा सेंटमें दिया । उस घोड़ेको देखकर राजाने विचार किया,—“रूपसे तो यह घोड़ा बड़ा अच्छा मालूम पड़ता है, परन्तु इसकी बाल कैसे हैं, यह भी देखना चाहिये ।” कहा है, कि—

“जद्योग्यतेः परमं विभूषणं त्रयांगनायाः कृतता तपस्विनः ।

विद्वान्य विधेय मुनेरपि क्षमा, पराक्रमः यक्षक्षोपमीनिनाम् ॥ १ ॥”

अर्थात्—“भरतकी शक्तिका श्रेष्ठ भूषण उसकी बाल है, क्षमाका भूषण लग्ना है । तपस्वीका भूषण कृतता (दुर्बलता) है, मादण्यका भूषण विद्या है । मुनिका भूषण क्षमा है । राजाके बजने जीविका उपार्जन करनेवालोंका भूषण पराक्रम है ।”

ऐसा विचार कर, राजाने उस घोड़ेकी पीठपर ज़ीन कसवाया और उस पर सवार हो, उसकी बाल देखनेकी इच्छासे उसे खलाया । तुरतही वह घोड़ा हवासे घातें करता हुआ ऐसा दौड़ा, कि सारी सेना पीछे रह गयी । घोड़े पर सवार राजा सबकी आँखोंके परे हो गये । उस समय उस घोड़ेके व्यापारीने सामन्तोंसे कहा,— “मैं उस समय यह कहना भूल गया था, कि इस घोड़ेको विजयीन मित्रता दी गयी है ।”

यह सुन, राजाके सेवक तेज़ घोड़ोंपर सवार हो, भोजन और पानी साथ लिये हुए, राजाके पीछे-पीछे दौड़े । इधर राजा, उस घोड़ेकी चालको बच्छी तरह मालूम कर, उसे रोकनेके लिये ज्यों-ज्यों लगाम खींचने लगे, त्यों-त्यों वह और भी अधिक बेगसे चलने लगा । इस तरह उल्टी शिक्षा पाये हुए उस घोड़ेने बड़ी दूरकी मंज़िल मारी । लगाम खींचते-खींचते राजाके हाथसे खून निकल पड़ा, पर वह खड़ा नहीं हुआ । इसके बाद जब राजाने थक कर उसकी लगाम ढीली कर दी, तब वह आपसे आप खड़ा हो गया । अब राजाको मालूम हो गया, कि इस घोड़ेको उल्टी शिक्षा मिली है । इसके बाद राजाने घोड़े से नीचे उतर, उसके ज़ीन-साज़ उतार दिये । इतनेमें अति निकल पड़नेके कारण वह घोड़ा तत्काल पृथ्वी पर गिरकर मर गया । तद्-न्तर उस भयंकर वनमें, जो दावाग्निसे जल रहा था, वे राजा, भूख और प्यासके मारे व्याकुल होकर इधर-उधर घूमने लगे । इतनेमें राजाने उस जंगलमें एक लम्बी-लम्बी शाखाओंवाले बड़े भारी बट-वृक्षको देखा । थके-भादे होनेके कारण राजा उस बड़ेके नीचे जाकर छायामें बैठ रहे । इसके बाद पानीकी तलाशमें चारों ओर नज़र दौड़ाते हुए उन्होंने देखा, कि उसी वृक्षकी एक शाखापरसे पानीकी धूँद टपक रही है । यह देखकर राजाने अपने मनमें विचार किया—“इस वृक्षके सघोड़रमें बरसातका जल जमा है । वही इस समय गिर रहा है । ” ऐसा विचार कर, खदिर-वृक्षके पत्तोंका प्यालासा बनाकर, प्याससे मरे जाते हुए राजाने उस पानीको नीचे गिराना शुरू किया । क्रमशः वह पत्तोंका प्याला श्याम-जलसे लबालब भर गया । उसे हाथमें लिये हुए राजाने ज्योंही उसका जल पीना चाहा, त्योंही एक पक्षीने वृक्षसे नीचे आकर उनके हाथसे वह प्याला नीचे गिरा दिया और फिर वृक्षकी डालपर जा बैठा । यह देख, मन-ही-मन क्रोधित हो, राजाने फिर उसी तरह एक पात्रमें जल भर कर उसे पीना चाहा । इतनेमें फिर उस पक्षीने आकर वह पात्र उसी तरह नीचे गिरा दिया । तब बड़े क्रोधित होकर

राजाने अपने मनमें विचार किया,— “अबकी बार यदि यह हुए पक्षी फिर भाया, तो मैं उसे मारकर टेर कर दूँगा । ” इसी विचारसे उन्होंने एक हाथसे चाबुक पकड़े हुए, दूसरे हाथसे फिर उस पात्रमें पानी भरा । यह देख, उस पक्षीने सोचा,— “यह राजा क्रोधमें आ गया है । इसलिये यदि मैं इस बार इसके हाथसे जल नीचे गिराऊँगा, तो यह ज़रूर मुझे मार डालेगा । और यदि मैं इस जलको नहीं गिरा देता, तो इस ज़हरीले पानीके पीनेसे राजा ज़रूरही मर जायेगा । अन-पप मैं भले ही मर जाऊँ, पर इस राजाको तो जिला ही देना अच्छा है । ” ऐसा विचार कर उसने फिर राजाके हाथका पत्र-पुट नीचे गिरा दिया । राजाने भी तत्कालही चाबुक मारकर उसकी जान ले ली । इसके बाद राजाने फिर हर्षित-चित्तसे उस पात्रमें जल भरना शुरू किया । इसबार जल बड़ी देर-देर पर टपकने लगा । यह देख, विस्मित हो, राजाने उधक कर पेड़ पर चढ़कर देखा, कि उस पेड़के लखोड़में एक भजगर सोया हुआ है । यह देख, राजाने अपने मनमें विचार किया,— “अरे ! यह तो जल नहीं, बल्कि सोये हुए भजगरके मुँहसे निकलता हुआ पिय है । इसे यदि मैंने पी लिया होता, तो अब तक कभीका मर चुका होता । ओह ! उस पक्षीने मुझे बार-बार मने किया, पर मैं मूर्ख उसका मतलब नहीं समझा । हा ! मेरीही मूर्खतासे यह बेचारा परोपकारी पक्षी मेरे ही हाथों मारा गया । ” राजा इसी प्रकार पश्चात्ताप कर रहे थे, कि इतनेमें उनके सिपाही आ पहुँचे और अपने स्वामीको देख, बड़े प्रसन्न हुए । इसके बाद राजा भोजन कर, जलपान करनेके अनन्तर उस मरे हुए पक्षीके साथ-साथ अपने नगरमें चले आये । वहाँ नगरके बाहरही एक बागीचेमें उस पक्षीका चमन्दकी लकड़ियोंसे शय-संस्कार करा, राजाने उसे जलाँकलि दी और अपने घर आकर शोक मनाने लगे । यह देख, सब मन्त्रियों और सामन्तों आदिने उनसे पूछा,— “हे नाथ ! आपने इस पक्षीका मरण संस्कार किस लिये किया ? ” यह सुन, राजाने सारा हाल अपने आदमियों



हम ! यह तो उर नहीं बलिह गेने हए मज्जाके सुखने विमान पुता
 पिय है । ऐसे यह मैंने ही जरा होता, हा अब तक बनीय कर
 दुरा होता ।

(सं १५६)

राजाने अपने मनमें विचार किया,— “अबकी बार यदि वह हुए पक्षी फिर आया, तो मैं उसे मारकर टेर कर दूँगा । ” इसी विचारसे उन्होंने एक हाथसे चाबुक पकड़े हुए, दूसरे हाथसे फिर उस पात्रमें पानी भरा । यह देख, उस पक्षीने सोचा,— “यह राजा क्रोधमें आ गया है । इसलिये यदि मैं इस बार इसके हाथसे जल भीचे गिराऊँगा, तो यह ज़रूर मुझे मार डालेगा । और यदि मैं इस जलको नहीं गिरा देता, तो इस ज़हरीले पानीके पीनेसे राजा ज़रूरही मर जायेगा । मत-पय मैं भले ही मर जाऊँ, पर इस राजाको तो जिला देना अच्छा है । ” ऐसा विचार कर उसने फिर राजाके हाथका पात्र-पुट नीचे गिरा दिया । राजाने भी तत्कालही चाबुक मारकर उसकी जान ले ली । इसके बाद राजाने फिर हर्षित-चिखसे उस पात्रमें जल भरना शुरू किया । इसबार जल बड़ी देर-देर पर टपकने लगा । यह देख, विस्मित हो, राजाने उचक कर पेड़ पर खड़कर देखा, कि उस पेड़के लखोहरमें एक भजगर सोया हुआ है । यह देख, राजाने अपने मनमें विचार किया,— “भरे ! यह तो जल नहीं, बल्कि सोये हुए भजगरके मुँहसे निकलता हुआ विष है । इसे यदि मैंने पी लिया होता, तो अब तक कमीका मर चुका होता । ओह ! उस पक्षीने मुझे बार-बार मने किया, पर मैं मूर्ख उसका मतलब नहीं समझा । हा ! मेरीही मूर्खतासे यह बेचारा परोपकारी पक्षी मेरे ही हाथों मारा गया । ” राजा इसी प्रकार पश्चात्ताप कर रहे थे, कि इतनेमें उनके सिपाही आ पहुँचे और अपने स्वामीको देख, बड़े प्रसन्न हुए । इसके बाद राजा भोजन कर, जलेपान करनेके अनन्तर उस मरे हुए पक्षीके साथ-साथ अपने नगरमें धले आये । वहाँ नगरके बाहरही एक बागीचेमें उस पक्षीका चन्दनको लकड़ियोंसे शय-संस्कार करा, राजाने उसे जलाँजलि दी और धर धाकर शोक मनाने लगे । यह देख, सब मन्त्रियों आदिने उनसे पूछा,— “हे नाथ ! आपने इस पक्षीका मरण किस लिये किया ? ” यह सुन, राजाने सारा हाल अपने

जो इसे नहीं मारा, यह बहुत ही अच्छा काम किया," इसके बाद भगन्दिन होकर राजाने सारी समाके धामने ही कहा,—“इन चारों भाइयोंमें सब गुण भरे हुए हैं। मुझ निपुणको मेरे कुलदेवनाने मानों धार पुत्र ही दे दिये हैं। इस लिये मैं देवराजको गद्दीपर बैठाकर घटसराजको युवराज बनाये देना हूँ और आप वीजा लेने जाय हूँ।” यह सुन, राजाके परिवारवालोंने कहा,—“महाराज ! कुछ दिन और ठहर जाइये, फिर जैसी इच्छाहो, वैसा कीजियेगा।” राजाने कहा,—“मेरे पूर्वजोंने भी बाल पकनेके पहले ही मन मंगीकार कर तपस्या करते हुए सद्गति पायी है; परन्तु राज्यपुराको धारण करनेवाला कोई न होनेके कारण मैं अवतक संसारमें कैसा रह गया, इस लिये अब तो मैं अपना यह मनोरथ अवश्य ही पूरा करूँगा।” यह कह, राजाने ज्योतिषीके बतलाये हुए शुभ मुहूर्तमें देवराजको राज्यका भार सौंप दिया और घटसराजको युवराजकी पदवी प्रदान की।

इसके बाद एक दिन नगरके बाहर मन्दन नामक उद्यानमें भीक्षु नामके सूरि बहुतसे परिचार साथ लिये हुए आ पहुँचे। उसी समय उद्यानके रक्षकोंने राजाके पास आकर उन्हें गुरुके आश्रमका समाचार कह सुनाया। यह सुनते ही राजा बड़ी भक्तिके साथ वहाँ गये और गुरुको प्रणाम कर यथा स्थान बैठकर सख्त-वेश्म सुनने लगे। इसके बाद उन्होंने अक्सर पाकर दोनों हाथ जोड़े हुए पूछा,—“हे प्रभो ! पिशाचने जिस प्रकार मेरी मृत्यु होना बतलाया था, उस प्रकार मेरी मृत्यु क्यों नहीं हुई ? देवकी कही हुई बात क्यों झूठी हो गयी ?” यह सुन, सूरि महाराजने कहा,—“हे राजन् ! यह क्या सुनोः—

“वैश्य-वंशमें उत्पन्न गौरी नामकी ओ सुम्हारो सुन्दरी स्त्री थी, वह बुभाग्यवश किसी कर्मके दोषसे दूषित हो गयी और तुम्हें फूटी आँखों भी नहीं सुझाने लगी। उसे देखते ही तुम्हें कुड़न पैदा होती थी, इसीलिये वह उदास होकर पीहर चली गयी और वहीं रहने लगी। वहाँ अज्ञान-तपसे अपने शरीरको घुला-घुलाकर वह मर गयी और

तो जाने पर सोती है, उनके सोकर उठनेके पहले ही जग जाती है, वह श्मिणी नहीं, यह-मदमी है ।

इसीलिये सेठने विचार किया, कि इन चारों बहुओंमें कौन घर का भार सम्हालने योग्य है, इसकी परीक्षा लूँ, तो ठीक समयमें आ जाये इसके बाद सवेरा होते ही सेठने रसोयोंकी बुझा दिया; कि आज सबसे यहि पा रसोई बनाओ । यह कह, उसने अपने सभी स्वजनों और पुरजनोंको ग्योता देकर अपने घर जमाया । इसके बाद उसने सब स्वजनादिकको घल्ल, ताम्बूल आदिसे सम्मानित कर उन लोगोंके सामने ही पाँच शालि-कण लेकर बड़ी बहूको देते हुए कहा,—“बेटी ! मैं तुम्हें पाँच शालि-कण देता हूँ । अब मैं माँगू, तब फिर मुझे दे देना ।” यह कह उसने बहूको बिदा कर दिया । उसने बाहर आतेही विचार किया,—“मेरे ससुरका सिर बुढ़ापेके कारण फिर गया मालूम पड़ता है, तभी तो इसने इतने आदमियोंको इकट्ठा कर मुझे पाँच चावलके दाने दिये । अब मैं इन्हें कहाँ छिपा रखूँ ? अच्छा, जब वह भगिना, तब मैं दूसरे पाँच चावल लेकर दे दूँगी ।” यही सोचकर उसने वे पाँचों दाने फेंक दिये । इसके बाद सेठने दूसरी बहूको भी इसी तरह बुलवा कर पाँच दाने शालि-धानके दिये । उसने भी अपने मनमें विचार किया,—“अब मैं इन चावलोंको कहाँ उठा रखूँ । जब वे माँगेंगे, तब दूसरे चावलके दाने दे दूँगी । पर इन्हें भी क्यों फेंकूँ ?” यह सोचकर उसने मुँह खोल कर उन दानोंको चबा लिया । इसी प्रकार सेठने तीसरी और चौथी बहूको भी चावलके दाने दिये । तीसरीने तो उन्हें एक अच्छे से घल्लमें बाँधकर जवाहरातके हल्वेमें रख दिया और चौथीने अपने माथोंको बुलाकर दे दिया । उसके माथोंने उसके कहे अनुसार उन दानोंको परसातके दिनोंमें खो दिया । कमसे उन दानोंके बहुतसे दाने हुए । दूसरे वर्ष वे फिर बोये गये । उसके पहले से भी अधिक चावल उपजे । इसी तरह क्रमसे पाँच वर्षतक बोये जानेपर उन्हीं पाँच कणोंके दूजारों

पहली षट्की तरह घतको त्याग दिया और इस लोक तथा परलोकमें बड़े-बड़े दुःख उठाये । कितनोंहीने जीविकाके लिये घेरा बना लिया । इन्हें दूसरी षट्की तरह समझना । कितनोंने स्वयं तो घतका पालन किया, पर औरोंको उपदेश देकर उसी तरह धर्ममें प्रवृत्त नहीं किया । इन्हें तीसरी षट्के समान जानना । और कितनेहीघत ग्रहण कर उनका स्वयं पालन करते हैं और मध्य धनेक मध्य जीवोंको प्रतिबोध देकर उनसे भी घत-पालन कराते हैं । इन्हें चौथी षट्के समान जानना । इस लिये हे राजर्षि ! तुम भी चौथी षट्की तरह घतका विस्तार करनेवाले बनो । यह कथानक श्रीमहावीर स्वामीके शासनमें हुआ है ।”

इस प्रकार कथा सुनाकर श्रीदत्त शुक्ले राजर्षिको संयममें विशेष निश्चल कर दिया । इसके बाद राजर्षि संयमका पालन करते हुए क्रमशः सद्गुणिको प्राप्त हुए ।

श्रीक्षेमद्वार जितेन्द्रके कहे हुए बहिर्सादिक धर्मको परीक्षा करके ग्रहण करना चाहिये । इनमें धर्मका पहला लक्षण है प्राणि-दया, दूसरा सत्यवादिता, तीसरा भद्रसत्ता त्याग, चौथा अन्नचर्यका पालन और पाँचवाँ भी प्रकारके परिग्रहका परित्याग । इन पाँचों धर्म-लक्षणोंको जानकर हे मध्यजीवो ! तुम निम्नर धर्म-कर्ममें अपनी चेष्टा रखो ।” श्रीक्षेमद्वार जितेन्द्रकी यह वेशना सुनकर बहुतसे मध्य प्राणियोंने प्रतिबोध प्राप्त किया । श्रीजितेन्द्रने पहले गणधरों तथा अनुविध संघकी स्थापना की और इनके बाद यज्ञायुध राजाने ध्रावक-धर्म बढ़ाकर, प्रभुको प्रणाम कर, अपनी पुरीकी राहली ।

एक दिन यज्ञायुध राजाके पुण्यके प्रभावसे हजार यज्ञोंसे अपि-ष्टित मति निर्मल चक्ररत्न उनकी मल्लराज्यामें उदरभ हुआ । राजाने यज्ञाहिका-महोत्सव करके उनकी पूजा और आराधना की । तब यह मल्लराज्यासे निकल कर आश्वमानमें उड़ चला । उसके पंछे-पंछे यज्ञायुध भी अपनी सेना सहित चल पड़े और उन्होंने क्रमशः मङ्गलायती-विग्रहदे उः अण्ड जीन न्ये । इनके बाद वे अपनी नगरीमें आकर

आश्चर्यमें आकर बड़ी दिलचस्पीके साथ सुनने लगे । चक्रवर्त्तनि कहा,—

“इसी जम्बूद्वीपके पेरावत-क्षेत्रमें वन्यपुर नामका एक नगर है । उसमें वन्यवृत्त नामके राजा राज्य करते थे । उनकी रानीका नाम मुलक्षणा था, जिसके गर्भसे उत्पन्न नलिनीकेतु नामका एक पुत्र भी था । उसी नगरमें धर्म-मित्र नामका एक सार्थधाह रहता था । उसकी स्त्रीका नाम धीवत्ता था और उसीके गर्भसे उत्पन्न दत्त नामका एक पुत्र भी उसके था । उस लड़केकी स्त्री प्रमद्वरा बड़ी ही मनोहर कावती थी । एक दिन वसन्त-ऋतुमें यही दत्त नामका धनिक-पुत्र अपनी भार्याके साथ क्रीड़ा करनेके इरादेसे बाग़ीचेमें गया । वही राजकुमार नलिनीकेतु भी क्रीड़ा करनेके लिये आ पहुँचे । राजकुमार उस परमा सुन्दरी प्रमद्वराको देखतेही कामातुर हो गये । फिर क्या था ? ऐश्वर्य और यौवनके मदसे घूर राजकुमारने अपने कुल और शीलमें कलङ्क लगानेका कुछ भी विचार न कर, उस स्त्रीका हरण किया और उसके साथ मनमानी मीज उड़ाने लगे । एक दिन दत्त अपनी स्त्रीके चिरहसे व्याकुल होकर उद्यानमें आया । वहाँ उसने सुमन नामके एक साधुको देखा । उसको तत्काल केवल-ज्ञान उत्पन्न हुआ था, इसलिये बहुतसे देव, दानव और मनुष्य उनकी धम्ना करनेके निमित्त भाये हुए थे । केवलीको देखकर दत्तने भी शुद्ध भावसे उनकी धम्ना की । उस समय केवलीने दत्तको धर्मदेशना सुनायी । सुनकर उसे प्रतिबोध हुआ और उसने जैनधर्म स्वीकार कर लिया । इसके बाद वह दान-पुण्य भाँटि करता हुआ, भाग्य पूरी होनेपर, मृत्युको प्राप्त हुआ और सुकच्छ-विजय के पैतादर्य-पर्वत पर महेंद्रविक्रम नामक विद्याधरके राजाका पुत्र भजितसेन हुआ । उसकी स्त्रीका नाम कमला था । इधर राजकुमार नलिनीकेतु पिताका राज्य पाकर प्रमद्वराके साथ मृदुधर्मका पालन करने लगे । एक दिन अपने महलकी आतशी में जल पर बैठे हुए उन्होंने आसमानको वैभवं रंगे बादलोंसे घिरता हुआ पाया । थोड़ीही देर

बाहू जोरकर हवा बनती और वहाँ बाहूँ दूकड़े-दूकड़े होकर उड़ गये ।
 यह देख, उनके लम्बाय मेंगम्य उत्पन्न हो गये और उन्होंने विचार
 किया,— “हम लम्बायें धन, जीवन आदि सभी वस्तुओं, इन्हीं बाहूँकी
 ही मार होकर हैं । मैंने आत्ममार्गसे पराधीन होनेका इरादा कर, इस भय
 के कारण के लिये, बहुत बड़ा पाप कियाया । अनात्म भय ही अनात्म अन्धी,
 कलहकण और मय नियमकारी जगत्में पापकारी मंगलकी ओंकर बनती है।
 हमको निर्मल कर दे, गो दीक हो । ” इस प्रकार विचार कर बाहूँ
 शान्तिमूर्तियोंमें अपने पुत्रोंके हाथ पर बैठकर बाहूँमेंसे बाहूँका त्याग कर
 दिया और शेषद्वय जितेन्द्रियके पास जाकर अन्तर्गत अन्तर्गत करली ।
 इसके बाद निरतिशयके साथ श्रवण प्राप्त करने हुए, वेदल-ज्ञान
 प्राप्त कर, स्वयंसे काम प्राप्तका प्रयास कर, उन्होंने मोक्षार्थ प्राप्त किया ।
 यही श्राद्धार्थ सुयता नामकी मुक्तमूर्तियोंके पास जा, बाहूँका त्याग कर,
 आयु पूर्ण होने पर मर कर मुम्हारी पुत्री शान्तिमूर्ती हुई है । इसके पूर्ण
 जन्मके पनि इस विद्याधरमें इसे विद्याकी साधना करते देता और
 पिछला प्रीतिके कारण इसे दर दिया । इसलिये हे पवनयोग ! तुम इस
 पर नाराज मत हो और हे शान्तिमूर्ती ! तूभी अपना मोक्ष त्याग कर । ”

पञ्चायुध चमयसीकी यह बात सुन, दोनों विद्याधर और बालिका
 शान्तिमूर्तीने परस्पर एक दूसरेसे अगम्य समा कराया और चित्तको
 शान्त किया । तदनन्तर चमयसीने सनासदोंकी ओर देखकर कहा,—
 “मैंने इन तीनोंके पूर्ण भयकी बात कही, भय इनके भायी स्वरूपकी बात
 कहता हूँ, सुनो । इन दोनों विद्याधरोंके साथ यह शान्तिमूर्ती दीक्षा-
 ग्रहण करेगी और इत्यादिले तप कर अन्तर्गत अन्तर्गत द्वारा मृत्युको प्राप्त
 होकर दोसे अधिक सागरोपमकी आयुवला और धृन्म दाहन इशानेन्द्र
 होगी । पवनयोग और अजितसेन साधु इसी भयमें घाती-कर्मोंका नाश कर,
 उत्तम वेदल-ज्ञानको प्राप्त करेंगे । उस समय ईशानेन्द्र यहाँ आकर उनके
 वेदल-ज्ञानकी महिमा बखानेंगे और अपने शरीरकी पूजाकर, अपने
 स्थानको खले जायेंगे । ये ईशानेन्द्र भी आयुष्य क्षय होनेपर यहाँसे

ज्युत होकर मनुष्य-मय प्राप्त करेंगे और दीक्षा लेकर, कर्मका रूप कर, मोक्ष-सुख लाभ करेंगे । ”

यह भाषी वृत्तान्त श्रवणकर सब समासदोंको बड़ा विस्मय हुआ। ये बोले,— “अहा ! हमारे स्वामीका ज्ञान तो पदार्थोंके भूत, भविष्यत् और वर्तमान रूप यतलानेके लिये दीपकके समान है । ” इसके बाद शान्तिमती, पद्मनगेन और अजितसेन, तीनोंही चक्रवर्तीको प्रणाम कर, अपने अपने स्थानको चले गये ।

सहस्रायुध कुमारको जब सेनाके गर्भसे कनक शलि नामका एक पुत्र उत्पन्न हुआ। यह जब युवावस्थाको प्राप्त हुआ, तब राजाने उसकी शादी कनकमाला और यसन्तसेना नामकी दो अच्छे कुलकी राजकुमारियोंके साथ कर दी। एक बार कुमार कोड़ा करनेके लिये एक घने जंगलमें चला गया। वहाँ कुमारने एक मनुष्यको कुछ ऊँचे उड़कर नीचेकी ओर गिरते देख कर उसके पास आकर इसका कारण पूछा। उसने कहा, “मैं वैताल्य-पर्यन्त पर रहनेवाला विद्याधर हूँ। मैं चाहे जहाँ भाऊँ—जाऊँ, पर मेरे गिरने-पड़नेका डर नहीं रहता। आज यहाँ आकर मैं बड़ी देर तक दका रह गया। मैं पीछे सोच रहा था, कि इतनेमें मैं आकाश-नामिनी विद्याका एक पद भूल गया, इसीलिये ऊपर नहीं उड़ पाता और इस प्रकार बार-बार चेष्टा कर रहा हूँ।” यह सुन, कुमारने उससे कहा, — “हे विद्याधर ! तुम मुझे यह विद्या बतला दो ।” विद्याधरने उसे भला भावमी जानकर उसको यह विद्या बतला दी। उसी समय कुमारने पदानुसारी लब्धिके-प्रमाणसे उसका भूला हुआ पद उसे बतला दिया। इससे सन्तुष्ट होकर आकाशचारीने अपनी सारी विद्या कुमारको बतला दी। कुमारने उसके कहे अनुसार विधि-पूर्वक उस विद्याकी साधना की। इसके बाद वह स्वेच्छ (आकाशचारी) अपने स्थानको चला गया। एक दिन कुमार, इसी विद्याके प्रमायसे, अपनी दोनों प्रियाओंके साथ, स्वेच्छा पूर्वक विहार करने हुए, दिमाद्रि-पर्यन्त पर आ पहुँचा। वहाँ विपुलमति नामक विद्याधर मुनिको देख,

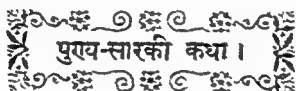
उनके चरणों में प्रणाम कर, कुमार अपनी प्रियतमानों के साथ उचित स्थान पर बैठ रहा । इसके बाद उसने मुनि से इस प्रकार की धर्म-देशना सुनी:—

“कुपं रूपं कलाम्बात्, विद्यातस्नीर्वीरांगना ।

देवदं सप्रभुत्वं च, धर्मेदेव प्रजापते ॥ १ ॥”

अर्थात्— “कुल, रूप, कलाओं का धन्यास, विद्या, लक्ष्मी, सुन्दरी नारी, देवदं और प्रभुता—ये सब वस्तुएँ धर्म से ही प्राप्त होती हैं ।”

“जिस मनुष्य ने पूर्व जन्म में दानादि चार प्रकार के धर्मों की आराधना की है, वही पुण्यसार की भाँति समस्त मनोवाँछित सुखों को प्राप्त करता है । जैसे पुण्यसार के सारे मनोरथ पूरे हुए, वैसे ही औरों के भी मनोरथ पूरे होंगे ।” यह सुन दोनों प्रियतमानों के साथ कनकशक्ति कुमार ने पूछा,— “हे प्रभो ! वह पुण्यसार कौन था ? ” यह सुन, मुनि ने उसे प्रबोध देने के निमित्त इस प्रकार कथा कह सुनायी:—



इसी भरत-क्षेत्र में बड़े-बड़े नाक्षर्य-जनक पद्यों से भरा हुआ गोपालन नाम का एक नगर है । वहाँ धर्म का अर्थी, राजा से सम्मानित और महाजनो में मुख्य, पुण्डर नाम का एक सेठ रहता था । उसकी स्त्री पुण्यधरी माता सब भ्रेष्टगुणों का नाश करती थी । वह पतिकी प्यारी, सौभाग्यवती, भाग्यशालिनी और सुन्दर रूपवती थी । परन्तु उसने एक ही दोष था और वह यह, कि उसकी गोद भरी पूरी नहीं थी । सेठ को पुत्र की बड़ी लालसा थी और उसके आत्मोद्य-स्वजन उससे दूसरा विवाह कर लेने की बार-बार कहा करते थे, तो भी उसने पुण्यधरी पर गाढ़ा स्नेह होने के कारण दूसरी स्त्री से विवाह नहीं

किया । एक समयकी बात है, कि उस सेठने पुत्रकी इच्छासे अपनी स्त्रीके साथ ही कुलदेवीकी पूजा की और उनसे इस प्रकार विनव पूर्वक निवेदन किया,—“हे कुलदेवी ! मेरे पूर्वजोंने और मैंने भी बराबर इस लोकके सुखके निमित्त तुम्हारी आराधना की है । अब यदि मैं निपुत्र ही मर जाऊँगा, तो फिर तुम्हारी पूजा कौन करेगा ? अतएव मुम कृपाकर अपने अवधि-ज्ञानसे घतलाओ, कि मेरे सन्तान होगी या नहीं !” यह सुन, कुलदेवीने उपयोग देकर कहा,—“सेठजी ! पुण्य-कार्य करते हुए कुछ दिन भीत जाने पर तुम्हारे अपश्य पुत्र होगा ।” कुलदेवीकी यह बात सुन, हर्षित होते हुए सेठने कुल-पर्यायसे चले आते हुए धर्मोंका विशेष रूपसे पालन करना शुरु किया ।

कुछ दिन बाद एक बड़ा ही पुण्यात्मा जीव पुण्यभूमीकी कीलमें आया । उस समय उसने स्वप्नमें चन्द्रमा देखा । सवेरे ही उसने अपने पतिको इस स्वप्नकी बात कह सुनायी । सेठने अपनी बुद्धिसे इस स्वप्नका विचार करके अपनी स्त्रीसे कहा,—“तुम्हें बड़ा ही उत्तम पुत्र प्राप्त होगा ।” यह सुन, यह बड़ी प्रसन्न हुई । इसके बाद कमसे समय पूरा होने पर शुभ दिन—मक्षत्रकी उसके गर्भसे एक उत्तम लक्षणोंसे युक्त पुत्र उत्पन्न हुआ । उसकी पैदायशकी गुराँमें पिताने यड़ी धूमधाम की और दीन-हीन जनकों तथा याचकोंको सोना, चाँदी और वस्त्रादिका दान किया । इसके बाद पुण्यसे प्राप्त होनेके कारण सेठने अपने समस्त स्वजनोंके सम्मुख, उस पुत्रका नाम पुण्य-सार रखा । यह पुत्र क्रमशः धार्मिकोंसे पाला-पोसा जाता हुआ पाँच वर्षका हुआ । तब पिताने बड़ी धूमधामका उत्सव कर उसे एक बड़े भच्छं पण्डितके पास कलाम्यास करनेके लिये पाठशालामें भेज दिया ।

उसी नगरमें रत्नसार नामका एक सेठ रहता था, जिसके एक बड़ी ही सुन्दरी कन्या थी । उसका नाम रत्नसुन्दरी था । यह भी उन्हीं पण्डितजीमें पुण्यसारके साथ-ही-साथ कलाम्यास करती थी । कभी-कभी स्त्री-स्वभाववश संचलनाके कारण रत्नसुन्दरी पुण्यसारके

साथ विवाद कर बैठती थी। एक दिन इसी तरह का विवाद होते-होते पुण्य-
सारने क्रोधमें आकर उससे कहा,—“अरी बालिके ! यदि तू अपने को
बड़ी पण्डिता और कलावती मानती हो, तो भी तुझे मेरे साथ विवाद
नहीं करना चाहिये; क्योंकि तू किसी पुरुषके घर दासी होकर ही
जानेवाली है ।” इसपर उसने कहा,—“यदि मैं दासी भी हूँगी, तो
किसी बड़े भारी भाग्यशाली पुरुषकी हूँगी, तुम्हारी तो न हूँगी ।” यह
सुन, पुण्यसारने कहा,—“अरी क्या अभिमान करनेवाली ! यदि मैंने
तुझे ज़बरदस्ती अपनी दस्ती नहीं बनाया, तो मैं पुरुष ही नहीं ।” यह सुन,
वह फिर बोली,—“रे मूर्ख ! ज़बरदस्तीसे भी कहीं किसीका स्नेह
प्राप्त होना है ।” फिर दूसरीको इस तरह स्नेह कैसे हो सकता है ।”
इस प्रकार परस्पर विवाद कर पुण्यसार पाश्चात्यासे करने घर चला
जाया और उद्दाम मुँह बनाये, क्रोध सूषक शब्दापर आकर सो रहा ।
इतनेमें पुरन्दर सेठ, भोजनका समय हो आनेके कारण, खानेके लिये
घर आया । पुत्रकी हालत सुनकर वह उसके पास आया और उससे
पूछा,—“बेटा ! आज मेरा बेहरा ऐसा उद्दाम क्यों हो रहा है ? इस
भसमयमें ही तू क्यों सोया पड़ा है ? इसका कारण बता ।” जब
सेठने इस प्रकार आग्रहसे पूछा, तब उसने कहा,—“बिनाश्री ! यदि
आप मेरा विवाह सेठ राजसारकी पुत्री राजमुन्दरीके साथ कर दें, तब
तो मुझे खैर आयेगा, नहीं तो मुझे किसी तरह शान्ति नहीं मिलने
की ।” यह सुन, सेठने कहा,—“बेटा ! अभी तेरी बच्ची बरत है ।
अभी दूधरागमें रह कर विद्याका अध्ययन कर, वैसे जब ब्याहकर
समय आयेगा, तब ब्याह कर दिया आयेगा ।” यह सुन, पुत्रने फिर
कहा,—“बिनाश्री ! यदि आज उसके जिहसे मेरे लिये उसकी मंगली
जाती रहे, तब तो मैं भोजन बर्बाद, नगी की हरगिज़ नहीं खाऊँगा ।”
यह सुन, सेठने उसकी बात मान ली और उसे समझा-पूछा कर मीठक
बताया । इसके बाद वह स्पर्द करके स्वयंकोई मध्य रात्रिसार सेठके
घर गया । उसे माने देख, राजसार सेठ के लड़का हुआ, उसे देखते

लिये भासने दिया और स्वागत-ग्रन्थके साथ बड़ी नम्रतासे बोला,—
 “भला यह तो कहिये, आज आपने किस लिये मेरे घर आनेकी कृपा की ?” पुरन्दर सेठने कहा,—“सेठजी ! मैं आज अपने पुत्रके लिये आपकी पुत्री रत्नसुन्दरीकी भगनी करने आया हूँ ।” यह सुन, रत्नसारने कहा,—“यह बात तो मेरे मनकी सी ही है । यह कन्या आपकी ही पुत्रको सौपूँगा, इसमें कहनेकी क्या बात है ? आपका इशारा ही काफी है । कन्या तो बाहर किसी-न-किसीको देनी है फिर जब स्वयं ही आप उसकी भगनीके लिये आये हैं, तब भी क्या चाहिये ? मैं आपकी बात मानता हूँ ।” जब रत्नसार सेठने इतना कह डाला, तब उसके पासही बैठी हुई वह बालिका घटपट बोल उठी,—
 “पिताजी ! मैं कदापि पुण्यसारकी पत्नी न बनूँगी ।” उसकी यह बात सुन, पुरन्दर सेठने अपने मनमें विचार किया,—“ओह ! मेरे पुत्रने क्या ही इस कन्याके साथ ब्याह करनेकी इच्छा की । बचपनमें ही जिसका धाणी इतनी कठोर है, वह जब जवानीकी मस्तीमें आयेगी, तब भला पतिको कौनका सुख देगी ?” वह ऐसा सोच हो रहा था, कि रत्नसार सेठने कहा,—“मेरी लड़की अभी निरी नादान बच्ची है । क्या कहना चाहिये और क्या नहीं कहना चाहिये, इसकी समझ इसको नहीं है । इसलिये आप इसके कहेका कुछ खयाल मनमें न आने दें । सेठजी ! मैं इसे समझा-बुझा कर आपके ही पुत्रके साथ विवाह करनेको राजी कर लूँगा ।” यह सुन, पुरन्दर सेठ अपने स्वजनोंके साथ वहाँसे उठ कर अपने घर आया और पुत्रसे सारा हाल सुनाकर कहा,—“बेटा ! वह लड़की तेरे लायक नहीं है, क्योंकि—

‘कुंदां विगतखेदां, समार्गलकुमोन्मिताम् ।

अतिप्रवण्णां दुस्तुह्णां, गृहिणीं परिवर्जयेत् ॥ १ ॥’

अर्थात्—“कुरूप, खेद-रहिता, लज्जा, शील और कुलसे हीना अतिप्रवण्डा और दुर्भाषिणी मायाका सदा त्याग करना चाहिये ।”

“येसा शास्त्रमें कहा हुआ है ।” यह सुन, पुण्यसारने कहा,—

“पिताजी ! आप जो कहते हैं, वह ठीक है; पर यदि मैं उसके साथ व्याह करूँगा, तभी तो मेरी प्रतिष्ठा पूरी होगी, नहीं तो झूठी पड़ जायेगी।” पिताजी यह उत्तर देकर पुण्यसार उत्तकी प्राप्ति के लिये दूसरा उपाय सोचने लगा ।

एक दिन पिताजी दातले उसे मालूम हुआ, कि उत्तकी कुलदेवी बड़ी जागती देवी हैं । इसलिये उसने एक शुभ दिवसको पुण्य, नैवेद्य, धूप और विलेन आदि उत्तमोत्तम सामग्रियोंसे उनका पूजाकर, उसने प्रार्थना की,—“हे कुलदेवी ! जैसे तुमने सन्तुष्ट होकर मेरे पिताको मुझे पुत्र-रूपमें दान किया है, वैसेही मेरे स्त्री-सम्बन्धो मनोरथको भी पूरा कर दो । हे देवी ! यदि तुमने मेरा मनोरथ ही पूर्ण नहीं किया, तो फिर जन्म काहेको दिया ? हे देवी ! अब जबतक तुम मेरा मनोरथ नहीं पूरा करोगी, तबतक मैं बिना खाने-पिये यहाँ खड़ा रहूँगा।” यह कह, वह देवीके सामने घरना देकर बैठ रहा । एकही दिनके उपवाससे देवी उत्तर प्रसन्न हो गयी और बोली,—“बेटा ! जामो—घाँरे-घाँरे सबकुछ तुम्हारे मनके लुभाजिक ही हो जायेगा । विन्ता न करो।” यह सुन, पुण्यसारको बड़ा आनन्द हुआ और उसने पारप्पा कर, पिताकी आज्ञा दे, पात्रमलको शीघ्र मिठा पूरी करनी शुरू की । कन्या कलाम्यास सन्पूर्ण होनेपर वह जब पुत्रावस्थाको प्राप्त हुआ, तब उसे डुरका चसका ला गया । स्नेहके कारण उत्तके माता-पिताने उसे कितनीही बार रोका-टोका, तभी वह डुरकी चट नहीं छोड़ सका । एक दिन पुण्य-सार लाख स्पर्श डुरमें हार गया । उसने घर भाकर लाख रुपये कर्मका एक गहना, जो राजाका था और सेठके घर रखा हुआ था, लेकर अँठे हुए हुआड़ियोंको दे दिया । कुछ दिनों बाद जब राजने बनना वह गहना सेठसे निरत माना, तब सेठने उसे उत्त स्थानमें नहीं पाया, जहाँ उसने रख छोड़ा था । तब उसने अपने मनने सोचा,—“डुर ही पुण्यसार वह गहना ले गया है । गुन स्थानमें रसी हुई चोंड़-का दूसरेको का पड़ा है।” इस तरह सोच कर वह सन्नग गया । कि

अब तो यह गहना हाथसे गया ! यह देखकर उसके जीमें यह बात भायी, कि—

“यद्यपि निश्चिते सोके-वदनप्र क्रियते महान् ।

तेऽपि सन्तापना एवं, दुष्पुत्रा हा भवन्त्यहो ॥ १ ॥”

अर्थात्—“ओह ! जिनके न होनेसे लोग सदा त्रिप्त रहा करते हैं और जिनकी प्राप्तिके लिये बड़े-बड़े यत्न किया करते हैं, वे पुत्र भी कूपून हो कर इस प्रकार दुःख देते हैं ।”

जिह सेडने सोचा,—“इस दुष्टने राजाका गहना तुम्हें गँवा दिया, इसलिये येमे पुत्रको तो घरसे निकाल देनाही ठीक है ; क्योंकि यह पुत्रके काममें मेरा दुश्मन् ठिका है ।” ऐसा विचार कर यह दूकानगर चला गया । अब पुत्र वहाँ आया, तब उसने उससे गहनेकी बात पूछ-ताँछ की । इसपर बेटेने बापसे सच्चा-सच्चा हाल बयान कर दिया । यह सुन, सेडने क्रोधमें आकर कहा,—“रे दुष्ट ! जा, तू यह गहना ले जा । दिना लाये मेरे घर न आना ।” यह कह, उसने उसको मूँह फटकारा और गलेमें हाथ डाल भुँकायाते हुए, उसे अपने घरसे निकाल दिया ।

उस समय मौन हो गयी थी ; इसलिये यह कहीं और तो नहीं जा सकना था, इसीमे गाँवके बाहर आ, एक बड़के पेड़के लम्बोडगमें घुस गया । सेड जब घर आया, तब उसकी स्त्रीने पूछा,—“आज पुण्य-सार अमीनक घर क्यों नहीं आया ?” यह सुन, पुनर्से सेडने कहा,—“यह कूपून राजाका गहना तुम्हें हार भाया, इसी लिये मैंने उसे सीन देनके लिये क्रोधमें आकर घरसे निकाल दिया है । इसीमे यह घर नहीं आया है ।” यह सुन, सेडार्जने कहा,—“अब तुमने इसकी राजकी पुत्र-को घरसे बाहर निकाल दिया, तब कैसे मैं पाम अपना मुँह दिखाने आये हो ? ब्यामी ! इस बीघेरी राजमें उस बालकको घरसे निकालने तुम्हें लज्जा नहीं आयी ? इसलिये जामो, अब पुत्रकी लेकर ही मेरे घरमें आना ।” सेडार्जकी यह फटकार सुन, बेटीका पाद कर, सेड बहुत

हो दुःखी हुआ और सारे शहरमें उसकी खोज कराने लगा । इधर सेठके चले जानेपर सेठानीने यह देखकर, कि घरमें कोई मर्द-मानस नहीं है, अपने मनमें विचार किया,—“ओह, मैंने क्रोधमें आकर पतिको घरसे दुतकार दिया, यह अच्छा नहीं किया । पहले तो सेठजीने ही मूर्खता की—पोछे में भी मूर्खता कर बेठी !” इस प्रकार सोचती हुई सेठानी रोते-रोते पति-पुत्रको राह देखती हुई, अपने घरके दरवाज़ेपर बैठ रही ।

इधर रातके समय बट-बृहत्के खजोहलमें बैठे हुए पुण्यसारने दो देवियोंको, जिनके शरीरको कान्तिसे चारों ओर उज्ज्वल फैला हुआ था, इस प्रकार बातचीत करते सुना । पहलीने कहा,—“बलो बदन ! इस समय मनमाने ढंगसे पृथ्वीकी सैर की जाये । रातका समय है । यह अपने लिये और भी अच्छा है ।” इसपर दूसरी बोली,—“सखी ! व्यर्थ ही इधरसे उधर चकर लगाकर आत्माको कष्ट किस लिये देना ? इस लिये अगर कहीं कोई कौतुक हो रहा हो, तो उसे चलकर देखना चाहिये ।” उसके फिर पहलीने कहा,—“अगर कौतुक देखना हो, तो घनभी नामक नगरमें चलो । वहाँ धन नामका सेठ रहता है । उसकी स्त्रीका नाम धनयती है, जिसके गर्मसे उसे सात लड़कियाँ पैदा हुई हैं । उनके नाम क्रमशः इस प्रकार हैं :—“पहलीका नाम धर्मसुन्दरी, दूसरीका धनसुन्दरी, तीसरीका कामसुन्दरी, चौथीका मुक्तिसुन्दरी, पाँचवींका भाग्यसुन्दरी, छठीका सौभाग्यसुन्दरी और सातवींका गुणसुन्दरी हैं । इन कन्याओंके लिये अच्छे घर मिलनेके लिये उस घना सेठने लड़ू, वरी-रह प्रसाद चढ़ाकर लम्बोदर-देवकी पूजा की । देवताने सन्तुष्ट होकर उसे प्रत्यक्ष दर्शन देकर कहा,—“सेठजी ! आजके सातवें दिन रातके समय बड़ा ही शुभ लग्न है । उस समय तुम विवाहको कुल सामग्रियाँ तैयार रखना । उस दिन उस समय दो सुन्दर बिरवाली स्त्रियोंके पोछे-पोछे जो कोई पुरुष आवेगा, वही तुम्हारी कन्याओंका पति होगा ।” यह कह, लम्बोदरदेव सन्तर्जान हो गये । आज ही वह सातवीं रात

है । इसलिये चलो, यहीका तमाशा देखा जाये और अपने निवास-रूप इस वृक्षको भी साथ ले चलो ।”

देवियोंकी यह बात सुन, वृक्षके कोटरमें बैठे हुए पुण्यसारने सोचा,—“चलो, इसी सिलसिलेमें मैं भी यह तमाशा देख लूँगा ।” वह यह सोचही रहा था, कि उन देवियोंने हुंकार कर, झटपट उस वृक्षको उखाड़ डाला और क्षणभरमें उसे लिये हुई पलमीपुरके वागमें उतर पड़ी । इसके बाद दोनों देवियाँ, साधारण ओकावेश बना, गाँवमें घुस पड़ीं । वृक्षके कोटरसे निकलकर पुण्यसार भी उनके पीछे-पीछे चला । इधर लम्बोदरके मन्दिरके द्वारपर विधाह-मण्डप तैयार कर, उसके अन्दर वेदिका बनवाये और सब भारतीय-स्वजनोंको इकट्ठा किये हुए यह सेठ अपनी सातों कन्या-भोंके साथ बैठा हुआ था । इनमेंमें वे देवियाँ उस सेठके घर रसोई जीमने आयीं । सेठने उनके पीछे-पीछे पुण्यसारकी जाते देखा । देखते ही उसका हाथ पकड़, उसे श्रेष्ठ भासन पर बैठाते हुए सेठने कहा,—“हे मद्र ! लम्बोदरने तुम्हें आज यहाँ मेरा जमाई होनेके लिये भेजा है, इसलिये तुम मेरी इन सातों कन्याभोंका पाणि-ग्रहण करो ।” यह कह, सेठने उसे घरके कपड़े पहनाये और आलस रूपसे मूल्यके गहनोंसे भलसूजन कर दिया । इसके बाद घण्ट-मङ्गलके साथ भस्त्रिको साक्षी बैकर शुभ-मुहूर्तमें पुरन्दरपुत्र पुण्यसारने उन सातों कन्याभोंका पाणिग्रहण किया । उक्त समय उसने अपने मनमें विचार किया,—“ओह ! दिनाने जो मुझे घरसे निकाल बाहर कर दिया, वह बहुत ही अच्छा किया, नहीं तो मेरे पुण्यका प्रभाव कैसे प्रकट होता !” इसके बाद विधाहकी सब रस्में पूरी होजाने पर सेठ, बड़ी धूमधामके साथ अपनी कन्याभोंके साथ साथ पुण्यसारको भी अपने घर ले आया और अपने मकान की सबसे ऊपर-वाली मंजिलपर उनका डेरा डाला ।

उन सातों कन्याभोंने पुण्य-भारको पलङ्ग पर बिछा, भाग भीचे रहे हुए आसनोंपर बैठकर पूछा,—“हेनाथ ! आपने कितना कहाम्यास

किया है ?" उसने कहा,—“मुग्धाओ ! मुझे कलामोंसे प्रेम नहीं ; क्योंकि—

‘अत्यन्तविदुषां नैव, सुतं मूर्खानां न च

अजनीयाः कलाविद्भिः, सर्वथा मध्यमाः कलाः ॥ १ ॥

अर्थात्—“अत्यन्त विद्वान् ननुष्योंको सुत नहीं होता, वैसे ही अत्यन्त मूर्ख ननुष्य भी सुत नहीं पाते । इसलिये कलाओंके जानने-वलोंको चाहिये, कि तदा सब प्रकारसे मध्यम कलाओंका ही उपायन करें।

वे विचारी इस श्लोकका अर्थ नहीं समझ सकीं, इसलिये सोच-विचारमें पड़ गयीं। तब पुण्यसारने अपने मनमें सोचा,—“यदि वह बृहत् यहाँसे चला जायेगा, तो मैं यहीं पड़ा रह जाऊँगा; इसलिये अब यहाँ विलम्ब नहीं करना चाहिये।” इस विचारके उत्पन्न होतेही वह चारों तरफ़ देखने लगा। यह देख, सबसे छोटी गुण सुन्दरीने पूछा,—“हे नाथ ! क्या आप शौचको आया चाहते हैं ?” उसने उत्तर दिया,—“हाँ” यह सुन, गुण सुन्दरी उसका हाथ पकड़े हुई नीचे ले आयी। वहाँ पहुँच कर उसने अपना परिचय देनेके लिये खड़ियासे यह श्लोक धीकठ पर लिख दिया,—

“गोपालपुरादागां, बहुभ्यां देवयोगतः ।

परिदीप बभूः सप्त, पुनस्तत्र गतो स्म्यहम् ॥ १ ॥

अर्थात्—“मैं देवयोग ने गोपालपुर में बहुभोगनगरी में आ पहुँचा था और सात बहुओं से भ्याह कर फिर वहीं लौटा जा रहा हूँ ।

यह लिखकर वह उस घरके द्वारके पास पहुँचा, जिसमें उसकी सय त्रियाँ पढ़ते श्लोकका अर्थ समझमें नहीं आनेके कारण शमाँपी हुई सोचमें पड़ी बैठी हुई थीं। वहाँ आकर उसने गुणसुन्दरीसे कहा,—“तुम भीतर चली जाओ, जिसमें मैं निश्चिन्त होकर शौचसे निवृत्त हो जाऊँ ।” यह सुनकर वह भी स्वामीकी निश्चिन्ततासे शौचादिते निवृत्त हो जानेके लिये छोड़कर घरके अन्दर चली आयी। इतनेमें पुण्यसार उस घरसे बाहर हो, नगरके बाहर हो गया और पूर्वोत्पद्य-वृक्षके कोट-

दुई निकालूंगी । यदि पेसा न कर सकी, तो मागमें जल मर्दगी ।” अपनी बेटीकी यह बात सुन, पिताने उसको उसी समय मर्दका बाना पहना दिया । मर्दका जामा पहन, बहुतसे भादमियोंको अपने साथ लिये हुए, गुणसुन्दरी कुछ दिनोंमें गोपालकपुरमें आ पहुँची ।

उस नगरमें पहुँच कर उसने अपनेको गुणसुन्दर नामसे प्रसिद्ध किया । जहाँ-तहाँ लोग आपसमें कहने लगे, कि “गुणसुन्दर नामका एक सौदागरका लड़का यहाँ आया हुआ है ।” इसके बाद वह सेठकी लड़की उसी पुण्य घेरामें बैठके लिये तरह-तरहकी महुत वस्तुएँ लिये हुई राजसभामें आयी । राजाने भी उसकी बड़ी त्वातिर की । इसके बाद वह वहीं रह कर मालकी खरीद-बिक्री करने लगी ।

धीरे-धीरे उसने पुण्यसारसे भी मैत्री कर ली । इससे सारे नगरमें उसकी प्रसिद्धि हो गयी और लोग जहाँ-तहाँ कहने लगे,—“बलभीपुरमें जो गुणसुन्दर नामका नौअवान सौदागर यहाँ आया है, वह बड़ा ही विद्वान्, रूपवान् और गुणवान् है । उसके समान रूप और गुणमें मिलक्षण पुण्य दूसरा कोई नहीं दिखाई देता ।” उसकी येनी प्रशंसा सुनकर राजसार सेठकी पुत्री राजसुन्दरीने अपने पितासे कहा,—“पिता जी ! आप मेरा क्याह इसी गुणसुन्दर कुमारके साथ कर दीजिये ।” अपनी बेटीका यह अनिवाय मालूम होतेही सेठने गुणसुन्दरीके पास भाकर कहा,—“हे कुमार ! मेरी पुत्री राजसुन्दरी तुम्हें ही अपना स्वामी बनाया चाहती है ।” यह सुन, उसने अपने मनमें विचार किया,—“उसकी यह इच्छा बिलकुलव्यर्थ है, क्योंकि मला स्त्रीके साथ स्त्रीका वियाह कैसे हो सकता है ? इनकी गृहस्थी कैसे चलेगी ? इसलिये इसे कुछ जयाब देकर डाल दूँ, नहीं तो उस बेवारीकी भी मेरीही सौ दायल होगी ।” ऐसा विचार कर, उसने सेठसे कहा,—“येसी अवस्थामें कुलीन मनुष्योंकी अपने माता-पिताकी आज्ञा से लेनी परम आवश्यक है, और मैंने माँ-बाप यहाँसे बहुत दूरपर है, इसलिये आप तो अपनी पुत्रीका वियाह यहीं यहीं पासमें रहनेवाले किसी घरके साथ कर दीजिये ।

एक दिन उस नगरके उद्यानमें धर्मदेशना द्वारा मध्य प्राणियोंको प्रतिबोध देनेके निमित्त श्री ज्ञानसागर नामक गुरु भा पहुँचे । पुरन्दर सेठ उनकी घन्दना करनेके लिये यड़ी भक्तिके साथ अपने पुत्र पुण्यसार को संग लिये हुए उद्यानमें भा पहुँचा । और-और नगर-निवासी भी आये । देशनाके अन्तमें अथसर पाकर पुरन्दर सेठने गुरुको नमस्कार कर पूछा, —“हे प्रभो ! मेरे पुत्र पुण्यसारने पूर्य जन्ममें कौनसा पुण्य किया था !” यह सुन, सखीभरने अर्वाचि-ज्ञानके सहारे उसके पूर्व भवका वृत्तान्त जानकर कहा,—“सेठजी ! खूब मन लगाकर सुनो ।

“नीतिपुर नामक नगरमें एक कुलपुत्र रहने थे । उन्होंने वैराग्य के कारण सुधर्म नामक मुनिसे दीक्षा ग्रहण कर ली और गुरुकी ही हुई शिक्षाकी सदा स्मरण किया करते थे । एक बार गुरुने उनसे कहा,—“हे साधु ! तुम आवश्यक क्रियाका अण्डन क्यों करते हो ? व्रतमें अनिवार लानेसे बड़ा दोष होता है ।” यह सुन, भयभीत होकर वे मुनि कायगुणि पालन करनेमें असमर्थ होनेके कारण मुनियोंकी तरह घेया-घब करने लगे । क्रमशः समाधि-मरण प्राप्तकर, वे मुनि सौधर्म नामक देवलोकमें जाकर देवता हुए । आयुक्षय होनेपर वे ही वहाँसे च्युत होकर तुम्हारे पुत्रके रूपमें उत्पन्न हुए हैं । पाँच समितियों और दो गुप्तियोंकी—अर्थात् सातों प्रवचन-आताओंको इन्होंने भली भाँति आराधना की थी, इसी लिये इन्हें सात नारियाँ बनायास ही मिल गयीं और आठवीं कायगुणिकी आराधना इन्होंने बड़ी मुश्किलसे की थी, इसीलिये आठवीं स्त्री ज़रा तरदुदसे मिली । इसी लिये बुद्धि-मानोंको भी धर्मके काममें प्रमाद नहीं करना चाहिये ।” इस प्रकार अपने पूर्वभवका वृत्तान्त सुन, विधेकी पुण्यसारने आधक-धर्म बढ़ीकार कर लिया और पुरन्दर सेठने वैराग्यके मारे शरित्र ग्रहण कर लिया । इसके बाद क्रमशः पुण्यसारको कितने ही बालकचे हुए । वृद्धावस्थामें पुण्यसारने भी दीक्षा ले ली और मरनेपर सद्गतिकी प्राप्ति हुआ ।

इस प्रकार बुज्यसारकी कथा सुन, जनकशक्ति राजाने घंरायके मारे राजलक्ष्मीका त्याग कर दिया और चारित्र्य ग्रहण कर लिया । उनकी दोनों स्त्रियों में विनयप्रति नामक साध्वीसे संयम ले लिया और तपस्याकी साधनामें तत्पर हो गयीं । एक समयकी बात है, कि महा-मुनि जनकशक्ति पृथ्वीपर विहार करते हुए कमरा 'मिद्रि' नामक पर्वत पर रातभरके लिये रहे । उस समय उनके पूर्व भवके चारों दिनचल नामक देवने वहाँ आकर बड़े उपद्रव मचाये । यह देख, खेचरोंने उस देवकी रोका । इसके बाद प्रातःकाल कायोत्सर्ग करके मुनि रत्नसञ्जया नगरमें आकर सूरनिपात नामक उद्यानमें प्रतिभा करके रहे । वहाँ शुकृध्यान करते हुए उनके चारों बातों कर्मोंका हृय हो गया और विश्व के दीपकके समान केवल-ज्ञान उत्पन्न हुआ । उस समय देवों, विद्या-धरों और असुरोंने आकर उनके केवल ज्ञान प्राप्त होनेके उपलक्ष्यमें बड़ी धूमधामसे उत्सव किया । वज्रायुध चक्रवर्ती और अन्य मनुष्यों में उनकी बड़ी आदर-मर्दि की ।

एक समय क्षेमकर जितेश्वर विहार करते हुए उस नगरमें आये और ईशान-दिशामें उनका सनवसराम बनाया गया । उस समय सेवकों ने चक्रवर्तीके पास आकर जितेश्वरके आगमनपर उन्हें बधाई दी । उन्हें इस बधाईके उपलक्ष्यमें इनाम देकर, वज्रायुध चक्रवर्ती बड़ी धूमधाम और गाजे-वाजेके साथ अपने परिवारकी लिये हुए श्रीजितेन्द्रकी प्रणाम करने गये । वहाँ पहुँच, स्वामीकी तीन प्रदक्षिणा करते हुए उनकी वन्दना कर, वे धर्मदेराना ध्रुव करनेके लिये उचित स्थानमें बैठ गये । देरानाके अन्तमें चक्रवर्तीके पुत्र सहस्रायुधने दोनों हाथ जोड़, जितेश्वरकी प्रणाम कर पूछा,—“हे भगवन् ! पवनवेग आदिके पूर्व भवकी बात मेरे चित्तने कैले जान ली ! मुझे यह जाननेके लिये बड़ा कौतुहल हो रहा है । इस लिये हुपाकर इसका मुझे भेद कतलाइये ।” यह सुन, भगवान्ने कहा,—“तुम्हारे पिता वज्रायुधने अवधि-ज्ञान द्वारा यह बात जान ली थी ।” तब सहस्रायुध कुमारने पूछा,—“हे प्रभु ! ज्ञान किन्तने प्रकारका है ?”

क्यों नाराज़ हो गये ?” इसी सोच-विचारमें तीन दिन बीत गये । तबमें उसे यह बात सूझ गयी, कि अगर यही इसी लड़केने मेरे पतिका मन मेरी तरफ़से कर दिया होगा, इसलिये अब मैं इसीकी खुशामद करूँ, जिससे मेरे पति मुझपर फिर प्रसन्न हो जायें । ऐसा विचारकर उसने एक दिन रोहकसे बड़ी मुदर्यन दिखलाते हुए कहा,—“बेटा ! तुम अपने पिताको मेरे ऊपरसे क्रोध हटा देनेको कहो । मैं तुम्हारी दासी होकर रहूँगी, जो कहोगे, वही करूँगी ।” यह सुनकर बुद्धिमान् रोहक राज़ी होगया । इसके बाद फिर एक दिन चाँदनी रातको रोहकने पितासे कहा,—“पिताजी ! उठिये, उठिये, देखिये आज फिर वही पुरुष जाता नज़र आता है ।” यह सुन, पिताने कहा,—“कहाँ है, बेटा ! मुझे दिखाओ, तो सही ।” यह सुन, रोहकने उसे अपने शरीरकी छाया दिखला दी । यह देख, उसके पिताने कहा,—“भरे, यह तो आदमी नहीं, शरीरकी छाया है ।” रोहकने कहा,—“पिताजी ! मैंने तो उस दिन भी ऐसा ही पुरुष देखा था !” यह सुनकर, रंगशूरने मनमें सोचा,—“भौं ! मैं नाहक एक लड़केकी बातमें आकर अपनी स्त्रीके विषयमें शङ्का रखने लगा और व्यर्थमें उसका अपमान किया !” यह विचार मनमें उत्पन्न होते ही उसका क्रोध शान्त हो गया और वह फिर पहलेकी तरह रुबिमणीके साथ प्रीतिका घर्त्ताव करने लगा ।

रोहक सदा अपने पिताके साथही भोजन किया करता था । यद्यपि उसकी माता उसपर भक्ति रखती थी, तथापि वह उसका विधान नहीं करता था ।

एक दिन रंगशूर उज्जयिनी-नगरीकी चला गया । उसके साथही रोहकने भी यहाँ आकर सारी नगरीकी सैर की । जब ये दोनों शहरके बाहर चले भाये, तब कोई काम याद आजानेसे रङ्गशूर फिर नगरमें चला गया । रोहक नगरीके बाहरही क्षिप्रानदीके तीरपर बैठा रहा । बैठे-बैठे उसने नदीकी रेतमें देव-मन्दिर आदिके सहित सारे नगरका चित्र अङ्कित कर डाला । इसके बाद राजमन्दिरकी रक्षा करनेकेलिये

भाय द्वारपालको तरह दरवाजे पर खड़ा हो रहा । इनमेंमें कुछ आद-
मियोंको साथ लिये हुए उस नगरीका राजा घोड़ेपर सवार हो, उसी
रास्तेसे गुज़रने लगा । उसे देख, रोहकने बड़ी धृष्टताके साथ कहा,—
“हे राजकुमार ! क्या भाय इस प्रासाद-श्रेणीसे सुशोभित नगरीको ध्वंस
कर देना चाहते हैं, जो इधरसे घोड़ा हटाकर नहीं ले जाने ?” यह सुन,
उसको अड्डित की हुई नगरोंको देख, उसकी बुद्धिमानोंसे आश्चर्यमें आ-
कर राजाने कहा,—“यह लड़का बौन है ?” उनके पास गढ़े सेवकोंने
कहा,—“महाराज ! यह रङ्गूर नटका पेटा रोहक है । है तो जगसा
लड़का ही ; पर बड़ा ही होशियार है ।” यह सुन, राजाने अपने मनमें
विचार किया,—“अच्छा, मैं इस बालकको बुद्धिमानोंकी परीक्षा करूँगा ।”
तदनन्तर पिताके आनेपर रोहक उसके साथही अपने घर चला आया ।

एक दिन राजाने अपने सेवकोंको नट-ग्राममें भेजकर यहाँके लोगों-
पर यह फ़र्मान जारी किया, कि खाहे जितना खर्च हो ज़रूरी, लेकिन मेरे
रतनेके लिये एकही खीझका एक माल तैयार कर डालो । यह हुक्म-
नामा सुन, रङ्गूर वगैरह सभी बड़े-बूढ़े लोग इकट्ठे होकर विचार करने
लगे और यह कार्य करनेमें असमर्थ होकर बड़ी देरतक विचार ही करने
गए । इनमेंमें भोजनका समय होजानेके कारण गेता हुआ रोहक
आकर बोला,—“पिताजी ! खलो, मुझे कुछ लग्यो है । मैं तुम्हारे दिना
भोजन नहीं करूँगा ।” यह सुन, रङ्गूराने कहा,—“पेटा ! थोड़ी देर
ठहरो । राजाका बड़ा दिक्कत हुक्मनामा आया है । इस समय उसीका
विचार चल रहा है ।” रोहकने पूछा,—“कैसा हुक्मनामा आया है ?
सोचोने कहा,—“उन्होंने कहा है, कि मेरे लिये एकही खीझका
एक माल तैयार कराओ । इसलिये उनको हुक्मकी तामीर हो कर-
नीती होगी ।” यह सुन, रोहकने कहा “अनी खरब-आर महरोंग
तारो-रिदे, पाँछे मैं आप लोगोंका इसका ज़ाहद हूँगा । इसके लिये
एकही दिना की बला आया-कहा है ।” यह सुन, तारो-रिदे महरोंग खने
बने गये । तारो-रिदे उर सद लोग फिर इकट्ठे हुए, यह उन्होंने रोहक-

लोग इस कुपे'को खाना कर देंगे ।" यह सुनकर, राजाने सोचा, कि इसकी बुद्धि तो बड़ी ही तीव्र है । यह कोई मामूली बुद्धिमान नहीं है ।

तदनन्तर एक दिन राजाने कहला भेजा,—“हे ग्रामवासियो ! तुम्हारे गाँवकी उत्तर दिशामें जो वन है, उसे गाँवके दक्षिण कर दो ।” इसपर रोहकने जवाब दिया, कि गाँवको वनके उत्तर बसा दीजिये, बस यह वन गाँवके दक्षिणमें आ जायगा ।” यह सुन, राजाने विचार किया, कि यह तो बड़ाही होशियार है ।

फिर एक दिन राजाने हुक्म दिया, कि बिना आगके महारे लीर पकाकर मेरे पास भेज दो । यह सुन, रोहकने जङ्गलके कण्डोंके बीचमें बड़े-बड़से लीरका बर्तन रख दिया । उन कण्डोंकी गरमीसे लीर पककर तैयार हो गयी । रोहकने उसे ही राजाके पास भिजवा दिया । इस तरह राजाके इस हुक्मकी भी तामिल हो गयी ।

इसके बाद राजाने गाँवके लोगोंको कहला भेजा,—“तुम्हारे गाँवमें जो ऐसा बुद्धिमान मनुष्य है, उसे इस प्रकार परस्पर विरुद्ध व्यवस्था करके मेरे पास आनेको कहो । यह व्यवस्था इस प्रकार है:—यह स्नान करके नहीं आये, पर साधही शरीरको मलिन बनाये हुए भी नहीं आये । यह न तो किसी वाहन पर चढ़ा हुआ आये, न पैदल आये, न टेढ़ी राह आये, न सीधी राह ; न रातको न आये, न दिनको न कृष्ण पक्षमें आये, न शुक्ल-पक्षमें ; न छायामें आये, न धूपमें । न कुछ भेटके लिये लें आये न झाली हाथ आये ।” इस प्रकारकी आज्ञा पाकर रोहकने जलसे शरीरको धोया सही, पर खूब-बेह मलकर स्नान नहीं किया । यह एक बकरे पर सवार होकर चला, जिससे उसके पैर ज़मीनसे छू जाते थे । अमावास्याके उपरान्त प्रतिपदाके दिन, सन्ध्याके समय सिरपर खलगी रखे, गाड़ीको लीकके बीचसे चलना हुआ यह हाथमें एक मिट्टीका पिण्ड लिये हुए राजसमामें आ पहुँचा । राजाको प्रणाम कर यह उनके सामने बैठ गया और मिट्टीका यह पिण्ड उनके पास रख दिया । राजाने यह पूछा,—“यह क्या ? उसने कहा, यह इस जगत्की जननी

मृत्तिका है !” राजाने फिर पूछा,—“तुम यहाँ कैसे आये ?” उसने कहा,—
 “आपने जिस तरह आनेका हुक्म दिया था, वैसेही आया ।” यह कह
 उसने राजासे सब कुछ विस्तारके साथ कह सुनाया । उसने कहा,—
 महाराज ! मैंने शरीरको नहलाया तो सही ; पर उसका मेल नहीं
 घोया, इसलिये नहाया भी और मलौन भी बना रहा । एक नन्हेसे
 थकने पर सवार होकर आया इसलिये मेरे पैर ज़मीनको छू रहे थे,
 अतएव मैं न तो सवारी पर था, न पैदल था । अमावस्याके ही दिन,
 शामको प्रतिपदा लगती थी, इसीलिये मैं आज आया ; क्योंकि यह न
 तो शूक्र-पक्ष हुआ न कृष्णपक्ष । साँझको आया इसलिये न तो यह
 दिन हुआ, न रात हुई । गाड़ीकी लीकके बीचो-बीच आया, इस-
 लिये न सीधो राह आया, न टेढ़ी राह । हाथमें मिट्टीका पिण्ड लेकर
 आया, इसलिये न खाली हाथ हूँ, न मेंट लिये साथ हूँ । सिरपर
 चलती रखे आया हूँ । इसलिये न धूपमें रहा, न छाया में ।” यह
 सुनकर राजाको मालूम हो गया, कि इसने मेरे हुक्मकी पूरी-पूरी
 तामील कर डाली । तब राजाने उसे खुशीसे इनाम दिया और उसका
 आदर करते हुए समामें उसकी इस प्रकार बढ़ाई की,—“अहा ! इस
 महात्माका बुद्धि-वैभव देखकर तो चित्तमें यही विचार उत्पन्न होता है,
 कि यह सुभाषित बहुत ही ठीक है,

‘वाञ्छितं लोहानां, काष्ठ-पापाद्य-वाससाम् ।

नारी-पुरुष-तोषानां, नृपते महदन्तरम् ॥ १ ॥

अर्थात्—घोड़े-घोड़ेमें, हाथी-हाथीमें, लोहे-लोहेमें, लकड़ी-लक-
 डीमें, पत्थर-पत्थरमें, वस्त्र-वस्त्रमें, नारी-नारीमें, पुरुष-पुरुषमें, और जल-
 जलमें, मैं बड़ा फर्क दिखाइ देता हूँ ।

इसके बाद राजाने उस दिनके लिये रोहकको पहरेपर नियुक्त किया
 और आप सोने चले गये । रातका पहला पहर बीत जानेपर राजाकी
 नींद टूटी और उन्होंने देखा, कि रोहक सोया हुआ है । यह देख, उन्होंने
 पूछा,—“क्यों रोहक ! तुम सोये हो, या जागे हुए हो ?” यह सुन,

मींदसे जगंकर रोहकने ऋटपट अवाव दिया,—“महाराज ! मैं जगा हूँ, पर जरा एक बातके विचारमें पड़गया हूँ ।” राजाने पूछा,—“तुम किम विचारमें पड़े हुए थे ?” उसने कहा,—“बकरियोंकी लेंड़ीको इस तरह गोल-गोल कौन बनाता है ? राजाने पूछा,—“तुम्हारे विचारसे इसका क्या निर्णय हुआ ?” उसने कहा,—“बकरीके पेटमें घाघु (संघर्षवायु) की कुछ ऐसी ही प्रबलता है, जिससे लेंड़ियाँ गोल हो जाती हैं ।” इसके बाद दूसरे पहर मींद टूटने पर भी राजाने रोहकसे पूछा,—“भरे ! क्या तुम्हें मींद आ गयी ?” यह सुन, उसने सावधान होकर कहा,—“स्वामी ! मुझे मींद तो आती ही नहीं ।” राजाने पूछा,—“तब मेरे पुकारनेके इतनी देर बाद तुम क्यों बोले ?” उसने कहा,—“महाराज ! मैं कुछ सोच-विचारमें पड़ा हुआ था ।” राजाने पूछा,—“क्या सोच रहे थे ?” उसने कहा,—“महाराज मैं यही सोच रहा था, कि पीपलके पत्तेका नीचे वाला हिस्सा मोटा होता है या ऊपरवाला ?” राजाने पूछा,—“तुमने इसका क्या निर्णय किया ?” उसने कहा,—“मेरे विचारसे ये दोनों ही भाग एकसे होते हैं ।” यह सुन, राजा फिर सो गये । तीसरे पहरमें फिर उन्होंने जागते ही पूछा,—“क्यों जी ! जगी हो या ऊँच रहे हो ?” उसने कहा,—“जगा हूँ, पर कुछ विचारमें पड़ा हुआ हूँ ।” राजाने पूछा,—“क्या विचार कर रहे हो ?” उसने कहा,—“मैं यही सोच रहा था, कि गिलहरीका शरीर बड़ा होता है या पूँछ बड़ी होती है ? और उसके शरीर पर श्यामता अधिक है या श्वेतता ?” राजाने पूछा, आश्चर्यकर, तुमने क्या निर्णय किया ?” उसने कहा मैंने यही निश्चय किया है, कि उसका शरीर और पूँछ, दोनों बराबर होते हैं और उसकी स्याही सफ़ेदी भी एकसी है ।” इसके बाद राजा फिर सो रहे । चौथे पहरके भस्तरमें उनकी मींद टूटी । उस समय रोहक नींदमें बेसुच पड़ा था । यह देख, राजाने उसे एक कटिसे गोंद दिया । तुरत ही उसकी नींद छुल गयी । राजा ने कहा,—“क्यों ! जब नींद आयी थी न ?” उसने कहा,—“हे स्वामी !

“दूसरी घेनयिकी बुद्धि है। यह गुरुकी विनय करनेसे प्राप्त होती है। निमित्तादिक शास्त्रोंमें ओ सुन्दर विचार उत्पन्न होते हैं, उनमें गुरुकी विनयही प्रमाणमूल है। घट आदि पदार्थ बनाने और चित्र अङ्कित करने आदिके शिल्प-ज्ञानको तीसरी कार्मिकी बुद्धि कहने हैं। परिणामके यश-वयके परिपाकसे-यस्तुका निश्चय करानेवाली ओ बुद्धि होती है, वही चौथी परिणामिकी बुद्धि कही जाती है। इस बुद्धिके बहुतसे दृष्टान्त शास्त्रोंमें पाये जाते हैं; पर ग्रन्थ बड़ा हो जानेके ही मयसे, हमने उन्हें यहाँ नहीं लिखा। इन चार प्रकारकी बुद्धियोंको अभ्युत-निश्चित मतिज्ञान कहा जाता है। इस मतिज्ञानसे प्राणी समग्र धुतज्ञानका अभ्यास कर सकते हैं और धुत-ज्ञानसे तीनों कालका ज्ञान प्राप्त होता है। इस विषयमें आगाममें कहा हुआ है, कि—

“उद्भवमवतिरिप्लोप, ओइसरेमाशिषा य सिद्धा य ।

सध्वो लोमाधोगो, सि (स) ज्ञापविउत्स पक्षस्त्रो ॥ १ ॥”

अर्थात्—“उद्-लोक, अधोलोक, तिष्ठेलोक, पयोतिर्धा, वैज्ञानिक, सिद्ध और सर्व लोकालोक—यह सब स्वाध्याय (श्रुतज्ञान) जाननेवालेको प्रत्यक्ष होजाता है। यह दूसरा धुतज्ञान कहलाता है।”

“जिसके द्वारा प्राणीकी कितनेही जन्मोंका ज्ञान प्राप्त हो जाना है और जिससे वह सब दिशामोंकी अमुक अवधि-पर्यन्त जानता और देखता है, वह तीसरा अवधि-ज्ञान कहलाता है। जिसके द्वारा सभी-जीवोंके मनोगत परिणामका ज्ञान होता है, वह चौथा मनः पर्यवहार कहा जाता है। और जिन ज्ञानसे किसी स्थानपर किसी तरहकी ठोकर नहीं लगती—किसी तरहकी भूल-धूक नहीं होती, वही सिद्धि-मुक्तका देनेवाला केवलज्ञान कहलाता है।”

इस प्रकार पाँच प्रकारके ज्ञानकी ध्याल्यासुन, जिनेश्वरको नमस्कार कर, अपने घर आकर वज्रायुध चक्रवर्त्तनि अपने सहस्रायुध नामक पुत्र-को राज्यपर बैठा दिया और स्वयं चार हजार राजाओं और सात सौ पुत्रोंके साथ क्षेमदूर तीर्थदूरसे वीक्षा ग्रहण कर ली। इसके बाद

गीतार्थ हो, पृथ्वीपर झकेले बिहार करने हुए ये यज्ञायुधमुनि मिट्टि-
पर्वत नामक छंद गिरिके ऊपर भाये । वहाँ रमणीय शिखरतलपुल-
वैरोवन-लम्पारके ऊपर ये एक सर्वत्रक मेरुकी तरह निम्नत्र प्रतिमामें रहे ।
इसी समय अश्वघोष प्रतिपासुदेवके दोनों पुत्र, मण्डिबुद्ध और मण्डिपुत्र,
जो संसारमें परिभ्रमण कर, उस समय देवदत्तको प्राप्त हो गये थे, उन्हीं
स्थानपर भाये । पूज्य महर्षि यज्ञायुधको देख, उन्हें दाद पैदा हुआ, इस
लिये वे तरह-तरहके उपद्रव करने लगे । पहले तो उन्होंने मोसे दान-
पाले भदंकर और मोटी पूँछवाले सिंह तथा बाघबाहुव बनाकर महर्षि-
को डराया । इसके बाद हाथीका रूप बना उन्होंने मुनिपर दानसे भी
घोट की और फल पैलावे हुए भदंकर साँप और साँपिनका रूप धारण
कर उन्हें बाँ बाँ काट भी खाया । अन्तमें पिशाच-पिशाचिनीका मया-
पना रूप बना, उन हुए देवोंने मुनीश्वरको तरह-तरह उपद्रव करके
सताया, परन्तु उनकी किसी हरकतसे मुनिको तनिक भी क्षोभ
नहीं हुआ ।

इसी समय देवेन्द्रकी अप्रमद्विषयाँ, रश्मा और तिलोत्तमा, यज्ञायुध
मुनिको प्रणाम करने आयीं । उन्हें आते देखकरही ये हुए देव भाग
गये । उन्हें आगते देख, इन्द्रकी उन पत्नियोंने उन्हें डरानेके लिये खूब
डाँट-फटकार बताया । इसके बाद परिवार सहित देवाङ्गना रश्मा,
मुनिके निकट, बड़े भक्तिभावसे हाथ-आवादि विलासके साथ मनोहर
नृत्य करने लगी और तिलोत्तमा अपने परिवारके साथ सातों स्वर्गों
और तीनों धामोंसे युक्त उत्तम सङ्गीत गाने लगी । इसके बाद ये दोनों
देविषी परिवार-सहित मुनिको प्रणाम कर, अपने-अपने स्थान को
चली गईं । यज्ञायुध मुनीश्वर अति दुष्कर ऐसी वायिक प्रतिमाका
भङ्गोकार कर चारों ओर घूमते हुए पृथ्वी-मण्डलपर बिहार करने
लगे । एक दिन क्षेमदुर जिनेश्वरके मोक्षको प्राप्त हो जानेके बाद
ये मुनि, राजा सहस्रायुधके नगरमें भाये । यज्ञायुध मुनिके आगमन-
का वृत्तान्त श्रवण कर, सहस्रायुध राजा बड़ी धूमधामके साथ उनके

पास भाये और उनकी घन्दना की । उनसे धर्मदेशना श्रवणकर उन्हें प्रतियोग प्राप्त हुआ और उन्होंने अपने शतबल नामक पुत्रको राज्यपर बैठाकर आप उन्हीं मुनिसंघ कीक्षां ले ली । क्रमशः वे भी गीतार्थ हो गये । इसके बाद वे अपने पिताके परिवारमें सम्मिलित हो गये और दोनों पिता-पुत्र विविध प्रकारकी तपस्याएँ करते हुए पृथ्वीपर विचरण करने लगे । अन्तमें वे दोनों मुनि ईशान्यागमार नामक पर्वतपर आरोहण कर, वहीं पादपोगम-भजन करने लगे । अनुक्रमसे शुभध्यानसे स्वयं कर्मोंका क्षय कर, वज्रायुध और सहस्रायुध—वे दोनों ही मुनीश्वर मर्त्य प्रियेयकमें आकर देव हुए ।



पाँचवाँ प्रस्ताव ।

इसी जन्मद्वारके पूर्व, महाविदेह-क्षेत्रमें, पुष्कलावती नामक विजय में, पुलहरीकिष्णी नामकी नगरी है। उसमें नीति, कीर्ति और जयलक्ष्मीके मन्दिर-स्वरूप धनरथ नामके तीर्थङ्कर राजा रहते थे। उनके दो लिये थीं। पहलीका नाम प्रीतिमती और दूसरीका नाम मनोहरी था। नवें प्रवैद्यकमें रहनेवाला वज्रायुधका जीव, इकतीस सागरोपमका आयुष् पूरा कर, वहाँसे व्युत्त हो, उनकी पहली रानी प्रीतिमतीकी कोखमें आया। उस समय उसको माताने मेघका स्वप्न देखा। सह-वज्रायुधका जीव भी वहाँसे व्युत्त हो, दूसरी रानीकी कोखमें आया। उस समय रानीने भी रथका स्वप्न देखा। क्रमसे समय पूरा होने पर दोनों रानियोंके गर्भसे शुभलक्षणयुक्त पुत्र उत्पन्न हुए। क्रमसे उनके नाम मेघरथ और इंद्ररथ रखे गये। दोनों राजकुमार शैलवायस्थाको पार कर, अपनी विनय शीलता और बुद्धिमत्ताके प्रभावसे कलाचार्यके निकट बहत्तर कलाओंकी शिक्षा प्राप्त की। सब कलाएँ सीखने पर वे दोनों राजकुमार युवावस्थाको प्राप्त हुए और अगली सुन्दरनाके भागे कामदेवको भी नीचा दिखाने लगे। इसी समय सुमन्दिर नामक नगरके स्थानी, राजा निहतारिका प्रियनिशा और मनोरमा नामकी दो पुत्रियोंसे मेघरथका ब्या हुआ और उन्होंने निहतारिराजाको छोटी लड़की सुमति, कुमार इंद्ररथको ब्याहा गयी। मेघरथकी लिये-प्रिय-निशा और मनोरमाके मन्दिरेश और मेघसेन नामक दो पुत्र हुए

और बृद्धराजको अपनी बही सुमतिसे रखसैन नामका एक पुत्र हुआ ।
कामसे लड़कपन पारकर उन तीनों राजकुमारोंने सब कलामोंका भ-
क्षण किया ।

एक दिन राजा वसन्त, अपने पुत्रों और पौत्रोंके साथ, सिंहासन
को धारण करने हुए राजदरबारमें बैठे हुए थे । इसी समय मैषण
ने सब कलामोंमें निपुण अपने पुत्रोंसे कहा,—“प्यारे पुत्रो ! तुम लोग
अपनी अपनी बुद्धिका लक्षणकार विज्ञानोंके लिये परस्पर प्रलोभ
करो । ” यह सुन, छोटे लड़केने प्रश्न किया:—

“कवे संशोध्यते मया ? दानार्थं धानुरत्र कः ?

कः पर्वायत्र कोश्वानो ? को वायर्ध्वमथ नृपाम् ? ॥ १ ॥

अर्थात्— “बुधाका संशोध्यते क्या है ? दानके अर्थ में किस
धानुका प्रयोग होता है ? कोश्व का पर्वाय क्या है ? और मनुष्यों
का अन्तकार कोनसा है ? ”

यह सुन, कुछ देर विचार कर दूसरे पुत्रने जवाब दिया—कला-
व्यासः । [अर्थात् व्यासका संशोध्यते है ‘क’, दानके अर्थमें ‘दा’ धानु
का प्रयोग होना है, कोश्वका पर्वाय है ‘अव्यासम्’ और मनुष्योंका अन्त-
कार है—कलाव्यास । , इसके बाद दूसरे लड़केने पूछा,—

‘ दण्डनीति कथं वृत्ते ? महापते क इत्यनेन ?

कः क्वानो नृपि औचक्यम्. कः कथमां नम ? ” ॥

अर्थात्— “दण्डनीति कैसी थी ? बहुत बड़ा भेद वृद्ध
रामेश्वरों केनका लब्ध है ? शिवा की गति कोन है ? पौत्रों लोक
पक्ष कोन पड़ना है ? ”

यह सुन, बड़े बेटेने उत्तर दिया,— “मनीषिणः ” । अर्थात्—
अपने बुद्धिकर्षक ज्ञानमें दण्डनीति में अचानकाली ही थी, महापते
वृद्ध राजेश्वरोंका लब्ध ही है, शिवाकी गति नृपिणी है और पौत्रों
लोचकत्व मनीषिणः अर्थात् लब्ध है ।]

इसके बाद बड़े धैर्यसे प्रश्न किया:—

“विमार्शवचनं राज्ञां ? का शम्भोम्नानुमण्डमम् ?

कः कर्ता एव दुःखानां ? पात्रं च उष्ट्रम्यकिम् ? ”

अर्थात्—“राजाओंको क्या कहकर आशीर्वाद दिया जाता है ? महादेवके शरीरका शृंगार कौनसा है ? सुख—दुःख का कर्ता कौन है ? पुण्यका ठीक-ठीक निवास किसमें है ?”

यह सुन, और कोई उन्हें उत्तर नहीं दे सका, इसलिये मेघरथनेही धौल उठे,—“जीवरक्षाविधिः ।” [अर्थात्—राजाओंको ‘जीव’—तुम जिओ—ऐसा कहकर आशीर्वाद दिया जाता है । महादेवके शरीरका भूषण ‘रक्षा’ यानी राख है । सुखदुःखको कर्ता विधि, यानी विधाता है । और पुण्यका स्थान ‘जीवरक्षाविधि’ यानी जीवोंकी रक्षाका उपाय करना है ।] ” फिर मेघरथनेही प्रश्न किया,—

“सुखदा का शर्पाकस्य ? मध्ये च भुवनस्य कः ?

निपेधवाचकः को वा ? का संसार-विनाशिनी ?

अर्थात्—“चन्द्रमाकी कौनसी वस्तु सुखदायिनी है ? भुवनके मध्यमें क्या है ? निपेधवाचक शब्द कौनसा है ? और संसारका विनाश करनेवाली कौनसी वस्तु है ?”

इसका जवाब भी किसीसे देते न यना । तब राजा घनरथनेही कहा,— ‘भावना’ [अर्थात्—चन्द्रमाकी ‘भा’ यानी कान्ति सुख देने वाली है । ‘भुवन’ इस तीन अक्षरोंवाले शब्दके बीचमें ‘ध’ है । निपेध-वाचक शब्द है ‘ना’ । और संसारका नाश ‘भावना’ ही करती है ।]

इस प्रकार उन लोगोंने कुछ देरतक प्रश्नोंचरोंसेही दिल यहलाया । इसी समय एक गणिका वहाँ आकर धौली,— “महाराज ! मेरे पास यह जो मुर्गा है, वह किसी दूसरे मुर्गेसे हरगिज़ नहीं हार सकता । यदि किसीके मनमें अपने मुर्गेकी ताकतका धमएड हो, वह अपना मुर्गा मेरे पास ले आये और मेरे मुर्गेके साथ लड़ाकर देख ले । जिस किसी

का मुर्गा मेरे मुर्गों को हरा देगा, उसे मैं साथ भराईयाँ इनाम दूंगी । साथही जिसका मुर्गा हार जायगा, उससे मैं भी साथ भराईयाँ ले लूँगी । ” यह सुनकर मनोरमा रानीने राजासे हुक्म लेकर अपनी शामीमें अपना मुर्गा मँगवा लिया और उस गणिकाकी शर्त कबूल कर ली । दोनों मुर्गों आमने सामने कर दिये गये— दोनों एक दूसरेसे चुन गये । उस समय खोंव और पेरोंसे युद्ध करते हुए उन दोनों मुर्गों की सब समासर्दीने बड़ी प्रशंसा की । इतनेमें, तीर्थहूर होनेके कारण गर्भेश्वरके ही समयसे तीनों बालका ज्ञान रखनेवाले राजा धनरथने अपने पुत्र मैथरथसे कहा,—“पुत्र ! ये दोनों मुर्गों चाहे जितनी दैतक लड़ते रहें, पर इनमेंसे कोई हार नहीं सकता । ” यह सुन मैथरथकुमार ने पूछा,— “इसका क्या कारण है ? ” तब तीनों ज्ञानके धारण करने वाले राजाने कहा,—

“इसी जन्मपूर्वमें, भरतक्षेत्रकेही भन्वर, रत्नपुर नामक नगरमें धनरथ और सुदत्त नामके दो बनिये रहने थे, जिनमें परस्पर बड़ी मित्रता थी । ये दोनों पैलों पर साल लादे, भुल-ध्यासकी मात्र गहने हुए, एकही साथ वनिज-अंगीकार करने चलने थे, परन्तु दोनोंही नि ध्यात्मके कारण मूढ़ हो रहे थे, इसलिये कामनी माय-नील काकेलोंको लूब टगा करने थे । ऐसा करने पर और बहुत कोशिश करने हुए भी वे बहुत काम माल वेदा करने थे । एक समयकी बात है, कि उन दोनोंके दिलोंमें गर्जि पड़ गयी और वे परस्पर लड़ाई खाड़ा करने, एक दूसरेको मारने कूटने हुए आर्षध्यामनं मृग्युको प्राप्त होकर सुदगी-कूटा मदीके मोर पर कानन-बल्लभ और लाघबल्लभ नामके दो अंगली हामी हुए और अलग अलग जूनहोंके मदार बन बैठे । वहाँ भी वे अपना भन्वर कूटनेके लिये लोमके मोर परस्पर युद्ध करने हुए मर गये और अर्धध्यामने नन्दिमित्रके घर गये । मैथरथके बंधे हुए । उन्हें दो मन्त्र-कुमारोंने लगीदा और परस्पर लड़ा दिया । उन्हीं युद्धमें मरकर वे इसी नगरमें बचने होकर वेदा हुए । इस समयमें भी इनका युद्ध जारी रहा

राजाकी आज्ञा लेकर रानीने प्रवृत्त्या अंगीकार कर ली । इसके बाद उद्यानकी शोभा देखते हुए राजा नगरमें आये ।”

“एक दिन छत्रस्थ वेशमें विहार करते हुए अनन्त नामक तीर्थङ्कर राजाके घर आये । उस समय राजाने उनकी प्रासुक मन्त्र-पान (बहाराये) द्रिये, श्रेयोंने पाँच दिव्य प्रकट किये । इसके बाद ही मोर्घदूरको केवल-ज्ञान उत्पन्न हुआ । तब राजा समयघोषने उनके पास आकर अपने दोनों पुत्रोंके साथ ही प्रवृत्त्या अंगीकार कर लो । इसके बाद समयघोष राजर्षिने बीस स्थानकोंकी आराधना कर तीर्थङ्कर नाम-कर्म उपार्जन किया । अनुक्रमसे दोनों पुत्रोंके साथ कालधर्मको प्राप्त होकर वे अच्युत देवलोकमें आकर देव हुए । वहाँसे च्युत होकर समय घोष राजाका जीय तो हेमांगद राजाके पुत्र धनरथके रूपमें प्रकट हुआ और जय-विजयके जीय अच्युत कल्पसे च्युत होकर तुम दोनोंके शरीरमें आ टिके हैं । = पिताजी ! मुनिने जब इस प्रकार सम्रतिलक और सुरति-लकको उनके पूर्व मयकी कथा सुनायी, तब वे दोनों विद्याधर आपके दर्शनोंके लिये बड़े उत्सुक हुए और यहाँ आ पहुँचे । कुछ देर तक तो ये दोनों विद्याधर-कुमार इन मुर्गोंकी लड़ाईका समाप्ता देखा किये, इसके बाद वे अपनी पिताके प्रभावसे इन मुर्गोंके अन्दर प्रविष्ट हो, अपनेको छिपाये हुए, यही मीजुद् हैं ।”

जय मेघरथने ऐसा कहा, तब वे दोनों विद्याधर बटपट उन मुर्गों के शरीरसे बाहर निकल आये और धनरथ राजाके पैरों पर गिर पड़े । इसके बाद अपने पूर्व जन्मके पिताको प्रणाम कर, वे दोनों अपने स्थान को चले गये और वैराग्य उत्पन्न होनेके कारण संयम ग्रहण कर, हुस्कर तप करते हुए मोक्षको प्राप्त हुए ।

इधर ये दोनों मुर्गे, अपने पूर्व मयोंका हाल सुन, अपने पापोंके लिये मन-ही-मन अपनेको पिछार देते हुए, राजाके पैरोंपर गिर पड़े और अपनी भाषामें बोल उठे,—“प्रभो ! अब हमलोग क्या करें ? ” तब राजाने उन्हें समक्ति-साधन अहिंसाधर्मका उपदेश किया । उन्होंने

सबसे दिलसे अहिंसा-धर्म स्वीकार कर लिया और उमीका पालन करते हुए मरकर भूतलघीमें जाकर ताम्रचून् और स्वर्णचूल नामक भूतदेव हुए । वहाँसे वे विमानपर चढ़कर अपने उगकार करनेवाले घनरथ राजाके पास आ, उनको वन्दना और स्तुति कर, उनकी आज्ञा पाकर अपने स्थानको खले गये ।

घनरथ राजाने बहुत दिनोंतक सुख-पूर्वक राजलक्ष्मीका भोग किया । एक दिन लोकान्तिक देवोंने आकर उनसे कहा,—“हे स्वामी ! अब धर्म-तीर्थका प्रवर्त्तन करो ।” यह सुन, अपने ज्ञानसे दीक्षाका समय आया जान, सांवत्सरिक दान कर, पुत्र मेघरथको राज्य पर बैठाकर उन्होंने दीक्षा ले ली और घाती कर्मोंका क्षय कर, केवल-ज्ञान प्राप्त किया । इसके बाद मध्य जीवोंको प्रतियोध देते हुए वे पृथ्वी-अण्डल पर विचरण करने लगे ।

एक दिन राजा मेघरथ, अपने छोटे भाई दृढरथके साथ, अपनी दोनों स्त्रियोंको सङ्ग लिये हुए, देवगन्ध नामक उद्यानमें आये । वहाँ वे लोग एक अशोक-वृक्षके नीचे बैठे हुए थे । इतनेमें बहुतसे भूत उनके पास आकर नाटक करने लगे । उन्होंने बहुतसे शास्त्र धारण कर, वर्मरूपी वस्त्र धारण किये हुए, सारे शरीरकी रक्षाके लिये भूल पहन लिया । इसके बाद उन्होंने बड़ा ही मनोखा नृत्य किया । उनका नृत्य हो ही रहा था, कि किंकिणी और ध्वजाभोंसे सुरोभित एक विमान आस्मानसे नीचे उतर कर मेघरथ राजाके पास आया । विमानमें सुन्दर स्त्री-पुरुषों एक जोड़ीको बैठे देख, राजाने राजासे पूछा,— “स्वामी ये कौन हैं ?” राजाने कहा,—

“देवी ! वैताल-पर्वतकी उत्तर धेपीमें अलका नामकी एक नगरी है । वहाँके विद्युत्स्थ नामक विद्याधरोंके राजाका यह पुत्र है । इसका नाम सिंहस्थ है । यह स्त्री इसीकी पत्नी वेगवती है । यह खेचरेन्द्र अपनी स्त्रीके साथ घातकी छल-द्वेषमें जिनेश्वरको वन्दना करने गया हुआ था । वहाँसे यहाँ आतेही-आते अकस्मात् इसका

शान्तिनाथ चरित्र



भाई ! मैं इस चीज की जरूरतें ज्ञाने हुए परीक्षो मुझ
देना कृपित नहीं समझता ।

(पृष्ठ २०५)

हुआ और उसने अपने घर जा, पुत्रको राज्य पर बैठा, प्रिया सहित श्री घनरथ जिनेश्वरके पास आकर दीक्षा ले ली । इसके बाद हुप्कर तप कर निर्मल केवल-ज्ञान उपार्जन कर, कर्मरूपी मलका सर्वथा नाश कर, सिंहरथ मुनिने मोक्ष प्राप्त कर लिया ।

इधर मेघरथ राजा उद्यानसे लौटकर रानीके साथ-साथ घर आये। एक दिन वे सचान्द्र-परित्याग-पूर्वक, अलङ्कार आदिको दूर कर, पौ-पय-व्रत ग्रहण किये हुए पौन्ध्रशालामें योगासन मारे बैठे हुए राजाओं को धर्मदेखाना कर रहे थे । इसी समय कहींसे उड़ता हुआ एक कयूतर जिसका शरीर काँप रहा था और जिसकी आँखोंसे भय और चंचलता टपक रही थी, मनुष्यकीसी घाणीमें यह कहता हुआ, कि मैं आपकी शरणमें हूँ, राजाकी गोदमें आ गिरा । उस समय उस भयभीत पक्षी को देख, दयार्द्र होकर राजा मेघरथने कहा,— “भाई जब तुम मेरी शरणमें आ गये, तब तुम्हें कोई डर नहीं है । ” राजाको यह बात सुन, वह पक्षी निर्भय हो गया । इतनेमें उसके पीछे-पीछे एक महाभयंकर और निर्दय याज्ञ वहाँ आ पहुँचा और राजासे बोला,— “महाराज ! सुनिये । आपकी गोदमें जो कयूतर पड़ा है, वह मेरा आहार है, इस लिये उसे मेरे हवाले कीजिये— मुझे घेतरह भूख लग रही है । ” यह सुन, राजाने कहा,— “भाई ! मैं इस अपनी शरणमें आये हुए पक्षीको तुम्हें देना उचित नहीं समझता । क्योंकि पण्डितोंने कहा है, कि—

“गुरुस्य गरसापातो-ऽर्हन्लिंगं सदा हरेः ।

गुरुन्ते जीवन्तं नैत-ऽप्रापं सत्या उरस्तथा ॥ १ ॥”

अर्थात् — “शुश्रूषकी शरणमें आये हुए प्राणीको दूसरा उसी प्रकार जीने-जी नहीं ग्रहण कर सकता, जैसे शरीरमें प्राण रहते, कोई मर्कटी नहीं, सिंहका केसर और सर्पोंकी हृदय नहीं पा सकता ।”

“साथ ही हे पक्षी ! तुम स्वयं ही इस बातका विचार करो, कि औरोंकी जान लेकर अपनी जान बचाना, कितना बड़ा पुण्य-नाशक है। यह प्राणीको स्वर्गमें जानेसे रोकता है और नरकका कारण है । इस

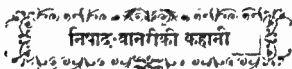
लिये तुम्हें भी इस कामसे हाथ बँधी लेना चाहिये । यदि कोई तुम्हारा एक ही पद मोच ले, तो तुम्हें किन्ना कष्ट होगा ? चेतोही भीलोंको भी पीड़ा होती है, इसका भी तो विचार करो । और देखो, इस कयूतरका माँग जानेसे तुम्हें क्षण भरकीही तृप्ति होगी, पर यह विचार तो सदाके लिये जान जहाजसे हाथ धो बैठेगा ! मोच देको, पंचेन्द्रिय जीवों का वध करनेसे बुद्धात्मा प्राणियोंको नरकमें जाना पड़ता है । कहा है, कि—

“धृपने जीवहितावाप्तु, निवाप्तो नरकं गतः ।

द्वयादिगुण मेयुना, वामरी त्रिदिवं गता ॥ १ ॥”

अर्थात्— “ज्ञानसे क्या आयी है, कि जीवहिता करनेवाला निषाद (ध्याप) नरकमें गया और दयादि गुणोंसे युक्त होनेके कारण वामरी (वैदरी) स्वर्गमें गयी ।”

यह सुन, उग्र बाज़ने मोग्गन राजासे पूछा,—“हे राजन् ! उम निषाद और वामरीकी कथा मुझे कह सुनाइये ।” इसपर राजाने कहा,—



इस पृथ्वीपर नीचड़ों कन्दोंमें प्रती हुई ‘हरिकाम्ना’ नामकी एक नगरी है । उम पुरीमें कन्दोंका वाळन योग्य करनेमें नगर ‘हरि-काम्ना’ नामके राजा रहते थे । उन्ही नगरीमें एक निषाद रहता था, जो कहा ही बुर, वामदूस सा निर्द्वेष और हजमोंका मित्रमोह था । वह पुरी नद्वेष नद्वेष जगजग बराह, मुक्कन और हरिज आदि ध्येक जीवों का वध किन्ना करता था । उन्ही पुरीके नाम एक चमई राजाकी छानमें बहुरंगे कन्द रहता करते थे । उन्हीं हरिहिता नामकी एक कन्द (वामरी) भी रहती थी, जो कभी मँग मरी जाती और दया-वर्द्धन्य मरिह मुक्केसे मुक्केमिग थी । एक दिन कड़ी निषाद, राजा

खड़ा लिये, मृगयाके निमित्त उसी वनमें आया । इसी समय उसने अपने सामनेसे एक भयंकर बाघको जाते देखा । उसे देखते ही वह डर गया और पासके ही एक पेड़पर चढ़ गया । उसपर एक क्रूर स्वभाव वाली बन्दरी मुह फाड़े बैठी हुई थी । उसे देख, वह फिर डर गया । उसे बाघके डरसे भागकर आया हुआ जान, बन्दरीने अपना मुख प्रसन्नता-पूर्ण बना लिया । यह देख, निपादके जी-में-जी आया और वह दिलजमईके साथ उसके पास बैठ रहा । बंदरी उसे भाईसा मानकर उसके सिरके केश सहलाने लगी । वह भी उसकी गोदमें सिर रखकर सो गया । इसी समय वह बाघ उस वृक्षके नीचे आया और बन्दरीकी गोदमें सिर रखकर सोये हुए उस मनुष्यको देखकर बन्दरीसे कहने लगा,—“भरी बावली ! इस संसारमें कोई किसीके किये हुए उपकारको नहीं मानता और मनुष्य तो खासकर ऐसे होते हैं । इस विषयमें मैं तुम्हें एक दृष्टांत सुनाता हूँ, सुनो,—

“किसी गाँवमें शिवस्वामी नामका एक ब्राह्मण रहता था । एक बार वह तीर्थयात्रा करनेके इरादेसे अपने घरसे बाहर हुआ और देश-देशान्तरोंमें घूमता हुआ एक बड़े भारी अङ्गुलमें आ पहुँचा । वहाँ प्याससे छटपटाता हुआ, वह पानीकी खोजमें धर-उधर घूमता-फिरता एक कुएँके पास आ पहुँचा । यह देख, उसने घासकी रस्ती बटकर उसीके सहारे कलसा (घड़ा) कुएँमें लटकाया । उसी समय उस रस्तीके सहारे उस कुएँमेंसे एक बन्दर बाहर निकला । यह देख उस ब्राह्मणने सोचा, कि चलो, मेरी मिहनत सफल होगयी । यही सोचकर उसने फिर रस्तीमें घड़ा बाँधकर नीचे लटकाया । इस बार कुएँमेंसे एक बाघ और एक साँप निकल पड़े । उन्होने उस ब्राह्मण को अपना प्राणदाता समझकर प्रणाम किया । इसके बाद उन तीनोंमें से पानरने, जो जाति-स्मरण-युक्त हुआ था, पृथ्वीपर अक्षरोंमें लिखकर ब्राह्मणको दत्तलाया, कि—हे द्विजदेव ! मैं मधुरा-नगरीके पासका रहनेवाला हूँ । तुम कभी उधर मेरे पास आना, तो मैं तुम्हारी

जातिर करूँगा। लेकिन, देखना, अभी इस कुर्सेमें एक आदमी और पड़ा है, उसे तुम कदापि बाहर नहीं निकालना, क्योंकि यह बड़ा भारी हत्या है—किसीका अहसान नहीं मानता।” यह कह, वे तीनों अपने-अपने स्थानको धले गये ।

“इसके बाद उस ब्राह्मणने सोचा,—“उस बेचारे मनुष्यको ही क्यों कुर्सेमें पड़ा रहने दूँ ? यदि अपनेसे हो सके तो सभीकी मलाई करनी चाहिये । यही तो मनुष्यके घर जन्म लेनेका फल है !” ऐसा विचार कर, उस विघ्ने फिर कुर्सेमें डोरी हाली और उस मनुष्यको बाहर निकाला उसे देख, ब्राह्मणने पूछा,—“भार्य ! तुम कीन हो और कहाँके रहने-वाले हो ?” उसने कहा,—“मैं मथुराका रहनेवाला—सुनार हूँ । एक झुकी कामके लिये शहर आ पहुँचा था और ध्यात्मके सारे ध्यातुल हो कर इस कुर्सेमें गिर गया था । वहाँ कुर्सेमें उगे हुए एक वृक्षकी शाखा एकड़ का टिका रह गया । इसके बाद उसमें एक चन्दर, एक बाघ और एक साँप भी आ गिरे । वहाँ सबपर समान विषद थी, इसीलिये किसीका किसीने घेर विरोध नहीं रह गया था । हे उपकारी ! तुमने हम सबके प्राण बचाये हैं, इसलिये एकबार मथुरा नगरीमें अवश्य अवश्य आओ ।” यह कह, वह भी अपने स्थानपर चला गया, यह ब्राह्मण पृथ्वी-मण्डल पर धूमता-धामना तीर्थ यात्रा करना हुआ किसी समय मथुरा-नगरीमें आ पहुँचा । वहाँ जंगलमें रहनेवाले उस चन्दरने उसे देख लिया और अपने उपकारीको पदचान कर बड़ी श्रुतीने अच्छे-अच्छे पत्र लाकर उसे दिये और इस प्रकार उसकी जातिपदारी की । इसके बाद उस पायने भी उसे देखा और पदचान कर अपने मनमें विचार किया,—“इस महापुरुषने मुझे मर्त्यमे बचाया था, इसलिये उस उपकारका हमें कुछ-न-कुछ बदला देना चाहिये ।” पर मोक्षकर वह बाग़में घूम पड़ा और वहाँ वेष्टिजीके साथ भेलने हुए राजकुमारको मानकर उनमें ममाम कीमती गहने उतार कर ले लाया, और वह सब उस ब्राह्मणके हवाले कर उसे प्रणाम किया । ब्राह्मणने

उस दोघाघु होनेका आशीर्वाद दिया और मथुरा-नगरीके अन्दर जा, उस सुनारका घर पूछते-पूछते वहाँ आ पहुँचा । उस समय उसे दूरसे आते देख, वह सुनार कुछ देरतक तो उसको खोर देखता रहा; पर फिर तुरत ही नीची नज़र बिये हुए अपना काम करने लगा । ब्राह्मण ने उसके पास आकर पूछा,— ‘क्यों साहुजी ! क्या तुम मुझे पहचानते हो ? ’ उसने कहा,— ‘मैं तुम्हें एकदम नहीं पहचानता । ’ यह सुन, उस ब्राह्मणने कहा,— ‘भरे भाई ! मैं वही ब्राह्मण हूँ, जिसने तुम्हें उस जंगलमें कुएँसे बाहर निकाला था । आज मैं तुम्हारे घर अतिथि होकर आया हूँ । ’ यह सुन, उस सुनारने बैठेही बैठे ज़रा तिर हिला कर उसे प्रणाम किया और बैठनेके लिये आसन देते हुए कहा,— ‘विप्रजी ! कहिये, मैं आपकी क्या सेवा करूँ ? ’ इस पर उस ब्राह्मण ने पाषके दिये हुए गहनोंको उसे दिखा कर कहा,— ‘भाई मेरे एक यज्ञमानने ये गहने मुझे दिये हैं । तुम्हीं इनका ठीक-ठीक दाम लगा सकते हो । इसलिये तुम इन्हें ले लो और मुझे इनका उचित मूल्य दे दो । ’ यह कह, गहनोंको उसाँके पास रखकर वह ब्राह्मण नदीमें स्नान करने चला गया । इसी समय उस सुनारने वस्तीमें यह खोड़ी फिरती हुई सुनी, कि—‘आज राजकुमारको मारकर कोई उनके सारे गहने चुरा ले गया हैं । जो कोई उस आदमीको कहीं देख पाये, वह राजाको उसका पता दे : क्योंकि राजा उस श्रेहीको प्राण दण्ड दिये पिना न रहेंगे । ’ यह सुनकर, उस सुनारके मनमें शङ्क हुई । उसने सोचा,—‘ये गहने तो मेरे ही गढ़े हुए हैं । ऊँकर इसी ब्राह्मणने गहनों के लोभसे राजकुमारको मार डाला है और उनके गहने लिये हुए मेरे पास आ पहुँचा है; पर यह न तो मेरा कोई भाई है, न नाता-भोता, फिर मैं इस के लिये अपनी जानकी क्यों बलामें फँसाऊँ ? ’ ऐसा विचार कर उसने राजाके द्वार पर जा, नगाड़े पर खोटे दौ और फिर उनके पास पहुँच कर, गहनोंको उनके हवाले करते हुए कहा,— ‘नहाराज ! इन गहनों का खोर एक ब्राह्मण है । ’ यह सुन, राजाने अपने सिपाहियोंको भेज

कर उस ब्राह्मणको कुछ मनुष्यतासे बैध्या में गवाया और पिशाचोंको बुलाकर पूजा,—“हे परिहृतो ! इस मामलेमें मुझे क्या करना चाहिये ?” परिहृतोंने कहा,—“महाराज ! मलेही कोई जातिका ब्राह्मण और वेद-वेदाङ्गका जाननेवाला हो, पर उसने यदि मनुष्यकी हत्याकी हो, तो राजाको अवश्य उसका घब करना चाहिये । इससे राजाको पाप नहीं सजा सकता ।” परिहृतोंकी यह बात सुन, राजाने अपने सेपकोंको उसका घब करनेका हुक्म दे दिया । राजसेवक उसे गवेषण कराये, उसके सारे शरीरमें रक्त कण्डनका छेप किया हुए, उसे बध्म भूमिकी ओर ले गये । उस समय वध्यस्थानको जाते हुए ब्राह्मणने अपने मनमें सोचा,—“ओह ! मेरे पूर्व कर्मोंके दोषों पर मैंने कैसी अवस्था हुई ! ओह ! उस दुष्ट सुनारने मेरे साथ कैसी कृतप्रता की ! इधर उस बानर और बाघने मेरे साथ कैसी कृतवृत्ता प्रकट की !” ऐसा विचार करते और उस बन्धनकी बाग पाद या जानेसे उस ब्राह्मणके मुँहसे अनजानमें ये दो श्लोक निकल पड़े:—

व्याघ्रबानरमयीर्वा, वनमया न पूर्ण वनः ।

ते माहं दुर्धिनो मे न, कसादेन विनायिनः ॥ १ ॥

वेणुवाहः कपटरात्रीत, नीरमाश्रीरमर्कदा ।

कानर्कदाः कसारज, न दिग्वाह्या इमे वरणि ॥ २ ॥

अर्थात्—“बाघ, बानर और लोवकी बात देने नहीं, मानी, इनो त्रिवे में इस दुष्ट सुनारके करते वारा गया । तब दे- ऐसा ! इन्द्रिय कपटुर, चोर, बल, विस्नी, बन्दर, बाघ और सुनार—इनका कभी विश्वास करना ठीक नहीं है ।”

यह ब्राह्मण बार-बार इन दोनों श्लोकोंको बोल रहा था । इसप्रकार उसकी आवाज़से उसे पहचान कर कभी जगह बदलनेवाले उस लोवने जिसे ब्राह्मणने कुर्सेसे बाहर निकाला था) अपने मनमें विचार किया, “ओह ! इस दिन जिन ब्राह्मणने मुझे कुर्सेसे बाहर निकाला था, वही अवस्था आज मनुष्यने वही हुए मनुष्य होने दे । शायद यही हुआ है—

उपकारिणि विष्णवे, माधुदने च सनाथानि पातन् ।

ते उनमनस्यमन्त्रं, भगवति वक्ष्ये ! कथं वहमि ! ॥ १ ॥

अर्थात्—“उपकार करनेवाले और विश्वासी सज्जनोंके साथ जो पापाचर कर रहे हैं, उन भक्त्य प्रतिज्ञावाले पुरुषोंके योग, हे पृथ्वी ! तू क्यों दोती है !”

यही विचार कर उस साँपने फिर अपने मनमें सोचा,—“इस समय इस ब्राह्मणके प्राणोंपर आ बनो है, इसलिये मैं इसके उपकारका कुछ बदला दूँ, तो इसके अन्तसे छुटकारा पा जाऊँगा ।” ऐसा सोच उसके उपकारोंको याद करता हुआ वह साँप दगावेमें आया और वहाँ सखियोंके साथ खेलता हुई राजकुमारीको देख, बत्ताओंके गुच्छेके अन्दरसे उसे काट छाया । तुरतही वह राजकुमारी व्याकुल होकर छटपटाती हुई ज़मीन पर गिरकर बेहोश हो गयी । यह देख, सखियोंने जाकर राजाको खबर दी । इस खबरको पातेही राजा अत्यन्त शोका-तुर और दुःखसे अधीर होकर धिलाप करने लगे,—“हाय ! यह क्या हुआ ! अभी तो एकही दुःखके समुद्रसे पार नहीं हुआ कि इतनेमें दूसरा आ पहुँचा ! अब मैं क्या करूँ !”

ऐसा विचारकर, राजाने तत्काल अनेक मन्त्रवादियोंको बुलाया । वे सब उसकी लड़कीको ब्याड़-फूँक करने लगे, पर किसोका कुछ असर नहीं हुआ । तब एक मन्त्र जाननेवालेने राजासे कहा,—“हे राजा ! मुझे निर्मल ज्ञान प्राप्त है । उसीके बलपर मैं यह समझ रहा हूँ, कि आपने जिस ब्राह्मणके बंधको आँखा दी है, वह बिलकुल निर्दोष है । उसका सच्चा-सच्चा हाल यों है—किसी समय इस दयालु ब्राह्मणने जङ्गलके कूपमेंसे साँप, बानर और बाघको बाहर निकाला । इसके बाद इसने एक सुनारको भी बाहर निकाला । उस समय साँप बगैरहने इस ब्राह्मणसे कहा था, कि तुमने हम लोगोंका बड़ा उपकार किया है, इसलिये किसी दिन मथुरामें आना । यह कह, वे अपने-अपने स्थानको चले गये और यह ब्राह्मण भी सब तारियोंसे धूनता-धामता इस बार मथुरामें आ

पहुँचा । मानेपर उस बन्दरने तो इन्हे उतापोत्तम फल देकर सम्मानित किया और बाघने आपके पुत्रको मारकर उसके कुन्व गहने इसे लाकर दिये । उन्हें लिये हुए यह सीधा-साधा ब्राह्मण उस सुनारसे मिलने गया और उसे बाघके दिये हुए गहने दिखाये । गहनोंको देख, उन्हें पहचान कर, उस हताम सुनारने आपको ज़बर दे दी । इसी पर आपने ब्राह्मणको खोर और हत्यारा समझकर मार डालनेका हुक्म दे दिया । देव-योगसे जहादोंको, यद्य करनेके लिये उस ब्राह्मणकी से जाने देकर, पूर्णोक्त सर्पने उसे पहचाना और उसकी भलाई की बात धाढ़ कर, उसे हुड़ानेके इरादेसे संताके भन्दरसे आपकी पुत्रीको, उस दिया । इसलिये, हे महाराज ! यदि आप उस ब्राह्मणको छोड़ दें, तो आपकी लड़की अवश्य ही जी जायेगी ।”

यह सुन, राजाने कहा—“अच्छा, मुझे ऐसी कोई बात बनलाभी, जिससे मुझे इस बातकी सच्चाई का भरोसा हो ।” यह सुन, उस मन्त्र-वादीने उस सर्पको राजपुत्रीके शरीरपर उतारा । उसने मन्त्रवादीकी कही हुई सब बातें स्वीकार कर लीं, जिससे राजाको पूरी दिल जमई हो गयी और उन्होंने उस ब्राह्मणको छुटकारा दे दिया । उसे छूटने देख, साँपने राजकुमारीके डंकपरका विष धूस कर लींच लिया, जिससे वह तुरत भली चढ़ी हो गयी । इसके बाद मन्त्रवादीने उस ब्राह्मणसे कहा,—“हे विप्र ! इसी साँपने आपकी जान बचा दी ।” यह सुन, उस ब्राह्मणने कहा,—“अहा ! इस संसारके प्राणियोंकी गति कैसी विविध है, ज़रा देखिये तो सही—जो बड़े ही क्रूर प्राणी कहे जाते हैं, उन्होंने तो हताशता दिखलायी और जो क्रूर नहीं कहा जाता, उसीने हर दर्जेकी हताशता—अहस्तामफ़रा मोशो—की ।” यह कह, उस ब्राह्मणने फिर कहा,—

“दो पुत्रोंसे घबं घरा, यहवा होहि वि धारिया घरधी ।

उपचार जप्स मई, उद्यार जो न विमहरई ॥ १ ॥

अर्थात् जिसकी गति उपकारमें होती है—जो उपकार करना

जङ्गलमें पहुँच गये । उस वनमें मूले-प्यासे और भकेले घूमते हुए राजाको एक बन्दर मिल गया । उसने राजाको दूध मीठे फल लाकर दिये और एकनिर्मल जलसे भरा हुआ सरोवर भी उन्हें दिखाया दिया । राजाने वही फल खा, पानी पी, स्वस्थ होकर सुखी मन एक वृक्षके नीचे छायामें बेरा डाल दिया । इतनेमें उनकी तलाशमें पीछे-पीछे चले आने वाले उनके समी सैनिक यहाँ आ पहुँचे । इसके बाद जब राजा उन सब सैनिकोंके साथ अपने नगरकी ओर चले, तब उन्होंने उस बन्दरको भी साथ ले लिया और उसे लिये हुए अपने नगरमें आये । यहाँ पहुँचकर, उस बन्दर पर बड़े प्रसन्न रहनेके कारण उसे सदा मिठाई और अच्छे-अच्छे पकवान खिलाते लगे तथा राजाकी आज्ञासे वह अपनी इच्छाके अनुसार आम और केले आदि फल भी कानेको पाने लगा । उस बन्दरके उपकारको याद कर, राजा उसे सदा अपने पास ही रखने लगे । एक दिन यसम्तप्रसन्नमें राजा बागीचेमें जाकर हिंडोला झूलने, जलक्रीड़ा करने और फूल चुनने आदिकी क्रीड़ाएँ करते हुए व्यक्त गये और वहीं सो रहे । अपनी शरीर-रक्षाका भार उन्होंने उसी बन्दरको सौंपा । इतनेमें राजाके मुँहके पास एक भीरा भँडराने लगा । यह देख, स्वामी पर भक्ति रखनेवाले उस मूर्ख बन्दरने उस भीरुको तलवारसे मारना चाहा और इसी वहाने एक हाथ पेसा जमाया, कि राजाका सिर कट गया । इसलिये हे निषाद ! तुम भी इस बँदरीके फेरमें न पड़ो, नहीं तो जैसे वे राजा अपने हितेपी घानरके करते संसार से उठ गये, वैसे ही तुम पर भी बला दूट पड़ेगी ।”

बाघकी यह बात सुनते ही उस निषादने उसी क्षण उस बन्दरीको उठाकर फेंक दिया । यह उस बाघके पासमा गिरी । उस समय बाघने उस घानरीसे कहा,—“बड़ी धीबी ! अफसोस न करना, क्योंकि जैसे पुरखकी सेवा की जाती है, वैसे ही फल मिलता है ।” यह सुनते ही उस बन्दरीको तत्काल बुद्धि उत्पन्न होगयी और उसने उसीके बल पर बाघसे कहा,—“माई ! अब तो तुम मुझे हरगिज़ न छोड़ो—काह-

कहा,—“रे दुष्ट ! तूने यह क्या कर डाला ? रे पापी ! जिस बेचारी बन्दरीने मुझे अपने पुत्रकी तरह रखा था, उसीको मारते हुए क्या तेरा हाथ नहीं काँप उठा ? रे दुष्ट, पापी, वृत्तम ! जा, तू अपना काला मुँह यहाँसे द्वार कर । तेरा मुँह देखनेसे भी पाप लगता है । मैं तुझे मारकर अपना हाथ भी कलङ्कित नहीं कर सकता, क्योंकि उससे तेरा पाप मेरेको स्पर्श कर जायेगा ।” इस तरह उसको फटकारते हुए बाघने उसे छोड़ दिया और वह अपने घर चला गया । उस समय लोगों के मुँहसे यह सब हाल सुनकर राजाने अपने मनमें विचार किया,—“मैं तो बन्दरोंकी रक्षा करता हूँ और इस दुरात्माने बालबच्चों समेत उस बन्दरीको मार डाला । इसलिये उसे पकड़ कर सज़ा देनी चाहिये, क्योंकि उसने मेरी आज्ञाका उल्लङ्घन कर डाला है । कहा है, कि—

“आज्ञा-भंगो भेददाया, गुरुणा मान-भर्दनम् ।

भद्रकोपश्च नारीया-मण्डपश्च उच्यते ॥ १ ॥”

अर्थात् “राजाकी आज्ञाका भंग, गुरुओंका मानभर्दन और स्त्रियों पर स्वामिका क्रोध होना, बिना शस्त्रके ही बघ कहलाता है ।”

इस प्रकार विचार कर राजाने अपने सेवकोंको आज्ञा दी और वे उसी दम उस निपादको बाँधकर पकड़ लाये और पुँसों तथा लाठियों से मारते हुए बाघ स्थानको छे गये । इतनेमें उस बाघने वहाँ भाकर कहा,—“भरे ! इसे न मारो, इसे मारना उचित नहीं ।” यह सुन, राजपुरुषोंने आश्चर्यमें पड़कर उस बाघकी बात राजासे जाकर कह सुनायी । इससे राजाको भी बड़ा कीतूबल हुआ और वे भी वहाँ जा पहुँचे । तब फिर बाघ बोला,—“हे राजन् ! इस पापीको मारकर आप भी इसके पापके हिस्सेदार बन जायेंगे । दुष्टात्मा प्राणी आपही अपने कर्मोंके दोषसे विपत्तिमें पड़ा करते है ।” यहो सुन, आश्चर्यमें पड़े हुए राजाने पूछा,—“हे बाघ ! तू जानवर होकर भी मनुष्यकी बोली कैसे बोलता है ? तुझमें ऐसी विवेक-भरी चतुराई कहाँसे आयी”

बाघने कहा,—“इस उद्यानमें एक बड़े भारी बानी आनायें आये हुए हैं। वे ही यह सब हाल बताते हैं। आप उन्हींसे जाकर यह प्रश्न करें।” यह कह, वह बाघ चला गया। राजाने उस निबन्धनी झुटकारा देकर अपने राज्यसे निकाल बाहर कर दिया।

इसके बाद राजा, गुरुके आगमनका हाल सुनकर, उद्यतमें आये।
 वहाँ अनेक साधुओंसे घिरे हुए आचार्य महाराजको देख, राजाने उन्हे
 बड़ी भक्तिसे साथ प्रणाम किया और उनके बाद ब्रम्हा और सब साधु-
 ओंकी भी घन्दता की। इसके बाद राजाने गुरुके सामने हाथ जोड़े
 हुए पूछा,—“आप अपने निर्मल ज्ञानक्षुभ्रोंसे सब कुछ जानते हैं।
 इसीलिये मैं आपसे पूछता हूँ, कि वह धारतों भरकर क्या हूँ?” गुरु-
 ने कहा,—“हे राजन्! यह शुभ ध्यानके वरा मृत्यु पाकर स्वर्गको
 गयी है। आगमशास्त्रमें कहा है :—

‘सत्यमेव जयते’ इति श्रुतिः । अतः सत्यमेव जयति ।

मृत्युपदार्थो निवृत्तिः कतिपयं देवैः ज्ञातः ॥ १ ॥

उदात्त—'शे मर, संयन और हाथों निरत रहना है, शक्ति-
से ही मर होना है, शक्त होना है और निरन्तर सुख के बदन में
मनुष्य रहना है, यह मात्र देवकी को ही श्रम लेना है।'

यह सुन राजा ने कहा—“हे भगवन् ! जो ज्ञानि और ब्रह्म होने लगे तो वे महा भोच और बड़ा भारी पानी हैं, वह निन्द्य मरकर नहीं जायेगा ।” सुनिने कहा,—“इस पानी को मरने के निन्द्य और नहीं ठहर-ठिक्का नहीं होगा । कहा भी है, कि—

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ।

सिद्धार्थदेव दिव्यदेवदेव ॥ १ ॥

कृष्णः शिखरः सन्तः सत्सङ्गितम् ।

सिद्धार्थ भट्ट, श्री गणेशाय नमः । ४ ।

54. 11. 1941. 11. 1941. 11. 1941. 11. 1941.

पण्डित, कताय और गिणोंमें कैसा दुष्का, कृतज्ञ, निर्दय, पापी, पादोरी, रौद्रध्यानमें तटार और २ मनुष्य मरकमें ही जाता है ।”

“इसके बिना है राजन् ! प्रसंगतः तुम्हारी जो मति को कौन प्राप्त होता है उसके अक्षय भी तुमने ।

‘विगुणगोमतिश्चैव, मित्रे वाक्यानां मदा ।

चारु-क्यानेन श्रीशोभे, तिर्यग्गतिमवाप्नुवान् ॥१॥

आर्यसामेयमप्यल्लो, मत्तशेखरायकः ।

ग्यायवान् गुह्यगुह्यम्, मनुष्यगतिमागमेत् ॥ २ ॥

अर्थात्—“विगुण (पुगुललोद), पाप-मति, मित्रके साथ मदा करके करनेवाला और आर्यध्यान करनेवाला मरकर तिर्यक्गति-वा प्राप्त होता है । जो मनुष्य और जन्तुतासे सधम्य होता है, विमर्श होय और कथाम नष्ट हो चुके हैं तथा जो व्यावधान् और गुणवाही होता है, वह प्राणी मरकर किरमनुष्यगति को प्राप्त होता है ।”

अब ध्यान, राजाने फिर पूछा,—“हे प्रभो ! उपर्युक्त बात मनुष्य की भी जाती क्यों बाँझा था ? कर्मने आत्मीय की ही बाँझीमें लुभे वल निराश को प्राप्तमें बाँझा था ।” मुनिने उत्तर दिया,—“हे राजन् ! इसका कारण यह है । मुनिने,—“श्रीशक्ति नाथक देवलोके में राज-—एक-हे वल सामानिक देवता है । उसकी आज्ञाप्रिया देवी, स्वर्गमी अंगुण हाथर कहीं मनुष्य मगई उलझन हुई । जब उस देवताकर्मके आज्ञा-एक देवताभक्ति इस देवताके स्वर्गमीने पूछा,— हे स्वामी ! इस विमान-में देवताके कर्मों को कौन उलझन हाता ? इस वल देवताभक्ति कदा,—‘आज्ञा कर्मों वल बाँझी है । कही आज्ञा कहीं जायेगी ।’ यह मनुष्य इस आज्ञाकर्मके देवताके वल बाँझा का कारण का इस कारणकी वलका कारणके जिसे कहीं जाता हुआ था । इसीलिए वह जिसे मन्द-मन्दम् आज्ञा मनुष्यकी वल बाँझी होता था । इस आज्ञाके कारण की निराशके लाल लुभ वल निराश किया था और कर्मों की उलझन में मनुष्य में ।”

गुरुका सुनाया हुआ बाधका यह वृत्तान्त सुन राजाको वैराग्य उत्पन्न हो आया और उन्होंने अपने पुत्रको गद्दी पर बैठाकर गुरुसे दीक्षा ले ली । वे हरिपाल राजर्षि संयमका पालन करते हुए सौधर्म-कल्पमें देवत्वको प्राप्त हुए ।

निपाद-यानरी-कथा समाप्त ।

“जैसे वह निपाद जीवहिंसा करके नरकको प्राप्त हुआ, वैसेही और जीव भी, जो पाप करते हैं, पापके प्रभावसे नरकको प्राप्त होते हैं । इस लिये हे याज्ञ ! तुमको भी जीवहिंसासे एकदम बाज़ आना चाहिये ।

यह सुन, उस श्येन (बाज़) यक्षी ने मेघरथ राजासे कहा,—“हे राजन् ! आपही सुखी हैं, क्योंकि आप इस प्रकार धर्म और अधर्मका विचार कर सकते हैं । यह कबूतर तो मेरे डरसे भागा हुआ आपकी शरणमें चला आया । अब आपही कहिये, सुधारुपिणी राजसीका सताया हुआ मैं किसकी शरणमें जाऊँ ? हे राजन् यदि आप सत्पुरुष हैं और किसी प्राणीकी पुराई करना नहीं चाहते, तो मैं भी भूखसे पीड़ित हो रहा हूँ, इसलिये हे दयालु ! मेरी आत्माकी भी रक्षा कीजिये । मैं भी भले-बुरे कर्मोंकी पहचान कर सकता हूँ, पर इस समय भूखसे वे तरह सताया हुआ हूँ, इसलिये क्या कर सकता हूँ ? कहा भी है, कि—

‘या मा रूपविनाशिनी स्मृतिहरी पञ्चेन्द्रियाकर्षिणी ।

चक्षुः श्रोत्रप्रसादशीनवरदी वैराग्यमन्यादिनी ॥

बन्धुनां त्यजनी विदेशगमनी चारिप्रतिषेधिनी ।

मा मे तिष्ठति संभूतदमनी प्रादापराती दुधा ॥ १ ॥

विषको हीर्षा धनो, विद्या संरक्ष सौम्यता ।

सत्यं च ज्ञाने नैव, दुधासंख्य शरीरितः ॥ २ ॥

प्रतिपन्ननापि प्राप्ते, सुख्येन दुःखिनीति ।

इत्यर्थे कीर्तिदाकोको, दृष्टान्तः भूयतां प्रभो ॥ ३ ॥”

अर्थात्—“ओ दुधा, रूपका नाश करनेवाली, स्मृतिका हार करनेवाली, धनो, विद्या संरक्ष करनेवाली, सौम्यता करनेवाली, सत्य और ज्ञान करनेवाली, दुधासंख्य करनेवाली, शरीरित करनेवाली, प्राप्ति करनेवाली, सुख्य करनेवाली, दुःख करनेवाली, इत्यर्थे कीर्तिदाकोको, दृष्टान्तः भूयतां प्रभो ॥ ३ ॥”

“नरदत्तने नित्य मयं, मुहा नगा वेदना नित्य ।

पंच तना नित्य जरा, दानिद सनो परामर्श नित्य ॥ १ ॥”

इयांत—“नृत्यके तनान नयकी वस्तु और कोई नहीं है । दुधा के तनान दूसरी कोई वेदना भी नहीं है । मुसाफिरीकी तरह तकलीफ़ बुझाने में नहीं होती और दखिताके तनान दूसरा कोई परामर्श (राज्य संकट) नहीं है ।”

“इसलिये हे मित्र ! तुम ऐसा कोई उपाय करो, जिससे मेरी यह तकलीफ़ दूर हो ।”

यह सुन, गङ्गदत्तने सोचा,—“इस दुष्टने इस कुरूपके सब जीवोंको तो खाही लिया, अबके मुझे भी खाया चाहता है । इसलिये चाहे जैसे हो अपनी जानकी तो इसके फन्देसे बचाना ही होगा ।” यही सोचकर गङ्गदत्तने प्रियदर्शनसे कहा,—“स्वामी ! मैं तुम्हारे लिये बड़ी-बड़ी नदियों में जाकर अपनी जातिके जीवोंको ला दिया करूंगा; पर मुझमें ऐसी शक्ति नहीं, कि वहाँ तक जा सकूँ, इसलिये यदि यह चित्रलेखा मुझे अपनी चौबसे पकड़ कर वहाँ पहुँचा दिया करे, तो तुम्हारी खुराक आनन्दसे पहुँच जाया करे ।” यह सुन, प्रसन्न होकर, उस सर्पने, अपने स्वार्थके लिये चित्रलेखा नामक मैनाको बैसी ही आज्ञा दे दी । तदनुसार चित्रलेखा, उसे चौबमें दबाये हुए ले चली और एक बड़ी भारी झीलमें जाकर छोड़ बायीं । वह मैदक तो उस झीलमें पहुँचकर चैनसे बैठ रहा । तब उसका अभिप्राय नहीं समझ कर चित्रलेखाने थोड़ी देर बाद भावाङ्ग लगायीं,—“माई गङ्गदत्त ! जल्दी चलो । स्वामी प्रियदर्शन बड़ी तकलीफ़ में हैं । इसलिये तुम अपने प्रतिज्ञानुसार उनका मनोरथ पूरा करनेके लिये जल्दी चलो ।” यह सुन, गङ्गदत्तने कहा,—“अरे मैना ! सुन—भूखा हुवा प्राणी कौनसा पाप नहीं करता ? झुधासे हाँस मनुष्योंके हृदयमें करुणा नहीं होती, इसलिये बहन ! तुम प्रियदर्शनसे जाकर कह देना, कि अब गङ्गदत्त उस कुरूपमें नहीं आनेका ।” इस प्रकार अपना अभिप्राय प्रकट कर उसने फिर कहा,—“बहन ! अब तुम भी

भाजसे उसका विश्वास न करना ।” यह सुन, वह मैना अपने खान-को लौट गयी ।”

“महाराज ! इस दृष्टान्तसे तो आप समझ ही गये होंगे, कि क्षुधार्तको हृदय-वृत्त्यका विचार नहीं होता । इसलिये आप मेरे आहारका प्रबन्ध कर दोजिये, जिससे मैं मर न जाऊँ ।” बाज़की यह बात सुन, राजाने कहा,—“माई ! यदि तुम मूखे हो, तो मैं तुम्हें ज़रूर भण्डेसे भस्मा भोजन दूँगा ।” इसपर उस बाज़ने कहा,—“हे महाराज ! मुझे तो माँसके सिवा और कुछ खाना अच्छा नहीं लगता ।” राजाने कहा,—“अच्छा, मैं कम्बालके यहाँसे माँस मँगवाये देता हूँ ।” पक्षीने कहा,—“महाराज ! यदि मेरी आँकोंके सामनेही किसी प्राणीके शरीरका माँस काटा जाये, तो उसी माँससे मेरी वृत्ति हो सकती है, दूसरे किसी माँससे नहीं ।” राजाने कहा,—“अच्छा, इसी कबूतरको तराजूपर रखकर, मैं इसीके तोलके बराबर अपने शरीरका माँस काट कर तुमको दूँगा ।” बाज़ इस बातपर राज़ी हो गया ।

इसके बाद राजाने एक तराजू मँगवाकर उसके एक पलड़े पर उस कबूतरको रखा और दूसरे पलड़े पर एक तेज़ छुरीसे अपने शरीरका माँस काट-काट कर रखने लगे । इस प्रकार क्यों-क्यों वे अपने शरीरका माँस काट-काट कर पलड़े पर रखने लगे, क्यों-क्यों वह कबूतर भी अधिकाधिक तौल वाला होता गया । यह देख, वे सार्वभौमिक राजा यह जानकर, कि वह कबूतर बहुत ज़ियादा वज़नका है, तुरन्त उस पलड़े पर बैठ गये । यह देख, सभी लोग हाहाकार करने हुए विशादके मारे कहने लगे,—“हे नाथ ! आप प्राण-त्याग करनेका नादम क्यों कर रहे हैं ? एक पक्षीके लिये आप हम सब लोगोंका भगवान क्यों कर रहे हैं ? यह तो कोई माया मायूम पड़नी है । नहीं ना आपके इतने बड़े शरीरका भार हम नन्हेंसे कबूतरके बराबर बँभे हो सकना है ?” लोगोंके इतना कहने पर भी, स्वयं जानी हाने हुए भी, राजाने, परंपराचार नियमोंके कारण—सरकनाके मारे—मरने जानका उन्मोह

शान्तिनाथ चरित्र



इसके बाद राजाने एक सराजू मँगवाकर उसके एक पल्ले पर उस का
रखा और दूसरे पल्ले पर एक तेज़ दुर्गिने अपने घीरका मोस का
कर रखने लगे ।

उतरते-उतरते दोनोंमें विवाद होने लगा । एकने कहा,—‘यह मनोहर रत्न मेरा उपार्जन किया हुआ है । दूसरेने कहा,—‘नहीं, मेरा उपार्जन किया हुआ है । तुम व्यर्थ ही लोभ क्यों करते हो ? इसी प्रकार विवाद करते हुए वे दोनों क्रोधमें आकर वहीं युद्ध करने लगे । लड़ते-लड़ते वे उसी नदीमें गिर पड़े और आर्षध्यानके साथ मृत्युको प्राप्त हुए । वे ही दोनों मरकर इस जंगलमें कबूतर और बाज़ हुए हैं । महाराज मैंने इन दोनोंको एक जगह इकट्ठे होकर लड़ते देखा, इसीसे इनपर अपना असर डाला ।

यह कह, राजाकी प्रशंसा कर, यह देवता अपने स्थानकी चले गये । राजा भी बहुत शरीर चाले हो गये । इसके बाद समासर्शोंने राजा मेघरथसे पूछा,—‘हे स्वामी ! ये देवता कौन थे ? और इन्होंने बिना किसी प्रकारके अपराधके ही इतनी माया फैलाकर आपको प्राण-सङ्कटमें क्यों डाल रखा था ?’ राजा मेघरथने कहा,—‘हे समासर्शो ! अगर तुम्हारे मनमें इस बातके जाननेका कौतूहल हो, तो जी लगाकर सुनो,—

‘‘इस मयके पूर्व, पाँचवें मयमें, मैं अनन्तरीय नामक वासुदेवका बड़ा भाई अपराजित नामक बलदेव था । उस मयमें दमितारि नामक प्रतिवासुदेव मेरा शत्रु था । मैंने उसकी पुत्रीका हरणकर उसे जानने मार डाला था । इसके बाद यह संसार-रूपी मरण्यामें भ्रमण करता हुआ, इसी भरत-क्षेत्रके अष्टापद-पर्वतके पास एक तपस्वीका पुत्र हुआ । यहाँ भक्षण-तप कर, आयुष्यका क्षय होने पर, मृत्युको प्राप्त हो कर, वह ईशान-देवलोकमें जा, सुरूप नामका देव हुआ है । जब इन्दुने समामें मेरी प्रशंसा की, तब पूर्व मयके घेरके कारण, इस देवको मेरी बड़ाई अच्छी न लगी और यह मेरी परीक्षा लेनेके लिये यहाँ आया । इसका जो कुछ गतीजा हुआ, यह तुम लोग देख लेंगे ।’’

यह सुनकर सब समासर्शोको बड़ा अचम्भा हुआ । उसी प्रकार उन दोनों पक्षियोंकी अपना और उस देवताका वृत्तान्त सुनकर जनि-

दीनों देवाङ्गनाथ हैं और तुमपर स्नेह हो जानेके कारण मोहित होकर तुम्हारे पास आ पहुँची है। इसलिये तुम हमारी इच्छा पूर्ण करो। हमारे पति देवेन्द्र हमारे यशमें हैं, तो भी हम तुम्हारे लावण्यसे मोहित हो, उन्हें छोड़कर तुम्हारे पास चली आयी हैं, इसलिये हे स्वामिन् ! आपको अवश्य हमारी प्रार्थना पूरी करनी चाहिये।” यह कह, वे रात भर तरह-तरहके अनुकूल उपसर्ग कर, उनके चित्तमें क्षोभ उत्पन्न करनेकी चेष्टा करती रहीं, पर राजा जरा भी विचलित न हुए। वे मेढ-पकै-तकी भाँति अचल बने रहे। यह देख, द्वार भ्रामकर उन दीनों देवाङ्गनाथोंने मेघराज राजाको ध्यानमें निमग्न जान, उनसे अपने अपराधकी क्षमा माँगी और उन्हें प्रणाम कर, उनके गुणोंकी प्रशंसा करती हुई अपने स्वामिन् की चली गयीं। प्रातः काल प्रतिभा और पौषपकी समानि कर, राजा मेघराजने विधिके साथ पारणा किया।

एक दिन राजा मेघराज, अपने सब स्वामन्तोके साथ, परिवार-वर्गसे घिरे हुए समामे बैठे हुए थे। इसी समय उद्यान-पालकने आकर मन्त्रिपूर्वक निवेदन किया,—“हे महाराज ! मैं आपको बधाई देना है। आज आपके नगरके उद्यानमें आपके पिता श्रीमन्महाराज जिनेश्वरने समय-भरण किया है।” यह सुन, राजाको बड़ा हर्ष हुआ,—“उनके रोम-रोम जिल गये। उन्होंने उम्मी समय आपके राक्षसकी हत्या की। इसके बाद वे कुमारी तथा दासी, घोड़ों, सामन्तों और माण्डविकों आदिके साथ बड़ी धूमधामसे श्रीजिनेश्वरकी चरणा करने गये। बड़ी पर्वच, मण्यारकी चरणा कर, सब साधुओंको प्रणाम कर, मन्त्रि-चिन्तकों सुवाचिन कर, वे उचित स्वामिन् बैठ रहे। इसी समय श्रीजिनेश्वरने सबको समान कान्ते प्रनिर्वाह देनेवाली धर्मदेवता इस प्रकार बुलायी,—

“हे मन्त्र प्राणियो ! श्रीजिनेश्वरकी पूजा करी, उनकी चरणा करी तथा नवीन ज्ञान प्रद्वन करनेमें ऐश्वर्यान्वी प्रयत्न नहीं करना। ॥१६॥ जो पुण्यवन्त ज्ञान, धर्म-कार्यमें प्रयत्न नहीं करते, उनका

यदि कष्ट भी आ पड़े, तो वह सूरराजकी तरह सुखका ही कारण हो जाता है ।”

जब प्रभुने ऐसी बात कही, तब गणधरने श्रीजिनेश्वरको नमस्कार कर विनयपूर्वक कहा,—“हे स्वामी ! वह सूरराज कौन था, जो धर्म-कार्यमें प्रमाद नहीं करता था ।” इस पर भगवान्ने कहा,—“हे भद्र ! यदि तुम्हें उसका चरित्र श्रवण करनेकी इच्छा हो, तो सावधान होकर सुनो ।

सूरराज (वत्सराज) की कथा

इसी जन्मद्वीपमें, भरतक्षेत्रके अन्तर्गत, क्षितिप्रतिष्ठित नामका एक नगर है । उसमें प्रजा-पालनमें तत्पर और गुण-रत्नोंके मन्दिर-स्वरूप धीरसिंह नामके राजा राज्य करते थे । इन राजाके शीलरूपी अलंकार-को धारण करनेवाली और इनके बाँये भङ्गकी अधिकारिणी धारिणी नामकी स्त्री थी । एक दिन रानी, स्वप्नमें अपने आगे-आगे देवेन्द्र-को जाते देख, जग पड़ी । प्रातः काल रानीने इस स्वप्नकी यात अपने स्वामीसे कही । राजाने अपने मनमें इस स्वप्नका विचार कर कहा,—“इस स्वप्नके प्रभावसे तुम्हें पुत्र होगा; परन्तु चूँकि तुमने देवेंद्रको जाते देखा है, इसलिये वह पुत्र कुछ चंचल चित्तवाला होगा ।” इसके बाद क्रमसे गर्भका समय पूरा होने पर रानीके एक पुत्र उत्पन्न हुआ । माता पिताने स्वप्नके अनुसारही उसका नाम ‘देवराज’ रखा । वह कुमार धीरे-धीरे बड़ा हो चला । इसी समय रानीने एक दिन फिर स्वप्नमें शंखके समान उज्ज्वल, पुष्ट शरीरवाला और अपनी गोदमें बैठा हुआ एक कृष्णदेखा । सबेरे ही उठकर रानीने इसका हाल राजाको सुनाया । रानीने कहा,—“हे स्वामी ! आज मैंने सुख-सेज पर सोते-सोते सपने-में कैलास-पर्वतकी तरह उज्ज्वल एक कृष्ण देखा है । भला इस स्वप्न-

कि प्रभावसे मुझे कौनसा फल प्राप्त होगा ? ” राजाने विचार कर उत्तर दिया,—“दे देवी ! इस स्वप्नके प्रभावसे तुम्हें पुत्र होगा और वह राज्यकी धुराधारण करनेवाला तथा परम माग्यवान् होगा । ” इस प्रकार स्वप्नका फल सुनकर धारिणी देवी बड़ी प्रसन्न हुई । क्रमसे समय पूरा होने पर शुभ मुहूर्तमें रानीके पुत्र पैदा हुआ । बालक जब दस दिनोंका हुआ, तब राजाने अपने सत्र स्वजनोंको बुलवा कर, उन्हें भोजन तथा धन और ताम्बूल आदि दे, सम्मानित कर, उन लोगोंके सामनेही स्वप्नके अनुसार उस पुत्रका नाम वत्सराज रखा । वह भी धीरे-धीरे बढ़ता हुआ आठ वर्षका हो गया । तब राजाने उसको सूत्र बुझियाला जान कर, उसे कालाचार्यके पास पढ़नेके लिये भेजा । वही उसने सत्र कलाओंका अभ्यास कर लिया ।

एक बार राजा धीरनिह शरीरमें बाह अथवा महाभ्याधियाँ हो जानेके कारण बड़े दुःखित हुए । सारा राज-परिवार उन्हें इस प्रकार विषम रोगसे पीड़ित देख, परम दुःखित हो गया । उस समय सत्र लोग इकट्ठे होकर विचार करने लगे — ‘अथवि राजकुमार देवराज उमरमें बड़े हैं, तथापि गुणोंके कारण यह वत्सराजही बड़े हैं’ । इसलिये यदि वत्सराजही राजा हों तो बहुत अच्छा है । ” लोगोंकी यह बात सुन, देवराजने एक मन्त्रीको अपने मेलमें लाकर, हाथी घोड़े और पैदल सैनिकोंको अपनी मुट्ठीमें कर लिया । लोगोंके मुँहसे यह वृत्तान्त सुन, बीमार होने पर भी, धीरनिह राजाने कहा,— “ओह ! उस मन्त्रीने बहुत बुरा किया; क्योंकि राज्य पर बैठनेके योग्य तो वत्सराज ही है— देवराज योग्य नहीं है । पर मैं ऐसी हालतमें पड़ा हूँ, इसलिये क्या करूँ, कुछ समयमें नहीं आता । ” यही कह कर राजा, मायु सत्र होनेके कारण मृत्युको प्राण हो गये । इसके बाद सत्र लोगोंकी मर्जीके नित्याङ्क देवराजने पिताकी गद्दीपर दण्ड जमा दिया । विनयादि गुणोंसे युक्त वत्सराज, देवराजको पिताकी तरह मानने हुए, उन्हें प्रणाम करते और तरह-तरहसे उनका आदर-सम्मान करने । देवराजके पस-

जाना बड़ा कठिन है । इसके सिवा मेरा देवराज भी तो तुम्हारे ही पुत्र है । इसलिये तुम इन्दीके पास सुझसे पड़ी रहो ।” रानोने कहा,— “बेटा ! मैं तो तेरे ही साथ चलूँगी । जो देवराज तेरी बुराई करता है, उससे मेरा कुछ भी प्रयोजन नहीं है ।” यह कह, धारिणादेयी भी वत्सराजके साथ जानेको तैयार हो गयी । देवराजने उन लोगोंके लिये रथ या भीर किसो सवारोका प्रयत्न नहीं किया । इसीलिये वेचो भी वत्सराजके साथ-साथ पैदल ही चल पड़ीं । उस समय राजाने लोगोंको बुझा दिया, कि जो कोई वत्सराजके साथ जायेगा वह मारा जायेगा । यह कह उन्होंने उनके परिवारका भी उनके साथ जानेसे रोक दिया । उस समय सारे नगरमें हाहाकार मच गया । सारे नगरमें ऐसा एक भी मनुष्य नहीं था, जिसे वत्सराजको दूसरे देशमें जाते देख, दुःख नहीं हुआ हो । लोग वत्सराजके सीमाव्यक्तिके निमित्त कहने लगे,— “भाजही यह नगर भनाथ हो गया । मानों राजा वीरसिंहको भाजही मृत्यु हुई है । अब ज़रूर यहाँकी प्रजापर आफत भायेगी ।” प्रजापरीकी ऐसी-ही ऐसी बातें सुनते हुए वत्सराज नगरसे बाहर हो गये ।

भयनी माना और मासीके साथ धीरे-धीरे भागे बढ़ते हुए वत्सराज मालवा-देशके उज्जयिनी नामक नगरीमें आ पहुँचे । यहाँ जितराज राजा राज्य करते थे । उनकी पटरानीका नाम कमलभी था । यहाँ नगरके बाहर, मार्गमें पैदल चलते-चलते यकी हुई । वृक्षकी छायामें बैठ रही और विचार करने यह क्या कर डाला ? मैं वीरसेन रा-

भयलामें क्यों पड़ गयी ।

उनकी बहन चिमला,

नगरमें गयी ।

सड़के घरका रास्ता देख,

पाँचपाँचों सेठका बैठे

कौन कौन और

रानेमें

लिखे

! मैं,

जाना बड़ा ही कठिन है । इसके सिवा मेरा देवराज भी तो तुम्हारे ही पुत्र है । इसलिये तुम इन्हींके पास सुखसे पड़ी रहो ।” रानोने कहा,— “पेशा ! मैं तो तेरे ही साथ चली गी । ओ देवराज तेरी सुराई करता है, उससे मेरा कुछ भी प्रयोजन नहीं है ।” यह कह, धारिणीदेवी भी यत्सराजके साथ जानको तैयार हो गयी । देवराजने उन लोगोंके लिये रथ या भीर किसी सपारीका प्रयत्न नहीं किया । इसीलिये देवी भी यत्सराजके साथ-साथ पैदल ही चल पड़ी । उस समय राजाने लोगोंको बुझा दिया, कि ओ कोई यत्सराजके साथ जायेगा, यह मारा जायेगा । यह कह, उन्होंने उनके परिवारको भी उनके साथ जानसे रोक दिया । उस समय सारे नगरमें हाहाकार मच गया । सारे नगरमें ऐसा एक भी मनुष्य नहीं था, जिसे यत्सराजको दूसरे देशमें जाते देख, दुःख नहीं हुआ हो । लोग यत्सराजके सौभाग्यके निमित्त कहने लगे,— “माजही यह नगर बनाध हो गया — मानों राजा धीरसिंहकी माजही मृत्यु हुई है । भव ज़रूर यहाँकी प्रजापर आफ़न आवेगी ।” प्रजापरगकी ऐसी-ही ऐसी बातें सुनते हुए यत्सराज नगरसे बाहर हो गये ।

मगनी माता और मासीके साथ धीरे धीरे भागे बढ़ते हुए यत्सराज माजवा-देखके उज्जयिनी नामक नगरीमें था पहुँचे । यहाँ क्लिरातु राजा राज्य करते थे । उनकी पटरानीका नाम कमलध्री था । यहाँ नगरके बाहर, मार्गमें पैदल चलते-चलते यकी हुई धारिणी देवी, एक वृक्षको छायामें बैठ रही और विचार करने लगी,— “हा देव ! तुमने यह क्या कर डाला ! मैं धीरसेन राजाकी प्राणप्रिया होकर भी ऐसी कष्टायक मयलामें क्यों पड़ गयी ?” वे ऐसा ही विचार कर रही थीं, कि अन्तमें उनकी बहन चिमला, धारिणीकी भाभा जे, रहनेकी जगह दूँइनेके लिये नगरमें गयी । नगरके लोगोंको देखने-देखने यह क्रमशः सोमरुत नामक सेंटके घरका रास्ता देख, उसीमें पुन पड़ी । यहाँ शम्भुमूर्ति और परांगकाटी सेंटकी बेटे देख, उन्होंने ब्रह्म-वक्त्रोंसे कहा,— “सेंटजी ! मैं, मेरा बहन और इसका पुत्र—ये तीनों परदेहो यहाँ गये पहुँचे हैं । यदि

इसके बाद घटसराज संध्यातक वहीं रह गये । इसीलिये तब गाढ़-बछक, कोई रसवाला न होनेके कारण, भापसे भाप झुण्ड बांधे समयसे पहलेही घर चले भाये । यह देख, सेठने विमला और धारिणी-से पूछा,—“भाज ये जानवर इतनी जल्दी घर कैसे चले भाये ! इसका क्या कारण है ? तुम्हारा पुत्र अभी तक भाया है या नहीं ?” यह सुन, विमलाने कहा,—“इन बछरोंके इतनी सिद्दीसी घर चले भानेका कारण तो मैं नहीं जानती, पर घटसराज अभी तक घर नहीं भाया है ।” इतनेमें साँझको घटसराज घर लौटे । उनकी माता और मासीने पूछा,—“बेटा ! भाज तूने इतनी देर कहाँ लगायी ?” उन्होंने कहा,—“हे माता ! बछड़ोंको घरले छोड़कर मैं सा गया था । किसीने मुझे जगाया ही नहीं, इसलिये जब भापसे भाप नींद खुली, तब चला भाया हूँ ।” इसपर ये दोनों बहनें कुछ न बोलीं । इसके बाद दूसरे दिन भी यह कला-न्यासमें ही भटकें रह गये, इसलिये उस दिन भी गाढ़-बछक ऊँटोंसे घर भा गये । तीसरे दिन भी वही हाल हुआ । तब सेठने विमला और धारिणीको चेलावनी देते हुए कहा,—“घटसराज रोज़ इन गाढ़-बछड़ोंको छोड़कर न जाने कहाँ चला जाता है । जानवर रोज़ समय-से पहले ही घर चले भाते हैं ।” यह सुनकर, ये उस दिन घटसराजके घर आतेही आँधके साथ बोल उठी,—“बेटा ! क्या तू यह भूल गया है, कि हम इन प्रदेशमें आकर परायेके घर नौकरी कर रहे हैं ? हमें भोजन में बड़ो मुश्किलोंसे मिल रहा है । ऐसा अवस्थामें तू हम लोगों-को धार्ते क्यों मुनवाना है ?” यह सुन, घटसराजने अपनी मासासे कहा,—“तुम साग सेठसे कह देना, कि जब मैं बछड़ोंको घरानेके लिये नहीं ले जाऊँगा ।” यह सुन, उसका मताने सेठने आकर कहा,—“मेरा पुत्र अभी बालक है । इसलिये ऊँटदुपके कारण जेल-दुख करने लगता है । इनसे जानवरोंकी बरवादा माली भाँति नहीं बन पाती, हम दोनोंने उससे आज्ञा कहा, पर वह ऊँटदुपके मारे कुछ मुन्हाटा नहीं ।” उन दोनोंने जब यह बात रा रोकर कहा, तब दया

भा जानेके कारण उस सेठने उनसे कहा,—“बालक ऐसेही मनमौजी हुआ करते हैं।” यह सुनकर वे दोनों चुप हो रह्यो ।

अब तो घत्सराज रोज़ सवेरे उठकर उन्हीं राजकुमारोंके पास पहुंच जाते और कलान्यास करते । उनका खाना-पीना भी वहीं होता । एक दिन उनको माताने उनसे पूछा,—“येटा ! तू आजकल रोज़ सांझ तक कहाँ रहता है ? कहाँ जाता है ? और क्या खाता है ?” इस बार उन्होंने कहा,—“मैं वहीं जाता हूँ, जहाँ राजाके लड़के हथियार चलाना सीखते हैं । मैं भी उन्हींके साथ कलान्यास करता हूँ और वहीं खाता-पीता हूँ ।” यह सुन, उनकी माता-धारिणोंने आँखोंमें आंसू भर कर कहा,—“पुत्र तू हम लोगोंकी चिन्ता क्यों नहीं करता ? येटा ! इस समय अपने घरमें ईधन भी नहीं है, इसलिये कहींसे ला दे, तो ठीक हो ।” माताकी यह बात सुन, घत्सराजने कहा,—“माता ! तुम सेठने यहाँसे कुल्हाड़ी और काँवर लाकर मुझे दो, तो मैं जङ्गलमें जाकर लकड़ी काट लाऊँ ।” यह सुन वह कुल्हाड़ी आदि माँग लायो । दूसरे दिन सवेरे बहुत जल्दी उठकर वह कुल्हाड़ी आदि लिये हुए घने जङ्गलमें चले गये । वहाँ तरह-तरहके वृक्षोंको देखकर उन्होंने विचार किया,—“यदि कहीं चन्दनका पेड़ मिल जाये, तो उसकी लकड़ी बेचकर मैं अपनी दरिद्रता दूर कर दूँ और माता तथा मासोंकी इच्छा पूरी करूँ ।” यही विचार कर वह उस जंगलमें चारों ओर घूमने लगे । घूमते-घूमते उन्होंने एक देवमन्दिर देखा, जिसमें एक प्रभावशाली यक्षकी प्रतिमा थी । उसे प्रणाम कर वह खड़े हो गये, कि इतनेमें दूरसे सुगन्ध आती मालूम पड़ी । तब उन्होंने सोचा,—“अवश्य ही इस वनमें कहीं चन्दनका पेड़ है ।” ऐसा विचार कर वह बढ़े शौफ़से उस वनके चारों ओर घूम-घूमकर देखने लगे । इतनेमें उन्हें एक स्थान पर सर्पोंसे घिरा हुआ एक चन्दनका पेड़ दिखाई पड़ा । यह देख, उन्होंने बढ़े साहससे उस पेड़के पास जाकर उसे हिला-हिला कर सब सर्पोंको भगा दिया । यह वन एक यक्षका था, इसलिये पहले कोई यहाँ चन्दनका पेड़ नहीं काटता था । परन्तु चूँकि घत्सराज बढ़े

ज़रा भी न डरा । वे विद्याधरियाँ भी यक्षके मयके मारे किवाड़ तोड़ कर भीतर नहीं जा सकती थीं, इसलिये बाहरसे बोलती रहीं । इसके बाद उन्होंने सोचा,—“मालूम होता है, कि यह रातभर यहाँ रहेगा, इसलिये नगरमें खलकर इसके नामादिका पता लगाना चाहिये, क्योंकि इसका कोई-न-कोई सगा-सम्बन्धी तो होगा ही, जो इसे रातको न भापा देना रो रहा होगा । तभी इसको बाहर बुला लानेमें भासानी होगी ।” यही सोचकर वे दोनों विद्याधरियाँ आकाशमार्गसे नगरमें खली बायीं और धारों ओर जोह-डोह लेने लगीं । इतनेमें उन्हें एक स्थान पर धारिणी और विमला घंठी हुई दुःखके साथ पुरका नाम ले-लंकर रोती दिखाई पड़ीं । वे कह रही थीं,—“हाय ! यीरसेन राजाके पुत्र पवित्र-चरित्र-वाले कुमार पत्सराज तेरी यह क्या गति हुई ! पहले तो तेरा राज्य छीना गया, इसके बाद तू परदेशी बना, पराये घरमें आकर रहा, कहसे भोजन मिलता रहा, इतनेपर भी भाज दम अभागिनिषोंने तुझे न जाने क्यों ईधन लानेके लिये भेजा, भाज तू अभीतक झोड़कर क्यों नहीं भाया !” इनकी यह बात सुन, वे विद्याधरियाँ फिर उसी देवमन्दिरमें बसी भायीं और वरसराजकी माता तथा मासीकी सी भाषाज़में बोली—“हे वरसराज ! हम दोनों तुझे सारे शहरमें खोजती-दुँदुती तैरे पियोग-के दुःखसे दुःखी होकर यहाँ आ पहुँची हैं । इसलिये जल्द बाहर आ और हमें अपना मुकड़ा दिखला ।” यह सुन, मन्दिरके भीतर बैठे हुए पत्सराजने सोचा,—“इस समय मेरी माँ और मासीका यहाँ आना क्यापि सम्भव नहीं है । यह उन्हीं विद्याधरियोंकी भाषा है । यह कपट-रचना उन्होंने भंगियाके ही लिये की है ।” ऐसा विचार कर, वे खुरासें छुप रह गये । उन्होंने कुछ भी उत्तर नहीं दिया । कमसे कुर्यो-दप हो भापा और वे विद्याधरियाँ बिह्वले-बिह्वले हारकर घर बसी गयीं ।

इसके बाद किवाड़की मज्दसे उज्ज्वल भाता देव, वरसराज किवाड़ खोलकर बाहर निकले और कन्दन-वृक्षके कोटरमें उस कंबुकी (भंगिया)

उत्पन्न हुए हो ? तुम्हारे पिता कौन हैं और तुम्हारी जन्मभूमि कहां है ?” यह सुन, घत्सराजने कहा,—“अभी आप मुझसे मेरा परिचय न पूछिये, समय आनेपर मैं स्वयं सब कुछ कह दूंगा ।” जब उन्होंने ऐसा कहा, तब राजकुमारोंने उनका मतलब समझकर, ऊपरसे कुछ भी जाहिर न करते हुए, घत्सराजका बड़े प्रेमसे भोजन-वस्त्र आदि देना आरम्भ किया ।

एक दिन आचार्य, उन सब राजकुमारोंको साथ ले, घत्सराजको भी अपनी मण्डलीमें शामिलकर, राजाके पास भाये । वहाँ भा, कुमार राजाको प्रणामकर, उचित स्थानपर बैठ रहे । राजाने घत्सराजको भजनकी समझकर कुमारोंसे पूछा,—“पुत्रो ! तुम्हारे साथ यह नया लड़का कौनसा है ?” उन्होंने कहा,—“इनको हमलोगोंने अपना कंधु बना रखा है ।” इसके बाद राजाने कलाचार्यसे पूछा,—“यह किसका पुत्र है ? इसकी कला-कुशलता कैसी है ?” यह सुन, कलाचार्यने कहा,—“महाराज ! मुझे इस लड़केके कुल आदिका बिलकुल पता नहीं है ; परन्तु इसकी कला-कुशलता ऐसी है, कि कोई इसकी बराबरीका नहीं दिखलाई देता ।” यह सुन, राजाने पहले सब राजकुमारोंकी परीक्षा ली । इसके बाद उनकी भाइसे घत्सराजने भी अपनी कुशलता उनपर प्रकट की । राजाने उनकी विद्वानकला और चतुराईका चमत्कार देख, उनसे कहा,—“हे पुत्र ! तू अपने कुलका मुझे परिचय दो ; क्योंकि छिपे हुए मोतीका कुछ मूल्य नहीं होता । यह सुन, घत्सराजने सोचा,—“पूर्वाचार्यने कहा था, कि—

‘प्रस्ताने भाषितं वाक्यं, प्रमत्ताने दानमंगितम् ।

प्रस्ताने कृष्टि रक्षाऽपि, भवेत्कोटिधनप्रदा ॥ १ ॥’

अर्थात्—“समयपर बोला हुआ थोडासा वाक्य, समयपरचित्तकीये दिया हुआ थोडासा दान और समयपर होनेवाली थोड़ीसी बर्षा भी करोडगुना फल देनेवाली होती है ।”

‘अपदितपदितानि पदयति, अपदितपदितानि जर्मेरीकृतं ।

विधिरेव तानि पदयति, यानि पुमान्नेव क्लृप्तयति ॥ १ ॥’

अर्थात्—“विधाता बनहोनीको होनी कर देता और होनीको बनहोनी कर देता है । वह ऐसेही काम किया करता है, जिनको मनुष्य कभी कल्पना भी नहीं करता ।”

“प्यारी बहनो ! तुम दोनों यहाँ आकर भी क्यों छिपी रहों ? कहीं देशयागसे इस दुःखमें पड़ जानेके कारण सज्जाके मारे तो नहीं छिपी पड़ी रहों ? भयया मैं ही भभागिनी हूँ, इसीसे तुम हमारे नगरमें पुत्र सहित आकर रहों और मैंने ज़रा भी यह हाल नहीं जाना । अब अधिक कहनेसे क्या ?

‘यत्राण्य नम्रवर्येव, नातिं करोम्यमनुष्यम् ।

गम्याम्ये गमयत्येव, गत्रभुजकपित्थवरम् ॥ २ ॥’

अर्थात्—“वेसे नारियलके फलमें आपसे आव पानी भर जाता है, वेसेही जो होना होता है, वह तो होकर ही रहता है । और जो जानेवाला होता है, वह हाथीके साथे हुए बैथके फलकी तरह योंही बला जाता है—रहता नहीं ।”

“यहो समझ कर मनुष्यको मनमें चिन्ता नहीं आने देनी चाहिये ; क्योंकि कहा है, कि—

‘दुःख-दुःखानां न कोऽपि, कर्ता इती कल्पयितुं युक्तः ।

इति चिन्तय मनुष्या, गुराकृते भुज्यते कमे ॥ ३ ॥’

अर्थात्—“इस ससारमें कोई किसीका सुख-दुख नहीं देता, न हान कर सकता है । भुजमें या दुःखमें मनुष्य अपने पूर्वज्जन्मकी ही दण्ड भोगता है । ऐसी सदबुद्धि रखनी चाहिये ।”

‘अथ येन युष्माकमभिव्यक्तिरिति अथावदभारहोरे ।

नित्यपुनरुद्वाच्यतागदने विप्रः महाभारत ॥

यदा येन कथाव्यक्तिपुनरुद्वाच्यतागदने विप्रः ।

भूते आद्यवर्गः निरव्ययः गम्यते कमे यत्तु कमे ॥ ४ ॥’

वत्सराज हाथमें धनु बिये, राजाके शयन-मन्दिरके बाहर भद्रपसे कड़े हो रहे । आधी रातको राजाकी नींद टूट गयी । उसी समय उन्हें दूरसे भाती हुई किसी दुखिया लीके कण्ठ-स्वरसे रोनेकी आवाज़ सुनाई दी । सुनते ही राजाने पहरेदारोंको पुकारा, पर वे नींदमें बे-क़ाबर पड़े हुए थे, इसलिये किसीने कुछ उत्तर नहीं दिया । वत्सराज-ने कहा,—“हे स्वामी ! जो कुछ दुःख हो, कहिये, मैं बत्ता लाऊँ ।” राजाने कहा,—“हे वत्सराज ! क्या भाऊ मैं तुम्हें घर जानेकी छुट्टी देना भूल गया ?” उन्होंने कहा,—“हाँ ।” तब राजाने फिर कहा,—“वत्सराज ! इस समय मुझे तुमको भावा नहीं देनी चाहिये ।” वत्सराजने कहा,—“स्वामी ! आपकी भावाके अनुसार कार्य करनेमें मुझे कोई लज्जा छोड़े ही है ? जो कोई काम हो, कहिये, कर लाऊँ ।” तब राजाने कहा,—“बेटा ! सुनो—यह जो दलार्ह सुनाई दे रही है, यह किसकी है और यह क्यों रो रही है, इसे जाकर देख मामो और उससे पूछ कर मुझे भ्रबर दो । सायही उस राती हुई लीकी इस तरह छाती फाड़ कर रोनेसे मना कर दो ।” यह सुन, राजाकी बात स्वीकार कर, वत्सराज उसी दलार्हके शम्शकी लीध पर झिल्लेसे बाहर हो, नगर-बाहर स्मशान-भूमि तक चले गये । यहाँ एक स्थानमें उत्तम-यत्नों तथा अलङ्कारोंसे विभूषित एक लीकी बेड़े-बेड़े राते देख, उन्होंने उसके पास जाकर पूछा,—“हे मुझे ! तुम क्यों हो ? इस स्मशानमें आकर क्यों रो रही हो । यदि बात छिपाने आवश्यक न हो, तो अपने दुःखका कारण मुझसे कह सुनाओ ।” इसके उत्तरमें उस लीकेने कहा,—“नाई ! तुम जहाँसे आये हो, वहीं चले जाओ । तुमसे मेरा काम नहीं हो सकता । इसलिये तुम व्यर्थ ही क्यों मेरी छिन्नामें पड़ने हो ।” वत्सराजने कहा,—“तुम्हें दुःखी देखकर मो मैं क्योंकर वहाँ से चला जाऊँ ? क्योंकि मले भावमी पराये दुःखसे दुःखित होते हैं ।” यह सुन, उस लीकेने कहा,—“जियो-किसीसे अपना दुःख कहना नहीं चाहिये ; क्योंकि कहा है,—

से अंकुशके बशमें रहता है । तो इससे क्या अंकुश हाथीके बराबर होगया ? जलता हुआ छोटासा चिराग घनी अधियारीको दूरकर देता है । तो क्या दीपके बराबर ही अन्धकार होता है ? वज्रके मारमें बड़े-बड़े पर्वत भी गिर पड़ते हैं । तो क्या पर्वत वज्रकीही तरह छोटे-छोटे होते हैं ? नहीं—ऐसा नहीं है । जिसमें तेज विराजमान होता है वही पल्लवान् होता है । केवल मोटे-ताजे होनेसे ही उसके बलका आरोप नहीं करना चाहिये ।’

‘सिंहः विशुषि विपत्तिं, मर्मापिनकपोलमिति तु मतेषु ।

प्रकृतित्वं मरुचक्रां, न मत्सु वयन्तत्रसो हेतुः ॥ १ ॥’

अर्थात्—‘सिंह बालक होनेपर भी, कपोल-प्रदेशसे मद पुमाने-वाले हाथीपर ही पड़ता है । इससे सिद्ध होता है, कि पराक्रमी जीवों-की ऐसी प्रकृति ही होती है, इसलिये अस्वातेजका कारण नहीं है ।’

“अतएव हे मुग्धे ! तुम मुझे बालक समझकर मेरी अभयता न करो । तुम्हें जो दुःख हो, यह मुझसे कहो । मुझसे जहाँ तक बन पड़ेगा, वहाँ तक मैं तुम्हारा दुःख दूर करनेकी चेष्टा करूँगा ।”

यह सुन, यह ली ज़रा मुस्कराकर बोली,—“हे पुण्य ! मेरे दुःखका कारण सुनो । मैं इसी नगरके रहनेवाले एक भय्यं भादमीकी ली हूँ । मेरे उस युवा पतिको यहाँके राजाने निरपराध सूलीपर चढ़ा दिया है । अभीतक ये सूलीपर लटकें हुए भी जी रहे हैं और घेर घेर जाने की बड़ी इच्छा प्रकट कर रहे हैं । इसलिये मैं उनके पास्तो परसे घेर बना लायी हूँ, पर सूली इतनी ऊँची है, कि मैं यहाँतक पहुँच नहीं पाती । इसीलिये मैं अपने पतिको बाढ़-कर-करके रो रही हूँ, क्योंकि शिरोंका बल तो रौनाही है ।”

यह सुन, वात्सराजने कहा,— “अरे ! तुम मेरे कन्धपर चढ़कर अपनी इच्छा पूरी कर लो ।” यह सुनतेही वह दुष्ट भविष्यवाली स्त्री, वात्सराजके कन्ध पर चढ़कर सूलीपर चढ़े हुए मनुष्यकी देखते मंस



मासीको तो उसी भोटनीके मुकाबलेकी भंगिया भी चाहिये ।" यह सुन, वत्सराजने कहा,— 'स्यामिन् ! यदि भागकी कुरा होगी, तो वह भी मिल जायेगी ।' यह कह, वह नगरसे बाहर जा, उसी चन्द्रनके दृष्टिके कोटरसे वह रत्न-जड़ित भंगिया निकाल लाये और राजाके हवाले करते हुए उसका भी वृत्तान्त उनसे कह दिया । राजाने भंगिया रानीको दे दी । उन्होंने हर्षित होकर उसे उसी समय पहन लिया । इसके बाद भोटनी और भंगियाके मुकाबलेका घाँघरा न देखा, रानीका खिल वड़ा घेघेन होने लगा । शास्त्रकारोंने ठीक ही कहा है, कि ज्यों-ज्यों काम होता है, त्यों-त्यों लोभ बढ़ता जाता है ।"

एक दिन राजाने रानीको चेहरा उदास किये देखकर पूछा,— "प्रिये ! अब तो तुम्हें मन लायक भंगिया मिलही गयी, फिर क्यों मुँह उदास किये हुए हो ?" रानीने कहा,— "इसीके मुकाबलेका घाँघरा भी तो चाहिये ।" यह सुन, राजाने सोचा,— "भोह ! भगवन्तुदा स्त्रियोंको वस्त्रों तथा भलकुत्तोंसे कभी नृत्ति नहीं होता । कहा है, कि—

‘अप्रियं यमो राजा, समुद्र रत्नं स्त्रियः ।

अनुता नैव नृप्यन्ति, वाच्यं च दिने दिने ॥ १ ॥’

- यथात्,— "अप्रिय, साम्राज्य, यम, राजा, समुद्र, उदर और प्रियी कदापि नृत्त नहीं होती । वे दिन-दिन नयी-नयी कमियों करने लगी हैं ।"

स्त्रियोंका ऐसा ही स्वभाव होता है, यही मोक्ष कर राजाने कहा,— "विचखहीन रानी ! जो भोज मौजूद नहीं है, उसके लिये भयं हाव-भाव न करो ।" यह सुन, रानीको हिल और जोर पकड़ गयी । उन्होंने कहा,— "अब मुझे समी भोटनी और भंगियाके मुकाबलेका घाँघरा मिलेगा, तब मैं अच-कल प्रह्व चढ़ूँगी ।" यह कह, रानी अपने मद-त्ये चली गयी । इसके बाद राजाने कर्मगणको बुलाकर कहा,— "हे मदनो तुम्हें तो ही उलझ दिख कल्लाकर बड़ा लज्जेर कर दिया । अब तुम ही बिना लह-कामो कामाको राजी करो । बिना मुँहरे और

उसे देख, उसके सेवकके समान मालूम पड़नेवाले एक पुरुषसे वत्स-राजने पूछा,—“हे भाई ! यह कौनसा नगर है ? यहाँका राजा कौन है ?” उसने कहा,—“न तो यह कोई नगर है, न यहाँका कोई राजा है । परन्तु जो कुछ है, वह सुनो,—

“इस स्थानसे थोड़ी दूरपर भूतिलक नामका एक नगर है । इसमें घैरीसिंह नामका राजा राज्य करता है । उसमें दत्त नामका एक सेठ रहता है । उनकी पत्नीका नाम श्रीदेवी है । उसके गर्भसे उत्पन्न, द्रव-सावर्ण्यसे युक्त श्रीदत्ता नामकी एक पुत्री है । वह पुत्री युवावस्था-को प्राप्त हो गयी है, पर उसका शरीर भूत दोगसे प्रसक्त हो रहा है, इस-लिये जो मुख्य रातको उसके पास पहरे पर रहता है, वह मर जाता है और यदि उसके पास पहरेपर कोई नहीं रहता, तो नगरके सात भाइयों मरते हैं । ऐसा होनेके कारण एक दिन राजाने उस सेठको बुलाकर पूछा,—“सेठजी ! मैं तुम्हें आज्ञा देता हूँ, कि यह नगर छोड़ कर जंग-लमें चले जाओ; क्योंकि तुम्हारी सङ्गीके करते हमारे नगरके लोग मरते जाते हैं ।” राजाकी यह आज्ञा पाकर, सेठ अपने परिवारके साथ यहीं चला आया और चोर घोरहसे अपनी रक्षा करनेके लिये किले सहित यह महल बनाकर यहाँ रहता है । उसीने ढेर-का-ढेर धन देकर ये पहरेदार रखे हैं । ये लोग महलके चारों ओर बने हुए छोटे छोटे घटोंमें रहते हैं । इन पहरेदारोंके नामसे गोलिएया बनाकर रखी है । जिस दिन जिसके नामकी गोली निकलती है, उस दिन रातको वही पहरेदार सेठकी बेटीके पास रहता है और रातको मर जाता है । हे पणिक ! यदि यह हाल सुनकर तुम्हें डर मालूम होता हो, तो तुम अभी यहाँसे कहीं और चले जाओ,”

यह बातें सुन, वत्सराज सेठके पास आये । उन्हें देख, दत्त सेठने उन्हें आसनपर बैठाते हुए गान दिया और भावुरके साथ पूछा,—“वत्स ! तुम कहसि आ रहे हो ?” वत्सराजने कहा,—“मैं एक कामसे उज्जयिनी-नगरीसे चला आ रहा हूँ ।” कुमार वत्सराज सेठके साथ

इसी प्रकार बतते कर रहे थे, कि इतनेमें एक धेनु बछड़ापैसे सुगो-
मित पुरुष जहाँ आया । उसके चेहरेका रंग उड़ा हुआ था । यह देख,
वत्सराजने बैठते पूछा,—“तेजजी ! इस आदमीका चेहरा इतना उदास
क्यों दिखाई देता है ?” यह सुन, तेजने लम्बी साँस लेकर कहा,—
“हे सुन्दर ! अत्यन्त गुप्त रहने लानक हो, तो नो यह वृत्तान्त मैं तुमसे
कह सुनाता हूँ । मेरे एक पुत्रों हैं । उसके पास हर रातकी एक
पड़ोहार रहता है । वह अत्यन्त ही अत्यन्तसे उसी रातकी मारा
जाता है । आज इसी बेचारेके पड़ोहों मारी हैं, इसलिये इसका चेहरा
उदास हो रहा है : क्योंकि मृत्युसे लड़कर मरकी बात दूसरी नहीं
है ।” यह सुन, वत्सराजने कहा,—“तेजजी ! आज इस आदमीकी
तबन्द घर रहने झाँकिये । आज मैं ही आपकी पुत्रों पर पड़प दूँगा ।”
यह सुन, तेजने कहा,—“हे वत्स ! तुम आज अतिथिको तरह मेरे घर
आये हो । अनन्तक तुमने मेरे घर जीवन भी नहीं किया । फिर
बर्षाही मृत्युकी आतिथ्य करने क्यों आ रहे हो ?” तेजकी यह बात
सुन, वत्सराजने कहा,—“तेजजी ! मुझे परोपकार करनेकी लगनसी
है । इसलिये मैं तो आज यह काम ड़कर आईया ; क्योंकि मनुष्य-
जनक सार परोपकार ही है । यह मैं भी कहूँ हूँ—

अनन्तं नमो नूनमुत्तमं न त्वया ।

परोपकारानन्तं विननुत्तमं जेतुम् ॥ १ ॥

अत्र रक्षति वन्द्यं, मेहं तेजराज्ये कथाम् रक्षा ।

इत्यादिभ्यः आयात्, अत्र किं विस्मयं ॥ २ ॥”

अर्थात्—“हे मनुष्य है, जो अपने मरतेके वन्दनेमें परोपकार करने
है ; नर जो मनुष्य परोपकार नहीं करते हैं, उनके जीवनको विचार है ।
वन्द्य-पुरुष (वन्दनीय आदमी) ; वन्दनीय रक्षा करता है, वन्द्य वन्दन
का करता रक्षा करता है, उस व्यक्ति रक्षा करता है और जीवन
वन्दन हुआ मनुष्यकोके कथनों रक्षा करता है ; नर जो मनुष्य
परोपकार नहीं करता ; वह मरता किन जानता !”

यह कह, वात्सराज महलके उस ऊपरी हिस्सेमें चले गये, जहाँ सेठ-पुत्री धीरता रहती थी । उस समय उस लड़कीने उस मसीखिक रूपवान कुमारको देखकर सोचा,—“अहा ! इसका चेला सुन्दर रूप है ! इसकी शरीरकी कान्ति कैसी मनोहर है ! इसके शरीरका कोई मनुष्य ऐसा नहीं, जो मनोहर नहीं हो । हाय ! देवने मुझे स्वर्गके रूपमें मृत्युकी देनेवाली क्यों बनाया ! मैं ऐसे-ऐसे मनुष्य-रत्नोंको मार कर जीती हूँ ।” यह ऐसा सोचही रहो थी, कि वात्सराजने उसकी सेठके पास जा, मधुर पचनोंसे उसे ऐसा प्रसन्न किया, कि वह फिर विचार करने लगी,—“आहे जो हो, मैं अपनी जान देकर भी इसकी जान बचाऊँगी ।” यही सोचते-सोचते यह सो गयो । इसके बाद साहसी मनुष्योंमें शिरो-मणि कुमार वात्सराजने जिड़कीको राह, नीचे उतरकर, ज़मीनपर पड़ी एक लकड़ी उठा ली और फिर उसी राहसे ऊपर चढ़कर अपनी शय्यापर वह लकड़ी रखकर उसके ऊपर एक बरत डाल, हाथमें कण्ट लिये, चारों ओर नज़र दौड़ाते हुए, बाँधोंके उँहालेसे हटकर भँधेमें चढ़े हो रहे । इतनेमें उसी जिड़कीके बाहर किसीकी मुँह निकालते देखकर कुमार और भी सावधान हो रहे । इसके बाद उस मुकने उस घरके चारों ओर देखा । तदनन्तर मनोहर भँगूटियोंसे सौंदर्यी हुई भँगुलियोंवाला एक हाथ उसी जिड़कीमें नज़र आया । उस हाथमें दो भौपधियोंके कड़े पड़े थे । उन कड़ोंमेंसे एकमेंसे धूमाँ निकला । उस धूपसे सारा घर भर गया । इसके बाद अन्दर भाकर उस हाथने पहरेदारके पर्लंगको धुआ । इसी समय वात्सराजने तलवारका एक हाथ ऐसे जोरसे उस हाथपर मारा, कि वह कट गया; परन्तु देवराकि-के प्रभावसे वह हाथ कटनेपर भी ज़मीनपर नहीं गिरा । तपानि पीड़ाके कारण उस हाथके बाँधों कड़े नीचे गिर पड़े । उसमें एक धूधोपधि और दूसरी संघेदियों-भौपधि थी । इन दोनों महोपधियोंको कुमारने अपने पास रख लिया । इसके बाद यह हाथ उस घरसे बाहर निकला । उस समय “भर बाधे !” बड़ा

दगा हुआ । मैंने बड़ा धोखा खाया ।" यह शब्द सुन, घटमराज यह कहने हुए उसके गोठे-पीछे दौड़े, कि भरी दाम्नी ! तू कहाँ खड़ी जा रही है ? हाथमें लकड़ी लिये पुण्यमें चलवान् करने हुए घटमराजको गोठे-पीछे आते देख, उसे परामर्श करनेमें अपनेको अममर्ग समझ कर यह देखी उसी समय भाग गयी । इसके बाद गोठे लौटकर घटमराजने उस शय्यापरसे यह लकड़ी हटा दी और भाग उसीपर बैठ रहे । इतनेमें रात बीत गयी और उद्यानल-गर्गतपर सूर्यका उदय हुआ । इसी समय कुमारीको नींद खुली और उसने अक्षत शरीरसे बैठे हुए कुमारको देखकर हर्षित हो अपने मनमें विचार किया,--"अवश्य ही यह कोई बड़ा प्रभावशाली मनुष्य-रत्न मालूम पड़ता है । इसीसे यह नहीं मरा । मेरे सोये हुए भाग्य अब जगनेही पाले हैं और मेरा मनोरथ पूर्ण हुआ ही चाहता है । अब यदि यह मनुष्य स्वामी हो तो मैं इसके साथ संसारके सुख भोगूँ, नहीं तो इस जन्ममें मेरा घेराम्य ही ठीक है ।" यही विचार कर उस लड़कीने मधुर घबनोंसे घटमराजसे कहा,--"हे नाथ ! आपने कैसे विपद्से छुटकारा पाया ? यह कहिये ।" उसके ऐसा पूछने पर घटमराजने उससे रातका सारा हाल कह सुनाया । यह सुनते ही धीरे-धीरे रोंगटे खड़े हो गये । साथ ही उसे बड़ा हर्ष भी हुआ । वे दोनों इस प्रकार बातें कर ही रहे थे, कि उस लड़कीकी सेविका दासो-उसके मुँह धोनेके लिये जल लिये हुए आयी । उसने भी कुमारको भला-बढ़ा देखकर अपने मनमें बड़ा हर्ष माना और उनको इस प्रकार क्षेमकुशलसे रहने पर बधाई दी । यह समाचार सुन, सेठकी भी बड़ा भवन्मा हुआ और यह भी घहाँ भा पहुँचा । धीरे-धीरे छटपट उठकर पिताको आसन दिया । उसपर बैठे हुए सेठने कुमारसे पूछा,--"हे घीर ! तुम रातको दुःखसागरके पार कैसे उतरे ?" इसपर कुमारने सेठकी भी राई-रत्तो सारा हाल कह । तब सेठने कुमारको कहा,--"हे कुमार ! मैं अपनी यह सीपता हूँ ।" यह सुन कुमारने

बिना मुझे अपनी कन्या क्यों दे रहे हैं ?" सेठने कहा,—“तुम्हारे गुणोंसे ही तुम्हारे कुलकी पहचान हो गयी । कहा भी है, कि—

‘आकृतिगुणसमृद्धिर्गमिनी, नम्रता कुल-विगुहि-सूचिका ।

वाक्यमः कथितयास्मन्कमः, संयमश्च भवतो वयोऽधिकः ॥ १ ॥’

अर्थात्—“तुम्हारी आकृतिसे ही यह मालूम हो जाता है, कि तुममें बहुतसे गुण भरे हैं, तुम्हारी नम्रता कुलकी शुद्धताकी सूचना दे रही है, तुम्हारी बातचीतका ढंग यह साफ़ बतलाये देता है, कि तुमने शास्त्रोंका अभ्ययन किया है और तुम्हारा संयम तो तुम्हारी अवस्था देखते हुए बहुत बड़ा-बड़ा है । (छोटी उमरके होनेपर भी तुममें वृद्ध पुरुषोंकीसी स्थिरता है)”

यह सुन कुमारने कहा,—“सेठजी ! अभी मुझे एक बहुत ज़रूरी कामके लिये दूर-देश जाना है । इसलिये आपका यह काम तो मैं पोछे लौटनेपर करूँगा ।” यह सुन, सेठने कहा,—“पुत्र ! पहले मैं तुम्हारे साथ इसका ब्याह कर दूँ, इसके बाद तुम्हारी ज़र्ह इच्छा हो, यछे जाना ।” यह सुन, कुमारने उसकी बात मान ली । इसके बाद उसी दिन उस कन्याके साथ बियाहकर, एक रात उसीके साथ बिताकर, दूसरे दिन उन्होंने यात्रा करनेके लिये बिदा माँगी । इसपर उस कन्याने अपने स्वामीसे कहा,—

‘विरहो वमन्तमागो, नयन्महो, नव वयः ।

वचमस्य चर्चानवर्तन, मद्या वचान्तिव कथम् ॥ १ ॥’

अर्थात्—“विरह, वमन्त-माग, नया म्मह, नवी उमर, कावचका पञ्चम मार-इन पाचाँ अग्निवाँकी आँख मया केम मही जावानी ”

यह सुन, कन्याने कहा, ‘ओह समझ जाओ, प्रिये ! यदि मैं देशान्तर नहीं गया, तो मुझे धायमें जल मरना पड़ेगा । इसमें कोई सन्देह नहीं ।’ इसपर वह बोली,—‘हे नाथ ! देखो, मैं तुम्हारे सामने हा इन बातोंको बोलो बाँझा ॥ अब यह तुम्हारे आनेपर ही सुड़ेगा ।

तुम्हारी आज्ञासे मेरा शरीर तो यहीं रहेगा; पर बिना तुम्हारे साथ जायेगा । हे स्वामी ! और भी सुन लो कि—

“कुङ्कुमं कंचनं चैव, कुडुमानरयानि च ।

तगिष्मन्ति शरीरे मे, त्वयि कान्ते सनातने ॥ १ ॥”

अर्थात्—‘हे स्वामी ! अब जिस दिन तुम लौटकर आओगे, उसी दिन मेरे शरीरको कुङ्कुम, अजब, फूल और गहने लराने पायेंगे ।’

इस प्रकार प्रतिज्ञा करनेवालों अपनी स्त्रीको वहाँ छोड़, सेठकी आज्ञा ले, वत्सराज उसी जङ्गलकी राह आगे बढ़े । उसी जङ्गलमें उन्होंने भीलोंका एक छोटासा गांव देखा । उसके पासही बहुतसी पहाड़ियाँ और पहाड़ी नदियाँ भी दिखाई दीं । इन सब प्राकृतिक दृश्योंको देखते हुए वे चले जा रहे थे, कि इतनेमें एक जगह उसी जंगलके सिलसिलेमें उन्हें बड़े-बड़े महलोंसे सुशोभित एक नगरी दिखाई दी । उसे देखकर कुमारको बड़ा आश्चर्य हुआ । उस नगरीके बाहर एक सुन्दर सरोवर था । उसीमें हाथ-मुँह धोकर उन्होंने उसीका पानी पिया और उसीके घाटपर एक वृक्षके नीचे पाटली नारे बैठ रहे । इतने में उन्हें तालाबसे पानी लेकर आती हुई स्त्रियोंका झुण्ड दिखाई दिया । उन स्त्रियोंको देख, आश्चर्यमें आकर कुमारने एकसे पूछा,—“यह नगरी कौनसी है ? यहाँका राजा कौन है ?” उसने जवाब दिया,—“यह नगरी अन्तर देवियों (एक प्रकारकी प्रेतिनी) की क्रीड़ाका स्थान है । यहाँका कोई राजा नहीं है ।” यह सुन, वत्सराजने फिर पूछा,—“यदि यह नगरी अन्तर-देवीकी है, तो फिर तुम लोग इतना पानी कहाँ लिये आती हो ?” वह बोली,—“हे सत्पुरुष ! हमारी स्वामिनो, जो एक देवी हैं, कहाँ गयी हुई थीं । वहाँ कितो पुरुषने उसके हाथपर तलवारका चार कर दिया है, जिससे वह बड़ी तकलीफ पा-रही है । उसीकी पाँड़ा दूर करनेके लिये हमलोग उसके हाथपर पानी-के छोटे डेता हैं । बहुतरा सोचा गया, तो भी उसके हाथकी चोट अभी

तक अच्छी नहीं हुई । ” यह सुन, यत्सराजने कहा,—“क्या वह देवी स्वयं अपने शरीरकी पीड़ा दूर नहीं कर सकती ? ” यह बोली,—“हे पण्डित ! उस तलवार चलानेवाले पुष्प पर किसी देवताकी छाया है, इसीसे उसका प्रभाव अधिक है । इसीलिये उसकी पीड़ा अभी तक शान्त नहीं हुई । इसके लिये अन्तरोंके राजाने दो महापण्डितों उसे दे रखी थीं, जिन्हें वह हाथ पर बाँधे रहती थी । उनमें एकसे जो धुँमा निकलता रहता था, उससे लोगोंके होशोहवास जाते रहते थे और दूसरी महापण्डित हर तरफकी खोद और ज़ब्रोंकी दया थी । ये दोनों महापण्डित भी उसके हाथसे तलवारकी खोद लगतेही नीचे गिर पड़ी थीं । ” यह सुन, यत्सराजने कहा,—“भद्र ! मैं मनुष्यवेद्य हूँ । ” पर यदि मैं तुम्हारी स्वामिनीका ज़ब्र भच्छा कर दूँ तो मुझे क्या इनाम मिलेगा ? ” इसपर यह बोली,—“तुम जो कुछ माँगोगे, वही मिलेगा । ” यह कह, यह फिर बोली,—“भाई ! अभी तो तुम यहीं रहो— पहले मैं अपना स्वामिनीसे जाकर तुम्हारे भावकी बात करती हूँ । ” यह कह, उसने अपना स्वामिनीके पास जाकर यह सब हाल कहा । इसपर उसने ज़ब्र दिया, कि उस भादमीको जल्द मेरे पास ले भावों । अब तो वह लौ बाहर भाकर यत्सराजका अपने साथ ले चली । रास्तेमें वह यत्सराजसे कहने लगी,—“हे सत्पुरुष ! जब हमारी स्वामिनी तुमसे समुद्र हाँकर वरदान माँगनेका कहें, तो तुम महलके ऊपर रहनेवाली दोनों कन्याओं, भस्वके कपड़े वस्त्र और इच्छित वस्तुओंको दिला देनेवाले पर्यटकों लिये और कुछ नहीं माँगना । ” यह सुन, उसकी बात स्वीकार कर, यत्सराज देवोंके पास चले भागे । वहाँ देवीने उन्हें सुन्दर आसन देनेका दिया ।

कुमार उसीपर बैठ गये । देवी उनसे बड़े आदरके साथ बातें करती हुई बोली,—“नन्दा ! यदि तुम सचमुच योग्य राजा हो, तो राज्य मेरी पीड़ा दूर कर दो । ” यह सुन, यत्सराजने उन्हीं समय धूर्वापण्डित धुमा देवाकर, मन्सरोहिणी नामक पण्डितसे उसकी व्याख्या दूर कर दी ।

उसी क्षण उसके हाथका रुई टूट हो गया । उसने हँसित होकर कहा,—
 “भाई ! तुझे ऐसा मायूम होना है, कि तुम्होंने मेरे ऊपर तनवार बजाया
 था ।” वत्सराजने यह बात स्वीकार की । इन पर भी देवोंने सन्तुष्ट
 होकर कहा,—“भाई ! मैं तुम्हारी हिम्मत देख, यहाँ गुप्त हूँ। इसलिये
 तुम्हारी जो इच्छा हो, माँग लो ।” वत्सराजने कहा,—“यदि तुन सब-
 कुछ मेरे ऊपर प्रसन्न हो, तो इस महलके ऊपरी हिस्सेमें रहनेवाली
 दोनों कन्याएँ, भयङ्करा यक्ष और सब कामदा रघु-रानी बाँझों
 मुझे दे डालें ।” यह सुन, देवोंने सोचा,—“यह मेरा घर फूटनेसे ही
 ये बाँझों माँग रहा है, नहीं तो इसे इन बाँझोंकी क्या जरूर थी ?” ऐसा
 विचार कर वह बोली,—“हे सत्पुरुष ! मैं ये सब बाँझों तुम्हें दे चुकी :
 परन्तु जरा सावधान होकर उन दोनों कन्याओंकी उत्पत्ति का हाल सुनो,—

“वैताप-गर्भत पर चमरचञ्चा नामक नगरमें गन्धपाहपति नामका
 एक विद्याधर राजा रहता था । उसके सुयोग और मदनवेगा नामकी
 दो स्त्रियाँ थीं । उनकी कोबले कनक रत्नचूला और स्वर्णचूला नामकी
 दो कन्याएँ पैदा हुईं । जब ये दोनों पुष्पावस्थाको प्राप्त हुईं, तब
 राजाको उनके विवाहकी चिन्ता पड़ी—वे इसके लिये व्याकुल
 होने लगे । इसी समय वहाँ एक धानी मुनि पहुँच गये । उस
 समय राजाने उन्हें बड़ी भक्तिसे साथ एक आसनपर बैठा, प्रणाम कर
 पूछा,—“हे पूजनाथ ! मेरी इन दोनों पुत्रियोंके स्वामी कौन होंगे ?”
 इसपर मुनिने धानसे मालूम कर कहा,—“एक अनुप-राजकुमार,
 जिसका नाम वत्सराज है, इन दोनोंका स्वामी होगा; परन्तु हे राजन् !
 इनका विवाह तुम्हारे जेटेजी नहीं होगा; क्योंकि तुम्हारी मायु भावसे
 सिर्फ एक महानेकी और बाँझो है ।” यह सुन, राजाने पूछा,—“तो अब
 मैं क्या करूँ ?” मुनिने कहा,—“राजन् ! सुनो—वह वत्सराज कैसे इनका
 स्वामी होगा, वह भी मैं बतलाये देता हूँ । पड़ते तुम्हारे एक बहन थी ।
 उसे तुम्हारे मित्रने अपने मित्रभूत नामक भूचर-राजाको ब्याह दिया था ।
 इसके बाद शूर राजाने एक दूसरी सुन्दर कपवती—राजकुमारीसे विवाह

कर दिया । उसपर राजाका अधिक प्रेम हो गया और तुम्हारी कल्प
 रत्नके चित्तमें उतर गयी । इसमें तुम्हारी पहचानों बड़ा हाथ हुआ और
 वह भवान कष्ट द्वारा मृत्युको प्राप्त होकर अमर-ज्ञानको देनी पड़े
 है । उसीकी भीत बहुत शान-पुण्यकर समय पर मृत्युको प्राप्त होकर इस
 जन्मक मरुको पुत्रो प्राप्ता हुई है । इन दिनों पूर्णमासके द्वैतके कारण यह
 अमर देवी उस भीष्माके पहरेदारोंका मार डालती है । मरुका कपुले
 मनुष्य मारे आ गये है । इसलिये है राजन् ! तुम अपनी इन दोनों
 पुत्रियोंका अभी अमर-देवीको दे डालो । इसके वही रहनेमें इसका
 भागी पति परमराज भागमें भाग वही आ पाईयगा ।" वही पुरुष देवाके
 द्वारा होन्त्याले मनुष्योंके नाशका द्वार बन करेगा और इन दोनों अशु-
 कियोंके भाग खापी करेगा ।" यह सब हाल सुनाकर मुनि अत्यन्त
 विहार करने लगे गये । इसलिये है मरुपुत्र ! यह विद्याधर-राजा मेरे
 पास इन दोनों अशुक्तियोंका छान गया है । इसके बाद यह विद्याधर राजा
 कात्याकर मृत्युको प्राप्त होकर अमरत्व ही गया । इसीसे मुझे मरु-
 कासरी एक पक्ष-सेवक भी दिया है और अर्थ कात्या नामक गर्वु भी
 इसका दिया हुआ है । इसीसे मुझे व दोनों महोपधियाँ भी दी थी । अमर
 है नन् ! मैं एक यह सब आज मुझे दिखे डालती हूँ ।"

इसके बाद इन दोनों कन्याओंके भाग विवाह कर, कर्मराज वही
 रह कर इनके भाग नाम-विवाह करने लगे ।

एक दिन कर्मराजने अपना पञ्चमूला और अर्जुनका नामक दोनों
 शिष्योंका दुःसाधक इनके अपनी शक्तिशाली बान कह बुलायी । इससे
 वह बान इनके कही । इसने वह कारण ज्ञान इसके विवाहमें पुत्री
 कात्या नाम की पुत्री दिया-लेके भाग कर्मराजकी आज्ञाकी आज्ञा देती । वह
 कर्मराज, इसी शिष्याके भाग इसी का पुत्र बनार ही, भागाल-जानके
 अशुक्तके अमर-वन्दनके बान की बान भी गये । इस समय ज्ञान-
 बलके भीतर इस पुत्र सन्त-जानक नाम मरुके इस का पुत्र का
 अमर है, "है वह कर्मराज के पुत्र कात्याके भाग नाम, -

“यह पर्यङ्क कहाँसे आया ! और यह घोड़ा इस महलकी सातवीं मंजिल पर कैसे चढ़ आया ?” इसी विस्मयमें पड़ी हुई वह भली भाँति चारों ओर देखने लगी । उसी समय उसने दोनों स्त्रियोंके साथ शय्यापर बैठे हुए अपने पतिको देखा । यह देख, धाँड़ताने परम प्रसन्नताके साथ अपने पिताके पास आकर कहा,—“महलके ऊपरवाले हिस्सेमें मेरे स्वामी आ पहुँचे हैं।” यह सुन, सेठने ज़रा सहमकर पूछा,—“बेटी ! वे इस तरह कैसे आये ?” तब उसने पर्यङ्क और अश्व आदि जो चीज़ें देखाँ थीं, उनकी बात बतलायी । यह सुन, सेठ भी घबराया हुआ तत्काल वहाँ आ पहुँचा । वत्सराजने अपने दोनों पत्नियोंके साथ सेठको प्रणाम किया । इसके बाद सेठके पूछनेपर कुमारने उससे सब कुछ कह दिया । यह सुन, आश्चर्यमें आकर सेठने सिर हिलाया । उस दिन वहाँ रह कर दूसरे दिन सवेरे ही वत्सराज अपनी तीनों प्रियानोंके साथ उसी पर्यङ्कपर बैठ, सेठकी आज्ञा ले, अपने घरकी राह नापी ।

उस समय धारिणी और विनलाने अपने घरमें आया हुआ पर्यङ्क देख, सोचा,—“यह शय्या किसकी है ! इसपर कौन सोया हुआ है ?” ऐसा विचार कर, उन्होंने ऊपरकी चढ़ाई कर देखा, तो उनका पुत्र वत्सराज, अपनी तीनों स्त्रियोंके साथ, सोया नज़र आया । यह देख, शर्माकर, वे दोनों धीरे-धीरे पीछे लौट गयीं । उस समय उनके मनमें बड़ा आश्चर्य हुआ । थोड़ा देर बाद तीनों पत्नियोंके साथ वत्सराज अग पड़े और शय्या छोड़ कर उठ खड़े हुए । तब उन दोनोंने अत्यन्त हर्षित हो, उन्हें आशीर्वादोंकी बाँछारसे ढाँकते हुए, उनसे सारा वृत्तान्त पूछा, जिसके उत्तरमें वत्सराजने अपनी वह आश्चर्यजनक राम-कहानी कह सुनायी ।

इसके बाद उत्तम सर्व-कामन्द पर्यङ्कसे एक उत्तम घाँघरा माँगकर, उसे लिये हुए वत्सराज राजाके पास पहुँचे और उन्हें प्रणाम कर वह घाँघरा रानीको देनेके लिये दे दिया । उसे देकर रानीने परम सन्तुष्ट होकर आशीर्वाद दिया,—“वत्स ! तेरी लम्बी आयु हो ।” राजाने

लौट आकर राजासे कहा,—“हे स्वामी ! यत्सराजके घर तो रसोई की कुछ तैयारी ही नहीं है ।” यह सुन, राजाके मनमें बड़ा विस्मय हुआ । उन्होंने एक दूसरे प्रतिहारीको बुला कर कहा,—“तुम जाकर देख भाग्यो, कि यत्सराजभयवा उसके किसी पड़ोसीके घर लोगोंके खिलाने-पिलाने की तैयारी हो रही है या नहीं ?” यह भी इधर-उधर चारों ओर देख-माल कर राजाके पास लौट आया और बोला,—“स्वामी ! जिसके घर पाँच सान भाइयोंका न्योता होता है, वह न जाने कितनी तैयारी करता है, पर यत्सराजके घर तो मैंने ऐसी कुछ भी तैयारी नहीं देखी — यहाँ तो कोई बोलता-बालता भी नहीं ।” यह सुन, राजाने विचार किया,—“यत्सराजने मुझे न्योता दे रखा है, फिर ऐसी बात क्यों हो रही है ?” राजा यह सोच ही रहे थे, कि इनमें भोजनका समय हुआ देख, यत्सराजने यहाँ आकर उनसे भोजनके निमित्त पधारनेको कहा । तब राजाने कहा,—“हे यत्सराज ! क्या तुम मेरे साथ ईंसी करते हो ? बिना रसोई-पानीका इन्तजाम कियेही मुझे बुलाने भायें हो ?” यह सुन, यत्सराजने कहा,—“स्वामी ! भाप सब तरहसे मेरे पूरय है, फिर मैं भापके साथ कैसे ईंसी कर सकता हूँ ?” राजाने कहा,—“तुम्हारे घर मद्य-नानादिकका तो कुछ ठिकानाही नहीं है ?” यत्सराजने कहा,—“देख ! भाप इसकी फ़िक्र क्यों करते हो, कि मेरे घर रसोई तैयार है या नहीं ? यह फ़िक्र तो मुझे करना चाहिये । भापको तो छपाकर पधारनेकी ज़रूरत है ।”

यह सुन, उन्मादित हो, राजा अपने सब परिवार-परिजनोंके साथ, यत्सराजके घर भायें । यहाँ विशाल मनोहर मन्दिर देख, राजाने सोचा,—“इसकी तो कुछ बानें भजम्मेसे मरी रहती हैं । यह मनोहर मन्दिर तो अभी नुरतका बनाया मालूम पड़ता है ।” इसके बाद पद्म-योग्य मनोहर अमन बिछाये गये, तिनपर यत्सराजके कलावे अनुसार राजा आदि सब आंग बैठे । गार्-प्रभालन आदि क्रियाएँ की गयीं । इसके बाद यत्सराजके सेवकोंने रख, गुरूप और चाँदोंके बड़े बड़े धान

लगा दिये, जिनमें मिठाइयाँ, छाजे, दाल, भात, घी आदि मनोहर भोज्य-द्रव्य परोसे गये थे । तरह-तरहकी बघारसे खुशबूदार मालूम पड़ते हुए साग भी परोसे गये । हलवा, घेवर, खीर और दही आदि चीजें भी परोसी गयीं । ऐसा रसोला भोजन करते हुए राजाने सोचा,—“मैं सदा अपने घर भोजन करता हूँ ; पर ऐसा स्वादिष्ट भोजन कभी नहीं मालूम होता । यह तो साक्षात् अमृततुल्य भोजन मालूम पड़ता है ।” ऐसा सोचते और स्वादिष्ट भोजन होनेके कारण सिर हिलाते हुए राजा भोजन कर रहे थे । इसी समय चत्सराजने सोचा,—“यह उत्सव तो प्रियतमाओंके बिना अच्छा नहीं लगता ।” ऐसा विचार कर उन्होंने कोठेपर जाकर अपनी स्त्रियोंसे कहा,—“मेरी प्यारियो ! अब तुम लोग बाहर आकर राजाकी खातिरदारो करो ।” स्वामीकी यह बात सुन, उन्होंने मनमें सोचा,—“कुलवती स्त्रियोंके लिये पतिही गुरु और पूज्य होता है । कहा भी है, कि—

‘गुरुमिद्विजातीनां, वयानां ग्राह्यो गुरुः ।

पतिरेव गुरुः स्त्रीणां, सर्वस्याभ्यागतो गुरुः ॥ १ ॥’

अर्थात्—“ब्राह्मणोंका गुरु अग्नि, वणोंका गुरु ब्राह्मण, स्त्रियोंका गुरु पति और सबका गुरु अतिथि है ।”

“इसलिये बुद्धाङ्गनाओंको हर हालतमें अपने स्वामीकी बात माननी चाहिये ।” यही सोचकर उन सबने अपने स्वामीकी बात मान ली । फिर भी उन्होंने आपसमें सलाह की, कि स्वामीने जो हमें राजाके सामने आनेकी आज्ञा दी है, इसका नतीजा उनके हकमें अच्छा नहीं होगा ; पर किया क्या जाये ? पतिकी बात टाली भी तो नहीं जा सकती !” यह कह, ये तीनों सुन्दर भट्टार किये, पतिको आज्ञासे भोजन परोसने आयी । उस समय उन तीनोंकी सुन्दरता देख, राजा कामानुर हो गये और अपने मनमें सोचने लगे,—“इस सत्तारने चत्सराज ही धन्य है, जिसे ऐसा तीनों जगत्में प्रशंसनीय मनोहर रूपवाली तीन स्त्रियाँ मिली हैं ।” ऐसा ही विचार करते हुए ये राजा खा-पीकर उठ गये । (संके

उनकी पहचान गयी और उनके कामका हाल मालूम कर, उसी समय एक कमरदल में जल भर लायी । उसे लेकर घटसराज नगर में भागे और राज सभामें जा, वह जल उन्हें दे दिया । उस समय देवता के प्रभावसे वह जल ऊँचे स्वरसे बोल उठा,—“क्यों राजा ! मैं तुम्हें काँताऊँ ! भयघा तुम्हारे मन्त्रियोंको ही काँताऊँ ! भयघा तुम्हें बुरी सलाह देनेवाले किसी और मनुष्यको ही काँताऊँ !” जलको इस प्रकार धोलते देख, सभी समासद् भाव्यमें पड़ गये । राजा तो अपना मतलब सिखा न हुआ देखकर खंखने लगे, तो भी ऊपरसे दिखायेके लिये ईश्वर को बोले,—“भहा ! घटसराजके भागे कोई काम असंभव नहीं है ।” यह कह, राजाने उन्हें पिटा किया और वे अपने घर चले भागे ।

इसके बाद राजा फिर अपने मन्त्रियोंके साथ बैठे, और उस की जान लेनेका उपाय सोचने लगे । उस समय चार मन्त्रियोंने राजासे कहा,—“हे देव ! आप अपनी कन्या श्रीसुन्दरीके विवाहके बहाने दक्षिण दिशामें यमराजका घर बनवाइये और उसीके मन्दिर जाकर यमराजको निमन्त्रण देनेके लिये घटसराजको भेजिये, आपका काम बड़ी आसानीसे बन जायेगा । उनकी बनलायी हुई तरकीब सुनकर राजा बड़े प्रसन्न हुए और उन मन्त्रियोंकी प्रशंसा करते हुए बोले,—“वाह ! तुम लोगोंने बड़ी अच्छी तरकीब घटलायी !” इसके बाद उन कुछ मन्त्रियोंने नगरकी दक्षिण दिशामें एक गहरी खाई खुदवायी और उसमें लकड़ी भरकर आग लगा दी । इतना कर चुकनेपर उन्होंने राजाकी सूचना दी । तब राजाने सब धीरोके साथ-साथ घटसराजको भी बुलवाया । पहले तो राजाने और-और धीरोंको बुलाकर कहा,—“हे धीरो ! मेरी पुत्री श्रीदेवीका विवाह है, इसलिये मुझे यमराजको निमन्त्रण देना है । इसलिये इस मन्त्रिसे मरी हुई खाईकी राहसे यमराजके घर जा, उन्हें न्योता दे आओ । यह सुन, और-और लोगोंने कहा,—“स्वामी ! यह काम हमलोगोंसे नहीं होगा ।” जब उन्होंने ऐसा टक्कासा जयाब दे दिया, तब राजाने घटसराजसे कहा । “सुनतेही घटसराजने यह काम करना स्वीकार कर लिया

और घर जाकर अपनी पत्नियोंसे इसका हाल कह मुनाया । इसपर उन स्त्रियोंने कहा,—“इस निर्दयी और उग्र राजाको आज्ञा तुमने क्यों सोधार कर ली ? जैसे औरोंने नहीं कर दी थी, वैसेही तुम भी स्वीकार कर देते ।” उनके ऐसा कहने पर भी बत्सरामने उस कामसे हाथ न धोया । तब उन दोनों स्त्रियोंने बत्सरामको धरते ही छियाकर रख दिया और अपने बस हवां हाथको आज्ञा दी,—“हे बस ! तुम मेरे पति का घर धारनकर, राजाके पास जाओ और वह जो काम करनेको कहें, उसे कर लो ।” यह सुन, उस बसने बत्सरामका बंधारण कर, राजाके पास जाकर कहा,—“नहापत्र ! जो काम हो, वह बरत लिये ।” राजाने कहा,—“बत्सराम ! तुम यमराजको बड़े आग्रहसे तिनकन देना और उन्हें लिये हुए एक नईनेके अन्दर यहाँ बसे जाना ।” यह सुन, नगरके बाहर जा, राजा, नन्हीं और अन्यान्य नगर-निवासियोंके सामने हो वह आगवाली धारिने कृदकर कम नलने अद्वय हो गया । उस समय बत्सरामको आगने पुनर्देख, सब लोगोंके लगे दहा छोड़ हुआ और वे अस्मत् कह उठे,—“ओह ! हमारे राजा भी कैसे निर्दय है, जो इन्होंने ऐसे गुन-छोले मेरे हुए बत्सरामकुमारको मार डाला । इनका हागित्र मला न होगा ।” यहाँ कह-कह कर ये सब छोड़ करने लगे । पर राजाको भी यहाँ सोच-सोचकर आनन्द होने लगा, कि मरके नेता कम बन गया ।

इसके बाद राजाने नत्नियोंसे कहा,—“नत्नियो ! अब तुम उसकी स्त्रियोंको मेरे घर ले जाओ—देर न करो ।” यह सुन नत्नियोंने कहा,—“हे नहापत्र ! साथ प्रजा इस समय आनन्दे छिष्ट हो रही है, इसलिये ननों ऐसा करनेसे वह और भी विरक्त हो जायेंगे । राजाको मोति बिना संजति नहीं मार होती । कहा है कि—

‘विनयनं नमते सुखदाय, सुखमते नोकोपुनरुत्पन्ने मरुत ।’

बहुतक नहापत्र, नन्हींको पुनर्देख गया ।

बशीर—‘राजा विनयसे सुखान् होता है, पुनर्देख ११ मर

लोगोंका अनुराग होता है, अनुराग वालेको सहायक भी बहुत मिल जाते हैं और जिसके सहायक है, उसे तन्हीं प्राप्त होती ही है ।

"इसलिये हे राजन् ! एक महीने तक माप उसके भानेकी राह देखिये— उतापलेपनसे काम नहीं बनेगा । यह कह, मन्त्रियोंने राजा-को रोक दिया । इसके बाद क्रमसे यह महीना बीत गया । तब कामसे भगधे बने हुए राजाने अपने चार मन्त्रियोंको घत्सराजकी कियोंको ले भानेकी आज्ञा दी । जब तक वे राजाके दुषमकी सामील करनेके लिये घत्सराजके घर पहुँचें-पहुँचें, तबतक घत्सराजकी दोनों कियोंने अपने यक्ष-रूपी किंकरको भेजकर पातालमेंसे अपने पिताको, जो व्यन्तरेन्द्र हो गये थे, बुलवा लिया । व्यन्तरेन्द्र, सारा हाल सुन, दामादके शत्रुओं-का नारा करनेके हरादेसे, देवशक्तिके द्वारा मनोहर और बड़े दामोवाले भाभूषणोंसे भूषित घत्सराजका रूप धारण कर, घोड़े पर सवार हो, एक देव-रूपी सेवकको साथ ले, सयके सामने राजमार्गसे होते हुए राजदरबारमें आये । यह देख, राजा अचम्भेमें आकर सोचने लगे,— 'यह घत्सराज मेरी आँखोंके सामनेही अग्निमें प्रवेश कर, मृत्युको प्राप्त हुआ था, फिर यह कहाँसे आ टपका ? इस धीर पुरुषने तो इस सुभा-पितको भी कूठ साबित कर दिया, कि—

'पुनरिवा पुन राकि, पुनः मूकः पुनः वर्गी ।

पुन मजापते सर्व, न कोऽप्येति पुनमृतः ॥१॥'

अर्थात्—'फिर दिन होता है, फिर रात होती है, फिर सूर्य उदय होते हैं, चंद्र उगता है, सब चीजें फिर होती हैं; पर माा हुआ आदमी फिर नहीं लौटता ।'

ऐसा विचार कर राजाने बड़े आश्चर्यके साथ उनसे पूछा,—'घत्स-राज ! यमराज कुशलसे हैं न ?' इसपर उन्होंने कहा,—'नाथ ! आपके मित्र यमराज खूब कुशलसे हैं । उन्होंने मुझसे पूछा, कि क्यों घत्सराज ! तुम्हारे जामीके साथ मेरी इतनी गहरी दोस्ती है— तो मैं

उन्होंने मुझे इतने लम्बे अर्सेके बाद याद किया, इसका क्या कारण है ? यह कह, उन्होंने मुझे कितने ही दिनोंतक बड़े आदरसे अपने पास रखा । स्वामी ! मुझे आपका सेवकही सनभकर उन्होंने मेरी इतनी काविर की । आपके ही प्रेमके अनुरोधसे उन्होंने ये सब अलङ्कार, जो मेरे शरीर पर मौजूद हैं, मुझे दिये हैं । और आपके विश्वासकेही लिये उन्होंने मेरे साथ-साथ अपना यह द्वारपाल भेज दिया है ।” यह सुन, राजाने उसके सामने दृष्टि की । उसकी पलकोंने दृष्टि देखा, राजाको इस बातका विश्वास हो गया । इसके बाद अन्तरैन्द्रने कहा,—“हे महाराज ! यमराजने मेरी माफ़त आपको कहला भेजा है कि इसी तरह यरादर मेरे पास अपना आदमी भेजा करेंगे—मैं आपसे मिलनेके लिये आना चाहता हूँ, पर इन्द्र पुष्टी नहीं देते, क्योंकि यहाँ मेरे बिना इन्द्रका घड़ीभर भी काम नहीं चल सकता । इसलिये आपही मुझसे मिलने आइये । सब पूजिये तो, आनेही जानेसे प्रीति पड़ती है ।” यह सुन, सब राजपुरुष वहाँ जानेके लिये उत्कलित हो गये । तब यमराजके द्वारपालने कहा,—“तुनहेंसे जो लोग यहाँ चलना चाहें, वे मेरे साथ-साथ चलें ।” इसके बाद राजा आदि सभी लोग यमराजके घर जानेके लिये तैयार होकर उठां उलठे हुए यमगृहके पास आये । वहाँ पहुँचकर यमराजके द्वारपालने कहा,—“मेरे पंछे-पोछे सबलोग बसे जाओ ।” यह कह, वह आगते भरो हुई छाईमें कूद पड़ा । इसके बाद राजाके हुक्मसे उनके चारों मुख्य मन्त्री भी कूदे । कूदतेही सबके सब जल कर झाक हो गये । अन्तमें जब राजा उत्तम कूदनेके लिये तैयार हुए, तब यमराजने उबका हाथ पकड़ कर उन्हें रोक दिया और कहा, “हे राजा ! यह सब लोग जानते हैं, कि जो आगमें कूदता है, वह जलकर मर जाता है । पर मैं देवताके प्रभावसे जीता रह गया और उताने मेरे शत्रुओंको धोखा देकर मौतके घाट उतार दिया है । इन लोगोंने आपको मुझे मार डालनेकी सलाह दी थी, इसीसे मैंने भी उन्हें मार डाला । कहा भी है, कि—

कृते प्रतिष्ठितं कुर्यात्, मुञ्चितं प्रतिमुञ्चितम् ।

त्वया सुचापिताः पञ्चाः, मया सुपदापितं विदुः ॥

अर्थात्—‘जैसेको तेसा करनाही चाहिये । जो, अपने सिरके बाल नोचे, उसके भी बाल नोच लेने चाहिये । यह बात और है, कि तुमने मेरे पंख नोच लिये और मैंने तुम्हारा सिर मुँडवा दिया, पर बदला तो लिया ।’

और भो कहा है, कि—

‘पुच्छ किञ्च पुच्छं, चासह दिञ्चह मास ।

मिच्छह किञ्च मिच्छं, इमं गमिञ्चह कास ॥१॥’

अर्थात्—‘घूर्छके साथ घूर्छता करनी, दोष लगाने वालेको दोष लगाना और मित्रके साथ मित्रता करनी चाहिये । मनुष्यको इसी तरह समय बिताना चाहिये ।’

यत्सराजको यह बातें सुन, राजा उसकी भक्ति और शक्तिले बड़े प्रसन्न हुए और अपनी सारी खेष्टा विफल हो जानेसे लज्जित भी हुए । इसके बाद वे अपने घर जाकर विचार करने लगे,—‘यत्सराजकी हिरण्योके साथ रमण करनेका विचार कर मैंने बड़ा पाप कमाया—साधही मेरी लोक-हँसाई भी हुई ।’ ऐसा विचार कर उन्होंने अपनी भीसुन्दरी नामक कन्या यत्सराजको ब्याह दी और प्रजाकी सम्मति ले, उन्हींको राज्य देकर आप तपस्वी हो गये । इसके बाद यत्सराजने राज्यका पालन करते हुए बहुतसे देश जीत, पुण्यवान् और दृढ़-पराक्रमी होकर, महाराजकी पदवी पायी ।

एक बार एक पुरुषने समामें आ, राजा यत्सराजको प्रणाम कर, उनके सामने एक लिखा हुआ पर्चा रखकर नियोजन किया,—‘हे महाराज मैं क्षितिप्रतिष्ठित नगरसे आया हूँ । यह पर्चा यहाँके नगर-निवासियोंने भेजा है ।’ यह सुन, राजाने यह पर्चा हाथमें लेकर पास बैठे हुए छेच-याचकको पढ़नेके लिये दे दिया । छेचयाचकने उसे खोल कर पढ़ा ।

धनवाये, अनेक जिनेश्वरोंकी प्रतिमार्थ स्थापित करवायीं और जिन-
घेस्त्योंमें अष्टाङ्गिका उत्सव आदि अनेक धर्म-कृत्य करवाये । इसी
प्रकार वे निरन्तर धर्मकार्योंमें मग्न रहते थे । कुछ दिन बीतने पर फिर
भाचार्य वहाँ आये । उस समय राजा-मो उनकी धन्दा करने गये ।
उनके चरण-कमलोंको प्रणाम कर, धर्म-देशना सुन, उन्होंने गुहसे
कहा, —“हे प्रभु ! मैंने पूर्व भवमें कौन ऐसा कर्म किया था, जिससे
मुझे इसनी विपत्तिशंके याद सम्पत्ति प्राप्त हुई ?” गुहने कहा,—“हे
राजन् ! सुनो—

“इसी जम्बूद्वीपके भरक्षेत्रमें धसन्नपुर नामका एक नगर है । उसी
नगरमें तुम शूर नामके राजा थे । राजा शूर बड़े ही सरल-समाध,
समाधान्, दाक्षिण्य-पूर्ण, निर्लोभी और दैव गुहकी पूजामें तत्पर थे ।
इस प्रकार सब गुणोंके आधार, शीलवान् और दान-धर्ममें तत्पर है
राजा पूज्यका पालन कर रहे थे । उनकी पटरानीका नाम शूरयेगा
था और वह विद्याधर-कुलमें उत्पन्न हुई थी । राजाने रतिचूला नामकी
एक और राजकुमारीके साथ विवाह किया था । उस पर भासक रहते
हुए भी राजाने दोनों प्रियतमाओंका त्याग कर दिया । इसके बादका
सारा वृत्तान्त व्यन्तरी-देवीने तुमसे कहा ही था और तुमसे गन्धवाह-
गति राजाकी दोनों कन्याओंका विवाह करा दिया था । हे महा भाग्य-
वान् ! यही तुम इस भवमें भी राजकुमार हुए । दानादि धर्म करनेके
कारण ही तुम्हें भोगकी सारी सम्पत्तियाँ प्राप्त हुई हैं, पूर्व भवमें राज्य
करते हुए तुमने कुछ धन्तराय-कर्म कर दिया था, इसीलिये इस भवमें
पढ़ते कुछ दिनों तक राज्य-भूट होकर तरह-तरहके दुःख भोगने पड़े ।”

इस प्रकार गुहके मुखसे अपने पूर्व भवका हाल सुन, राजा धत्स-
राजको जातिस्मरण हो आया और उन्होंने गुहकी पातोंको सब
समझ लिया । इसके बाद विशेष पुण्य उपाज्जन करनेके लिये उन्होंने
दोषा लेनी चाही । इसीलिये घर भा, अपने पुत्र धीरोधरको राज्य
दे, चारों स्त्रियोंके साथ उन्होंने चारित्र्य ग्रहण कर लिया । मल्लो मूर्ति

चारित्र्यका पालन कर, विविध तपस्याएँ कर, अन्तर्ने समाधि-भरण पाकर वे देवलोकको चले गये । वहाँसे च्युत हो, मनुष्य जन्म पा, समग्र कर्मोंका क्षय कर, वत्सराजका जीव मोक्षको प्राप्त होगा । हे मेघरथ राजा ! मैंने पहले जिस शूर राजाका नाम लिया था, वह यही वत्सराज था, जिसने विपत्तिके दिनोंमें भी पूर्व-पुण्यके प्रभावसे सुख पाया ।

वत्सराज-कथा समाप्त ।

इसके बाद मेघरथ राजाको चारित्र्य प्रश्रय करनेकी इच्छा हुई । इसीलिये त्रिनेश्वरको प्रणाम कर, वे अपने घर गये और अपने भाई हृदरथसे बोले,—‘भाई ! तूने अब इस राज्यको चलाओ—मैं चारित्र्य प्रश्रय करूँगा ।’ यह सुन, हृदरथने कहा,—‘मैं भी तुम्हारे साथही मत अङ्गीकार करूँगा ।’ तब मेघरथ राजाने अपने पुत्र मेघसेनको गद्दी पर बैठा दिया और हृदरथके पुत्र रथसेनको युवराजकी पदवी प्रदान की । इसके बाद चार हज़ार राजाओं, सात सौ पुत्रों और अपने भाईके साथ उन्होंने श्री त्रिनेश्वरसे शंक्षा ले ली । इसके बाद राजर्षि मेघरथने अपने शरीरकी सारी ममता त्यागकर परिपक्व सहन करना आरम्भ किया । इसके बाद पाँच सन्मिति और तीन गुप्ति संहिता धौघनरथ त्रिनेश्वर बहुतरे जीवोंका प्रतियोग कर, पृथ्वी तलपर बिहार कर सर्व-कर्म रूपों मलका नाश कर, मोक्षको प्राप्त हुए ।

मेघरथ राजर्षिने बांस स्थानकोंकी आराधनासे मनोहर तीर्थद्वारका नाम-कर्म उपाज्जन किया । बांस स्थानकोंकी आराधना इस प्रकार है—अरिहन्त, सिद्ध, प्रवचन गुरु स्वविर, साधु, बहुधृत और तपस्वी-इन आठोंका वे निरन्तर वात्सल्य करते थे ज्ञान, दर्शन, विनय, आवश्यक और शान्त्यर्थ - इन पाँचोंका निरन्तर उपयोग करते हुए वे अतिचार-रहित पालन करते थे । क्षमलव तप, शान, वैयावध्य और समाधिते वे युक्त रहते थे । अपूर्व ज्ञानको ग्रहण करनेमें वे सदा प्रयत्नशील रहते थे । वे धृतज्ञानकी भक्ति करते थे और प्रवचनको

प्रभावना करते थे । अन्तमें वे सिंहनिष्ठीड़ित नामक तप-कर्म
आचरण करते थे ।

इसके बाद राजर्षि मेघरथ, पूरे एक लाख वर्ष तक निरतिष्ठ
चारित्रका पालन कर, अन्तमें अनशन करते हुए अपने छोटे भा
साथ, तिलकाक्षल पर्यंत पर जा, समाधि-पूर्वक इस मलिन देह
त्यागकर सूर्यार्धसिद्धि नामक पाँचवें अनुत्तर विमानमें तैंतीस साग
पमके आयुष्यवाले देय हुए ।



छठा प्रस्ताव

भाजसे बहुत पहले, भरत-क्षेत्रमें, युगादि जिनेश्वरके कुरु नामके एक पुत्र थे। उन्हींके नामसे कुरु नामका एक देश प्रसिद्ध है। उन्हीं कुरु राजाके हस्ता नामका एक पुत्र हुआ, जिसने यड़ी यड़ी हवेलियों और हाट-यात्रारोंकी धेणोले शोभित, ऊँचे-ऊँचे सुन्दर महलोंकी धेणोले मनोहर मालूम पड़ता हुआ, प्राकारों तथा गोपुरोंले (दरवाजोंले) भलंकृत, हस्तिनापुर नामका एक अपूर्व नगर बसाया था। उस नगरमें कमसे बहुतसे राजा हुए, जिनके पाँछे विश्वसेन नामक एक राजा हुए। उनकी पवित्र लावण्यवती अचिरा नामकी पत्नी जगत् भरमें प्रसिद्ध थी। उनके साथ रहकर राजा मनोवाञ्छित सुख भोग रहे थे।

एक दिन, भादों वशी सप्तमीको, चन्द्रमा जब भरणी नक्षत्रमें था और अन्य सभी ग्रह शुभ-स्थानमें थे, उसी समय रातको मेघरथका जीव आयुर्क्षय होने पर, सर्वार्य-सिद्ध विमानसे व्युत हो, अचिरादेवाँकी कोखरूपी सरोवरमें राजहंसके समान अवतीर्ण हुआ। उसी समय सुख-क्षेत्र पर पड़ी, कुछ जगों और कुछ लोगों हुई अचिरादेवोंने हाथी, वृषभ, सिंह, लक्ष्मीका अभिषेक, पुष्पनाला, चन्द्र-सूर्य, ध्वजा, पूर्ण-कुम्भ, सरोवर, सागर, विमान, रत्न-राशि और निर्धून-अग्नि—ये चौदह स्वप्न देखे। उसी समय रानीकी नौद टूट गयी और वे हर्षसे व्याप्त हो, राजाके पास जा पहुँची तथा अय-विजय शब्दों द्वारा उन्हें यथारूपा देने लगीं। इसके बाद स्वामीकी आज्ञासे अच्छे-भले आसन

पर बैठकर उन्होंने कमसे अपने स्वप्नका सारा हाल राजाको कह सुनाया । यह सुन, हर्षसे छिलकर विश्वसेन राजाने उनसे कहा,—
“प्यारी ! तुमने यह बड़े ही अच्छे स्वप्न देखे । इनके प्रभावसे तुम्हें सब अच्छे लक्षणोंसे युक्त और अंग-अंगसे सुहीन एक पुत्र उत्पन्न होगा ।”

यह सुन, रानीको बड़ा मानन्द हुआ और कहीं दूसरा कोई भयान स्वप्न न दोष पड़े, इसलिये आगती हुई देव, गुरु और धर्म-सम्बन्धी विचारोंमें ही उन्होंने पाक्री रात बिता दी ।

इसके बाद प्रातःकाल राजाने अपने सेवकोंको भेजकर भद्राङ्ग-अयोध्यामें प्रवीण और स्वप्नके फल जाननेवाले ब्राह्मणोंको बुलाया । राजपुरुषोंके बुलाये हुए ब्राह्मण भाङ्गलिक उपचार कर, राजसभामें भा, कमराः रने हुए भद्रासनों पर बंठ रहे । उस समय राजाने उनको पुण्यादिसे पूजा कर, उनसे रानीके स्वप्नका सारा हाल सुनाकर उसका फल पूछा । इसके उत्तरमें उन्होंने कहा,—“हे राजन् ! हमारे शास्त्रमें ४२ साधारण और ३० महास्वप्नोंका वर्णन है । सब मिलाकर ७२ स्वप्न होने हैं । इन ३० महास्वप्नोंमेंसे आपके बड़े अनुमार १४ महास्वप्न अचिरा देखीने देखे हैं । भरिहरतो और चक्रवर्तियोंकी माता ही ये १४ स्वप्न देखती हैं । वासुदेवकी माता सात, कलदेव की माता चार, प्रतियामुदेवकी माता तीन और माण्डविक राजाकी माता एकही महास्वप्न देखती है । अचिरादेवीने तो बीस महास्वप्न देखे हैं । इसलिये आपके पुत्र मरत क्षेत्रके उहाँ पराई राजा होंगे, अथवा नीनों लोकोंके द्वारा धम्पना करने योग्य जिनंदन होंगे ।” यह सुन राजा सहित राजाको बड़ा मानन्द हुआ । इसके बाद राजाने उन स्वप्न-विचारकोंको पुण्य, फल, धन, धान्य और वस्त्रादिसे सम्मानित कर, विदा कर दिया ।

इसके बाद राजा बड़े यत्नसे गर्भका पालन करने लगी । गर्भ की रक्षाके लिये उन्होंने अति विनम्र, अति प्रभु, अति धार, अति

कटु, अति तोष्य और अति भय (खट्टे) पदार्थ खाना छोड़ दिया और गर्भको लाभ पहुँचाने वाले पथ्य और गुणकारक पदार्थ खाना शुरू किया । स्वामीके गर्भमें आनेके पहले उस नगरमें महामारी आदि उपद्रवसे यहूतेरे लोग मर रहे थे । अब ज्यों-ज्यों गर्भ बढ़ने लगा, त्यों-त्यों महामारी आदि बीमारियाँ नष्ट होती गयीं और सारे नगरमें शान्ति फैल गयी । इससे स्वामीके माता-पिताने सोचा,—‘यह जो महामारी आदिके उपद्रव शान्त होकर सर्वत्र शान्ति फैल गयी है, वह इसी गर्भस्थ बालकका प्रताप है ।’ इसके बाद गर्भके प्रभावसे जिन-जिन अच्छी-अच्छी चीज़ोंको चाहना रानीको हुई, उसको राजा विश्वसेनने भी भली-भाँति पूर्तिकर दी । कमसे नौ महोने साढ़े सात दिन घाँतनेपर जेठ, महीनेकी कृष्ण चतुर्दशीकी रातको, जिन समय चन्द्रमा भरपी नक्षत्र और मेष राशिमें था, सूर्यादिक ग्रह उषाति-उषतर स्थानोंमें थे, उसी शुभ लग्नेमें, अनुकूल तथा धूलरहित वायुका जिस समय मन्द मन्द प्रवाह फैल रहा था, उसी शुभ मुहूर्तमें अचिरा देवाने, अपनी सुवर्ण-कांसी कान्तिसे भव-घ्ननको निवारण करनेवाला, पवित्र-चरित्रवाला और तानों लोकको सुख देनेवाला सुपुत्र सुखसे प्रसव किया ।

उसी समय छपन दिक्कुमारियाँ, अवधिज्ञानसे जिनेश्वरके जन्मके वृत्तान्त जानकर तत्काल वहाँ भा पहुँचीं । उनमें अधोलोकके गङ्गा-इन्दुगिरिकी कन्दरामें रहनेवाली भाउ कुमारियाँ, जम्बूलोकके मेहरघाट-पर नन्दन-वनमें रहनेवाली भाउ कुमारिकाएँ, रुचक-पर्वतकी चारों दिशाओंमें रहनेवाली आठ-आठ कुमारिकाएँ, रुचक-पर्वतकी चारों विदिशाओंमें रहनेवाली चार कुमारिकाएँ तथा मध्यम रुचक-क्षेत्रमें रहनेवाली चार कुमारिकाएँ थीं । इस प्रकार सब मिलकर छपन कुमारिकाएँ वहाँ आयीं । पूर्वोक्त अधोलोक-निवास्तिनी भाउ कुमारिकाओंने संवर्चक नामक वायु चलाकर भूमिको साफ़ कर दिया । मेरु-पर्वतके नन्दन-वनमें रहनेवाली भाउ कुमारिकाओंने गन्धादिकको यहाँ

की और स्वक-गिरिकी पूर्व दिशाकी आठों कुमारिकाएँ हाथों भारसी लिये जिनेश्वरकी माताके पास खड़ी रहीं । दक्षिण आठों कुमारिकाएँ पानोकी चारियाँ लिये खड़ी हो रहीं । पश्चिम दिशाकी आठों कुमारिकाएँ पंखे लिये खड़ी हो गयीं और उत्तर की आठों कुमारिकाएँ खंवर झुलाने लगीं । स्वक-गिरिकी रहनेवाली चारों कुमारिकाएँ दीपिकाएँ धारण किये खड़ी हो और स्वक-द्वीपमें रहनेवाली चारों कुमारिकामोंने रक्षापञ्चन भादि स्तुतिकाके कार्य किये ।

इसी समय शक्र-इन्द्रका निश्चल आसन चलायमान हो गया । उसी समय देवेन्द्रने, अवधि-ज्ञानसे जिनेश्वरका जन्म हुआ जानकर, तत्क्षण पदातिसैन्यके अधिपति नैगमेदीदेवको आह्वा देकर सुधोपा नामक मंडा पज्जाते हुए सब देवताओंको खबर दिलवायी । उसी समय सब देवता तैयार होकर देवराज इन्द्रके पास आये । इसके बाद इन्द्रने पालक देव से उत्तम विमान तैयार करवाया और परिवार सहित उस पर सवार हो, भ्रेष्ठ शृङ्गार किये हुए तीर्थङ्करके जन्म-गृहमें चले आये । वहाँ मा-स्यामीको प्रणाम कर, उनकी स्तुति कर, माताको विशेष रूपसे नमस्कार कर, उन्हें भवस्यापिनी निद्रा दे, प्रभुका मायामय प्रतिबिम्ब माताके समीप स्थापित किया । इसके बाद इन्द्रने अपने पाँच स्वरूप बनाये—एक स्वरूपसे उन्होंने जिनेश्वरको दोनों हाथमें लिया, दूसरे रूपसे छत्र धारण किया, तीसरे और चौथे रूपोंसे खंवर झुलाने लगे और पाँचवें रूपसे वज्र उछालते हुए आगे चले । इसी तरह चलते हुए वे मेरुपर्वतके शिखर पर पहुँचे । उसी समय अन्य तिरसठ इन्द्र भी अपने-अपने परिवारके साथ वहाँ आ पहुँचे । तदनन्तर मेरु-पर्वतके शिखर पर भतिपाण्डुकवला नामकी प्रियापर शाश्वत आसन मारे बैठे हुए सौधर्मेन्द्र भी जिनेश्वरको अपनी गोदमें लेकर बैठ रहे और मन्युतेन्द्र भादि देवोंने सोने, चाँदी, मणि, काष्ठ और मिट्टीके अनेक-नेक कस्तूरोंमें तीर्थोंके जल भर कर बड़े हर्षके साथ भी जिनेश्वरका

अभिषेक किया । इसके बाद सौधर्म इन्द्रने श्रीजिनेश्वरको अच्युतेन्द्रकी गोदमें रख दिया और त्रिभुवन-स्वामीको पवित्र स्नान करा, उनका समस्त शरीर उत्तमोत्तम घट्टोंसे पोंछ, चन्दनादिका विलेपन कर, हरि-चन्दन और पारिजातके सुगन्धित पुष्पोंसे उनकी पूजा कर, चक्षुदोषके निवारणके लिये राई-लोन धारकर, तीर्थङ्करको प्रणाम कर, भक्तिपूर्वक उनकी इस प्रकार स्तुति की,—

“हे अचिरादेवीकी कोख-रूपी पृथ्वीके कल्पवृक्षके समान, भव्य प्राणी रूपी कमलोंको खिलानेके लिये सूर्यके समान और कल्याणका समूह देनेवाले स्वामी ! तुम्हारी जय हो ।

इस प्रकार उदार धवनोंसे तीर्थङ्करकी स्तुति कर सौधर्म इन्द्रने प्रभुको उनके घर पहुँचा दिया और उन्हें माताके पास सुलाकर, सयके सामने ही कहा,—“जो कोई जिनेश्वर या इनकी माताकी धुराई करनेका विचार करेगा, उसका सिर-गर्भोंके दिनमें दरण्डके फलकी तरह तत्काल कट जायेगा ।” इसके बाद इन्द्र नन्दीश्वर द्वीपको चले गये । वहाँ अन्यान्य इन्द्र भी मेरुपर्वतसे घूमते-घामते बिना बोलाये चले आये थे । वहाँ उन लोगोंने भट्टाहिक-उत्सव किया और उसके बाद अपनी-अपनी जगह पर चले गये । दिक्कुमारियाँ भी अपने-अपने घर चली गयीं ।

इधर अचिरादेवीकी नींद रातके पिछले पहर टूटी । उस समय उनके शरीरकी सेवा करनेवाली दासियाँ अपनी स्वामिनीकी पुत्र सहित देखकर हर्षित तथा विस्मित हुईं । “मे ही पहले पहुँचूँ !” यही सोचती हुई सय-की-सय जल्दी जल्दी राजाके पास यधार्इ देने आयीं और बोलीं,—“हे महाराज ! इस पुत्रकी दार्इका काम दिक्कुमारियोंने आकर किया है और देवेंद्रोंने स्वामीको मेरु-पर्वत पर ले जाकर वहाँ इनका जन्माभिषेक महोत्सव सम्पन्न किया है । हम लोगोंको यह बात देवताओंकी जुबानी मालूम हुई है ।” यह बात सुनते ही राजा विश्वसेन मेघकी धारासे सिंचे हुए कदम्य-वृक्षकी भाँति रोमाञ्चित हो गये और उन्होंने उन दासियोंको हर्षके मारे मुकुटके सिवा अपने सय अङ्गोंके गहने उतार-

कर दे डाले । इसके बाद दर्वकी उमङ्गमें राजाने उन्हें इतनी सोना-चांदी इनाममें दी, कि उनकी सात पीढ़ियों तक खर्च करनेसे भी न घटे । इसके बाद हर्षित राजाने, जिसने जो मांगा, उसे वही दे डाला, प्रजाका कर माफ़ कर दिया, माण्डवीमें लिया आने वाला द्रव्य छोड़ दिया और सारे नगरमें गाना-यज्ञाना, धवल-मङ्गल और यथास्थानके महोत्सव जारी करा दिये । इसी तरह मंगलाचार होते रहे । इतनेमें चारहवाँ दिन आ लगा । उस दिन राजाने अपने सब यन्त्रुओंको अपने यहाँ बुलवाया और उन्हें भाँति भाँतिके भोजन करा, उनके सामने ही कहा,—“हे सज्जनो ! जिस दिनसे मेरा यह पुत्र माताके गर्भमें आया, उसी दिनसे सारे नगरसे महमारी भाँति उपद्रव दूर होकर शान्ति विद्यमान हो गयी, इसलिये मैं इस पुत्रका नाम ‘शान्ति’ रखता हूँ ।” यह सुन, सबने यह नाम पसन्द किया । शक्रान्द्रने भगवान्‌के अंगूठेमें अमृत डाल दिया था, उसीको पी-पी कर स्वामी, रूप-लावण्यकी सम्पत्ति-सहित, बुद्धिको प्राप्त होने लगी ।

भय कर्ता स्वामीके शरीरका वर्णन करता है । वह इस प्रकार है—
 स्वामीके हाथ-पैरके तलुबे लाल और शुभलक्षण-युक्त थे । उनके चिकने, लाल और ऊँचे-ऊँचे मछ भारसी (दर्पण) की तरह मालूम पड़ते थे; दोनों पैर कछुपकी तरह ऊँचे जान पड़ते थे, जंघाएँ मृगकी जंघाके समान थी । दोनों जाँघें हाथीकी सूँड़की तरह गोल और पुष्ट थीं । उनकी कमर बड़ी चौड़ी थी । दक्षिणायतन नामि बड़ी गम्भीर थी । उदर यज्ञकी तरह पनला था । उनका वक्षस्थल नगरके दरवाज़ेकी तरह विशाल और दृढ़ । था उनकी दोनों भुजाएँ नगरकी भर्मालाके समान लम्बी थीं । उनकी गरदन शङ्खकी तरह सुन्दर थी । उनके होंठ विम्वके-फलके समान लाल-लाल थे । उनके दाँत कुन्दकी कलियोंके समान थे । उनकी नासिका सज्जनोके आचरणकी भाँति ऊँची तथा सरल थी । उनके नेत्र कमल पत्रकी भाँति थे । उनका ललाट भट्टमीके चाँदकासा दिखाई देता था । उनके दोनों कान हिंडोलेके आकारके थे । उनका मस्तक उत्तम शोभित हो रहा था । उनके बाल चिकने, मीरेकी तरह काँटे

भीर अत्यन्त मुल्यमय थे । उनकी साँससे कमलकीसी सुगन्ध आती थी भीर उनके सारे शरीरकी कान्ति बमकते हुए सोनेके समान थी । इस प्रकार भेष्ट भूँहोवाले स्वामियोंके बहु-अल्पज्ञेय उत्तमलक्षण विराजमान थे ।

ऐसे लक्ष्मणोंसे कुछ तीनों प्रकारके ज्ञानसे भरे हुए, समग्र ज्ञान-विज्ञानके पारगामी भीर सब अनुष्णोंमें उत्तम भगवान् कमलाः बढ़ते हुए युवावस्थाको प्राप्त हुए, उस समय पिताने अनेक रूपवती तथा कुल-वती बालिकाओंसे उनका विवाह कर दिया । उन सब स्त्रियोंमें यद्योन्मती नामकी पटरानी भगवान् की अतिशय प्रेम-पात्री भीर सारे अन्तःपुरमें प्रधान हो गयी । पचास हजार वर्ष अत्यन्त होनेपर पिताने स्वामियोंको राज्यपर बैठाया ।

इसके बाद हृदयरथका आँव, सर्वार्थ-सिद्ध विमानसे च्युत हो, यद्यो-न्मतीके गर्भमें पुत्र-रूपसे भवतोर्प हुआ । उस समय रानी यद्योन्मतीने स्वयंसे एक देखा । कमलाः समय पूरा होनेपर शुभ मुद्राओंमें उनके पुत्र उत्पन्न हुआ । पिताने सूब धूनधानसे उत्सव कर, पुत्रका नाम स्वयंसे अनुसारहो ब्रह्मायुध रखा । कमलाः बढ़ता हुआ वह पुत्र, सब कलाओंका अभ्यास कर, युवावस्थाको प्राप्त हुआ । तब उन्होंने उसका विवाह अनेक राजकुमारियोंके साथ कर दिया ।

एक दिन राजा हानिनाथकी आयुधशालामें तुर्रकी सी कान्तिवाले हजार भारेपाता, भीर हजार दशोंसे अधिष्ठित बढ़ा हो उनमें चकरात उत्पन्न हुआ । उस समय आयुधशालाके रक्षकोंमें प्रभुको उस चक्र-रत्नकी उत्पत्तिका समाचार आ सुनाया । सुनकर स्वामोंने उसके उदरस्थमें भद्रादिका-मन्त्रोत्सव किया । इसके बाद वह चक्र आयुधशालासे बाहर निकलकर भास्करनाथकी ओर चला । उसके पीछे-पीछे राजा हानिनाथ भी सैन्य सहित चल पड़े । चक्रके पीछे आगे-आगे दौड़ते दूर दिग्गजों मारुत-गोपीके फल समुद्रका बिजारा निन्द्य ; वहाँ सेनाका पड़ाव डाक, मलय-गोपीके सामनेही शुभ आसन नारदर चक्रवर्ती बैठ रहे । उसी समय उनके प्रभाससे उनके अन्तर मण्डल-मने-बारह पोंडव पुरर रहनेका

उस तीर्थके अधिष्ठाता देवता-मागधकुमारका आसन डोल गया । यह देख, उन्होंने अवधि-ज्ञानका उपयोग कर, अपने आसन डोलनेके कारण मालूम कर लिया, उन्हें मालूम हो गया, कि श्रीशान्ति नामक चक्रवर्ती उहाँ खण्डोंको जीतनेके लिये तैयार हुए हैं और यहाँ आ पहुँचे हैं । यह ज्ञानकर देवताने सोचा,—“यदि भीर कोई चक्रवर्ती होता, तो मुझे उसकी भी आराधना करनी ही पड़ती । फिर ये तो श्रीशान्तिनाथ चक्रवर्ती जिनेश्वर हैं । इसलिये ये तो मेरे लिये अधिक आराध्य (पूजनीय) हैं । भला जिनकी भक्ति देवेन्द्र भी करते हैं, उनकी भक्ति मैं क्योंकर नहीं करूँगा ।” यही सोचकर मागधकुमार देव, उत्तमोत्तम यत्न तथा महामूल्यवान् मलङ्कार लिये हुए प्रभुके पास भाये और ये सब चीज़ें भेंट कर, कहा,—“हे स्वामी ! मैं पूर्ण विशाका पालक और आपका सेवक हूँ । आप जब जैसी आज्ञा चाहें, मुझे दे सकते हैं ।” यह सुन भगवान्ने उनको आज्ञाके साथ विशा किया ।

इसके बाद चक्रवर्ती चक्रके पीछे-पीछे चलते हुए दक्षिण-दिशामें भाये क्रमशः उन्होंने घर-दाम तीर्थमें आकर सेनाका पड़ाव किया और यहाँ अधिष्ठाता देवको भी मागधके देवताके ही समान अपने अधीन कर लिया । इसी प्रकार उन्होंने पश्चिम दिशाके प्रभासतीर्थके अधिष्ठाताको भी यशमें कर लिया और उत्तर-दिशामें सिन्धु-नदीके किनारे आ खड़े यहाँ भी पहिलेकी तरह उन्होंने सिन्धु-देवीको यशोभूत किया । देवीने प्रभुके पास आ, एक रत्नमय स्नान-पीठ, बहुतरे सोने, चाँदी और मिट्टीके कलश तथा अन्यान्य स्नानोपयोगी सामग्रियोंके साथ-साथ उत्तमोत्तम यत्नाभरण प्रभुकी भेंट करते हुए कहा,—“हे नाथ ! मैं सर्वदा आपका आज्ञाके अधीन हूँ ।” यह सुन, स्वामीने उनको सम्मानके साथ विशा किया और ॥ अपने स्थानको चली गयीं ।

इसके बाद प्रभुकी आज्ञासे चर्म-रत्नसे सिन्धुनदी पारकर सेनापति पश्चिम-खण्डपर विजय प्राप्त कर, प्रभुके पास भाये । इसके बाद चक्रवर्ती चैतान्य-पर्वतपर आया । उसी समय चैतान्यपर्वतके चैतान्यकुमार

देवता भी प्रभुके वशवर्त्तो हुए और खण्डप्रपाता नामक गुफाका द्वार आप-से-आप खुल गया । उसके अधिनायक हतमाल नामक देवने आप-से-आप प्रभुकी आज्ञा स्वीकार करली । उस गुफामें उन्मत्ता और निमगना नामकी दो अति दुस्तर नवियाँ हैं । उनके पार जानेंके लिये मिश्रियोंने तत्काल उनपर पुल बँधवाये, जिनके सहारे प्रभु सारी सेनाके साथ उस गुफाके अन्दर चले गये । वहाँका अन्धकार दूर करनेके लिये, उस पचास योजन लम्बी गुफाकी दोनों तरफ़ उनचास मण्डल काँकि-पीरल्लके बनाये गये । तब प्रभु उसके बाहर निकले । वहाँ भरतचक्रोंके समान प्रभुने तत्काल अपने बड़े पुण्योंके प्रतापसे आपात-चिलात नामक घुँचड़ोंकी अपने वशमें किया । इसके बाद सेनापतिके द्वारा सिन्धुके दूसरे पारका देश जीतकर, स्वामीने हिमाद्रिकुमार देवकी वशमें किया । इसके अनन्तर वृषभ-कूटके पास जा, चर्काने काँकिपीरल्लसे अपना नाम लिखा । तदनन्तर गङ्गानदीके उत्तर प्रदेश सेनापति द्वारा अपने अधीन कर, उन्होंने तमिस्रा-गुफाके नाट्यमाल देवकी वशवर्त्तो बनाया और उसी गुफाकी राहसे बाहर निकल कर गङ्गादेवोंकी शान्ति कर, उन्हींके किनारे अपना सेनाका पड़ाव डाल दिया ।

गङ्गानदीके किनारे रहनेवाले, बारह योजन लम्बे और नौ योजन चौड़े सन्धुके बच्चेवाले नौ नियोनोंकी म्यामाने अपने पुण्य-प्रतापसे जयन्त कर लिया । उन नवोंके नाम इस प्रकार हैं :—१.नेमरा, २.पारदु-बद, ३.निष्ठुल, ४.सर्वत्रक, ५.महाश्व, ६.कल, ७.महाकल, ८.माश्व, और ९.गन्धक । इन नवों विधियोंने क्या क्या होता है, क्या कर ना क्या करने होते हैं—इसे विद्वाने अच्छे-बुरे और कमके लियेकछ मनुष्य पढ़ाते हैं । सुनने पर उनके ज्ञानके बँडकों ज्ञान होता है । सोनने सुनने, लिखने, हठने और अर्थके अलङ्कारोंका मनुष्य पढ़ाते हैं । सोनने सोनने रह कर रहने हैं । सोनने सोनने रह रह रहने सोनने, ज्ञानों को उन्नति होते हैं । उन्ने बलने, ज्ञानों बलने—भूत, मायामय, अज्ञानका ज्ञान होता है । अन्तर्गत अज्ञाननिधिमें सोनने,

चाँदी, लोहा, मणि और प्रचालोंको उत्पत्ति होती है । भाठवीं माणव्य निधिमें समस्त युद्ध-नीति, समग्र आयुध और वीरोंके योग्य वस्त्र-आदि समूह होता है । और नवीं शंखक-निधिमें सब तरहके यात्रों और काव्य, नाट और नाटकोंकी विधि होती है । प्रत्येक निधिके एक पदयोपमकी आयुधों और उसी निधिके नामसे प्रसिद्ध हजार-हजार देवता अधिष्ठाता होते हैं । निधानोंको स्वाधीन कर, चक्रिने गङ्गाके पूर्वोप तटके प्रदेशको भी इसी तरह धरमें कर लिया । इस प्रकार स्वामीने भारतके छहों जण पर आधिपत्य विस्तार कर, सब दिशाओंको जीतकर अपने हस्तिनापुर नगरमें बड़ी धूम-धामसे प्रवेश किया । इसके बाद बत्तीस हजार मुकुटधारी राजाओंने चारह वर्ष पर्यन्त स्वामीके चक्रवर्त्तीके अभियेकक महोत्सव मनाया । चारह वर्ष बाद महोत्सवकी समाप्ति होनेपर प्रत्येक राजाने स्वामीको बहुत सा धन दिया और साथ ही दो-दो कन्याएँ भी दीं । इस तरह स्वामीको रूप और लावण्यसे शोभित देवाङ्गनाके समान चौंसठ हजार पत्नियाँ हाँ गयीं । प्रभुके सनापति आदि चौदहों रत्न हजार-हजार यक्षोंसे अधिष्ठित थे । उनके बीरासी लाख हाथी, बीरासी लाख घोड़े, और इतने ही शस्त्रोंसे भरे हुए ध्वजाङ्कित रथ भी थे । उनके परम समुद्रिशाली नगरोंकी संख्या बहत्तर हजार थी । उनके १६ करोड़ गाँव और इतनेही पैदल सिपाही थे बत्तीस हजार देव और इतनेही राजागण उनके अधीन थे । बीस हजार बत्तीस नाटक और रत्नोंकी क्षात्रे और भङ्गतालीस हजार नगर उनके अधीन थे । इस प्रकार बहुत बड़ी समृद्धि पाकर, चक्रवर्त्तीकी उपाधि प्राप्त कर, सुख भोगते हुए स्वामीने पच्चीस हजार वर्ष चिता दिये ।

एक समयको बात है, कि प्रलदेवलोकके भरिष्ट नामक प्रनरमें रहनेवाले सारस्वत आदि लोकान्तिक देवोंके आसन हिल गये । उसी समय भवविज्ञानसे प्रभुकी वीक्षाका समय आया जानकर वे प्रनुष-लोकमें भाग्य और बन्धो-जनोकी भाँति जय-जयकी ध्वनि करते हुए इन्होंने प्रभुकी इस प्रकार बिनती की,—“हे प्रभु ! बोध प्राप्तकर

धर्मका प्रवर्तन करो ।” यह सुनकर प्रभुने भी जान लिया कि मेरी दीक्षाका समय आ गया । उसी समयसे एक वर्षतक उन्होंने यात्रकोंकी मुहमांगा दान दिया और चक्रायुध नामक अपने पुत्रको राज्यपर बैठा-कर दीक्षा ग्रहण करनेकी उत्सुक हुए । उसी समय सब देवेन्द्रोंके भासन कांप उठे और वे भी श्री श्रीशान्तिनाथके दीक्षा-कल्याणकर्म आये । इसके बाद छत्र-चंघरसे सुशोभित प्रभु सूर्यार्य नामकी शिविका (पालकी) पर सवार हुए । उस शिविकाको पहिले अनुष्मोने, फिर सुरेन्द्रोने, भनुरेन्द्रोने, गरुडेन्द्रोने तथा नागेन्द्रोने डोया । पूरवने देव, दक्षिणने भनुर, पश्चिमने गरुड़ और उत्तरने नागसुमार उस शिविकाको डोये चले थे । भगवानके आगे-आगे नट लोग नाटक करते चलने थे, नागध लोग जय-जय शब्द कर रहे थे, और कितनेही अनुष्म प्रभुके ऐश्वर्यादिक सज्जनोंको बनेक उन्दों और यत्न-प्रवर्धनों वर्णन करते चले जा रहे थे । कितनेही लोग मृदङ्ग, सिंघा आदि बाजे ऊँचे स्वरसे बजा रहे थे । हाहा और हूँ नामके देव गन्धर्व सातों स्वरों, तानों मन्त्रों, तानों मूर्च्छनाओं, लय और माषाके सहित ध्रुव सङ्गीत गाव कर रहे थे । रम्भा, तिलोत्तमा, उर्वशी, मेनका और लुकेमिका प्रभुके आगे-आगे हाव-भाव और बिलासके साथ मनोहर नृत्य कर रही थीं । हाव-भावार्थि लक्ष्मण इस प्रकार होते हैं—हाव भङ्गको चेष्टाको कहने है और भाव चित्तसे उत्पन्न होता है । बिलास भाँखोसे उत्पन्न होता है और विघ्न भृङ्गटिसे उत्पन्न होता है ।

इस प्रकारके साज सामानके साथ मन्-मन्द गतिसे बगरके बाहर निकलकर, प्रभु सहस्राब्जनन बानक उद्यानमें आकर शिविकासे उतर रहे और सब आनन्दियोंको उतार कर, हाड़ी-मूँछ और तिरके हाव-भावोंसे मोह लिये । उन चेष्टाको इन्द्रे करने चलके पाल्ये । धूम-धमके और-सागरने डे अकर हाव दिया । हाव-धनुर्गोचरे उर बन्दन नार्यो-नक्षत्रे हाव, तिलोको वनस्थार कर उर-

तप करते हुए, हजार राजाओं के साथ सर्वविरति-सामायिकका गठ करते हुए, चारित्र्य ग्रहण कर लिया ।

इसके बाद प्रभुने वहाँसे विहार किया । मार्गमें देशों, मनुष्यों और तिर्यञ्चोंका उपसर्ग सहन करते हुए श्रीजिनेश्वर पारणके दिन एक ग्राममें आ पहुँचे । वहाँ उन्होंने सुमित्र नामक गृहस्थके घर पारणा किया । श्रीजिनेश्वरको तीन ज्ञान तो गर्भमें ही उत्पन्न हो चुके थे । भयके दीक्षा लेनेके बाद चीया मनःपर्यवधान भी उत्पन्न हो भाया । इस प्रकार चारों ज्ञानके धारण करनेवाले स्वामी पुर, ग्राम और माकर भादि स्थानोंमें मौनावलम्बन किये हुए विचरण करने लगे । इस प्रकार आठ महीनेका उपस्थपर्यायपालन कर, पृथ्वीमण्डल पर विहार करते-फिरते हुए जगद्गुरु हस्तिनापुरके सहस्राश्रम नामक उद्यानमें पधारे और पत्रपुष्पादिसे युक्त मन्दिवृक्षके नीचे कायोत्सर्ग किये हुए ठिक रहे । वहाँ छटतप कर, श्रेष्ठ शुरुष्यान करते हुए प्रभुको, पीप-शुक्ल नयमीके दिन, जब चन्द्रमा भरणी नक्षत्रमें था, तब चारों घातीकर्मोंका क्षय हो जानेके कारण निर्मल केवलज्ञान उत्पन्न हुआ ।

उसी समय आसन काँपनेसे प्रभुके केवलज्ञान उत्पन्न होनेका हाल मालूमकर, चारों निकायके देवगण वहाँ आये और श्रीजिनेश्वरके लिए सुन्दर समयसरणकी रचना की । उन्होंने पहले हवा चलाकर एक यौवन प्रमाण पृथ्वीसे भूगुप्त पुद्गलोंको दूर किया । इसके बाद गन्वी-दककी वृष्टि कर उन्होंने धूलकी शान्ति कर दी । उनके पश्चात् अन्तर-देशोंने मणिरत्नमय भूपीठकी रचना की और उसपर घुटने बराबर फूलोंकी वर्षा कर डाली । उस पर वैमानिक देशोंने भीतरका रत्नमय गढ़ बनाया, जिसके कंगूरे मणियोंके बने हुए थे । इसके बाद ज्योतिषी देशोंने रत्नोंके कंगूरोवाली सुवर्णमय गढ़ तैयार किया । तदनन्तर भुवनपति देवताओंने एक तीसरा सुनहरे कंगूरोवाला चाँदीका गढ़ रचा । प्रत्येक गढ़में तोरण सहित चार-चार दरवाजे लगे । पहले गढ़में स्वामीके शरीरसे बारहगुना ऊँचा अष्टांक-वृक्ष बनाया गया ।



सहस्राभ्रवन नानक उद्यानमें प्यारे और पत्रपुष्पादिसे युक्त नन्दिरुतके नांचे
कायोत्सर्ग किये हुए टिक रहे । (पृष्ठ २८६)

स्वामीके केवलज्ञान उत्पन्न होनेका समाचार कह सुनाया । वह चक्रायुधने हर्षित होकर उसे उचित इनाम दिया और बड़े साथ उद्यानमें चले आये । तदनन्तर विधि-पूर्वक समवसरणमें श्री जिनेन्द्रकी तीन बार प्रदक्षिणा कर, उन्हें प्रणाम और सुविधि से दोनों हाथ जोड़े हुए उचित स्थान पर बंठ रहे । उस घान्ने मधुक्षीराधय-लम्बिवाली तथा पैतीस अतिशयवाली बाण्नीमें क देवता कह सुनायी—उसीके साथ उन्होंने चक्रायुधको उद्देशकर कहा—

“हे राजन् ! तुमने अपने बाहुयलसे बाहरी शत्रुओंको जीत लिया । परन्तु शरीरके अन्दर रहनेवाली पाँचों इन्द्रियोंको—जो बड़े भारी शत्रु हैं—नहीं जीता । इसीसे उनके शब्द, रूप, रस, गन्ध और स्पर्श भाग्य विषय बड़े-बड़े भगवंत करते हैं । देखो—शिकारीके संगीतको सुनते लिये काम बड़े किये हुए हरिणकी आग, इसी कर्णेन्द्रियके वशमें होनेके कारण चली जाती है । पतङ्ग, चक्षुर्न्द्रियको वशमें नहीं रखनेके कारण दीप-शिकाको सोना समझकर तत्काल उसमें कुद कर मर जाते हैं । मांसके टुकड़ेका रस चखनेमें भूली हुई मछली, रसनेन्द्रियके वशमें होकर, अगाध जलमें रहने पर भी मछुएके जालमें फँस जाती है । हाथीके मूँदकी सुगन्धते लुब्ध हुए भीरे, घ्राणेन्द्रियके वशमें न होनेके कारण, मरणको प्राप्त होते हैं और स्पर्शेन्द्रियके वशमें पड़ा हुआ हाथी पराधीनताके दुःखोंमें भा पड़ता है । हस्तिनीके शरीरका स्पर्श करनेमें भूला हुआ हाथी यन्धन तथा तोड़फूट अङ्गुराके प्रहारको सहन करता है । जो सत्पुरुष होते हैं, वे इन विषयोंको तत्काल त्याग देते हैं । पूर्व समयमें अपनी प्रियाका पेसा स्वरूप देखकर गुणधर्मकुमारने विषयोंका त्याग कर दिया था ।”

यह सुन, चक्रायुध राजाने, भक्तिसे नम्र होकर, स्वामीसे पूछा,—

“हे भगवन् ! वह गुणधर्मकुमार कौन थे ? और उन्होंने किस प्रकार विषयोंका त्याग किया था ? इसकी कथा सुनाकर—कह सुनाइये ।”

इस पर श्रीजिनाधीशने कहा,—“सुनो,—

गुणधर्म कुमारकी कथा

इसी भारत-क्षेत्रमें शौर्यपुर नामका एक नगर है। उसमें संसार-प्रसिद्ध राजा दृढ़धर्म राज्य करते थे। उनकी छोका नाम शील-शालिनी था, जो यथानाम तथा गुणकी कहावतको सब साधित कर रही थी। इन्हींके गर्भसे राजाके गुणधर्म नामक एक राजकुमार उत्पन्न हुए थे। क्रमशः राजकुमार बाल्यावस्थाको पारकर, कलाभ्यास करनेमें लगे और कुछही दिनोंमें यहत्तर कलाओंमें निपुण होकर युवावस्थाको प्राप्त हुए। रूप, लावण्य और गुणके कारण वे जगत्को आनन्द देनेवाले बन गये। कुमार पढ़े ही भाम्यशाली, सरल-स्वभाव, शूर-वीर, अपूर्व भाषण करने-वाले, प्रिय वचन बोलनेवाले, दृढ़ मैत्रीवाले और मनोहर रूपवाले—अर्थात् सर्वगुणसम्पन्न—हो गये।

वसन्तपुर नामक नगरमें ईशानचन्द्र राजाके कनकवती नामकी एक अति रूपवती पुत्री थी। जब वह युवावस्थाको प्राप्त हुई, तब राजाने उसके लिये स्वयंवर रचाया। स्वयंवर मण्डपमें गुणधर्म कुमार तथा अन्यान्य बहुतसे राजा और राजकुमार आये। सब राजाओंको रहनेके लिये महल दिये गये। एक दिन गुणधर्म कुमार स्वयंघर-मण्डप देखने गये। वहाँ राजकुमारी कनकवती भी आयी हुई थी। राजकुमारोंने कुमारको और कुमारने राजकुमारीको देख लिया। कुमारने उसकी नज़रोंसे ही समझ लिया, कि वह उन पर अनुरक्त है। इसके बाद वह राजकुमारी आनन्दसे कुमारकी ओर देखता हुई अपने घर चली गयी। कुमार भी परिवार सहित अपने ऊरे पर चले आये। इसके बाद घर पहुँचकर कुमारोंने कुमारके पास एक दासोंको भेजा, उसने कुमारके पास आकर उन्हें एक चित्रपट दिया। उसमें कुमारने एक राजदंतिनीकी चित्र अंकित हुआ देखा। साथही उसके नीचे यह श्लोक भी लिखा हुआ देखा:—

‘आनंदी दृष्टे प्रिये मानुरागाग्रौ कलहंमिका ।

पुनस्तद्वर्णनं शीघ्रं, वाञ्छित्वेव वसाम्यहो ॥ १ ॥’

अर्थात्—‘जिस दिन पहले-पहल इस राजहंसीने अपने प्राणप्यारे-को देखा, उसी दिनसे यह उनपर अनुराग करने लगी । इसी लिये अब यह बेचारी फिर उनके दर्शनकी इच्छा कर रही है ।

यह पढ़कर कुमारने उसी चित्रपट पर हंसका चित्र अंकित कर उसके नीचे यह श्लोक लिख दिया,—

“कलहंमोग्र्यसौ सधु, कथं दृष्ट्वाऽनुरागवान् ।

पुनरेव प्रियां द्रष्टुमहोवाञ्छन्मनारतम् ॥ २ ॥”

“हे सुन्दर भौरौवाली ! यह राजहंस भी क्षण भरके लिये प्रिया-को देखकर अनुरागवान् हो गया है । इसी लिये अब यह फिर निर-न्तर प्रियाको देखनेकी इच्छा करता है ।’

इस प्रकार लिखकर कुमारने वह चित्रपट दासीको लौटा दिया । इसके बाद कुमारीके दिये हुए ताम्बूल, विलेपन और सुगन्धित पुष्प आदि लाकर उस दासीने कुमारको दिये । कुमारने उन्हें हाथमें ले, फूलोंको सिरपर चढ़ाया, ताम्बूलको खा लिया और विलेपनकी शरीरमें लगा लिया । तदनन्तर कुमारने प्रसन्न होकर उस दासीको एक हार इनाममें दिया । हारको लेकर दासीने कहा,—“हे कुमार ! राजकुमारीका सदैवसा सुनो ।” इसपर कुमारने उस स्थानसे लोगोंको हटाकर वहाँ एकान्त कर दिया और दासीकी बातको सावधानीके साथ सुननेके लिये तैयार हो गये । दासीने कहा,—“राजकुमारीने तुम्हें कहला भेजा है, कि मैं कल सवेरे तुम्हारे मलेमें जयमाला डालूंगी । पर मेरा पाणिग्रहण करनेके बाद बहुत दिनों तक तुम्हें धिप्य-सेवन नहीं करना होगा ।” यह सुन, कुमारने उस बातको स्वीकार कर लिया । दासीने यह बात जाकर राजकुमारीको कह सुनायी । सुनकर वह मन-ही-मन यही सन्तुष्ट हुई ।

प्रातःकाल स्वयंवर-मण्डपमें हजारों राजा एकत्र हुए । उसी समय सुधास्तनपर बैठे हुई राजकुमारी वहाँ वा पहुँची और सब राजाओंको देख-भाल कर गुणधर्मकुमारके गलेमें वर-माला डाल दी । तब ईशानचन्द्र राजाने और सब राजाओंको सम्मान सहित विदा किया तथा गुणधर्मकुमारके साथ अपनी कन्याका विवाह कर दिया । इसके बाद भवपुरकी आशा लेकर गुणधर्मकुमार अपनी पत्नीके साथ नरने नगरको आये और ह्योको एक अच्छेसे महलमें रखकर आप दूसरे महलमें चले गये ।

एक दिन कुमार रानाके पास बैठे हुए थे । इसी समय उसने कुमारसे पूछा,—“हे स्वामिन् ! एकध प्रहेलिका (बुझीमल-पहेली) दुध्याओ ।” तब राजकुमारने कहा,—“हे प्रिये ! सुनो—

“स्वप्ने जाता उते स्वयं, जाति तेव न पूरति ।

उनप्रतीतिनां निष्प, वद सुन्दरि ! क न्यत्ता ! ॥ १ ॥”

अर्थात्—जो स्वप्ने तो उतान्नु हुई है; पर जत्ने ननमाने दंगने जाता-जाती है और इतनेपर भी जत्ने भरती नहीं है (इवती नहीं है); तापही जो लोगोही तारनेवाली है, वह कौनसी चीज है, तो हे सुन्दरि ! बतलाओ ।”

यह सुनकर कनकवर्तने विचार कर कहा,—“नीका” । इसके बाद उसने भी एक पहेली पूछी—

“न्योषभमाकान्ता, तन्वस्ते पुनर्मुता ।

नान्यक्यतनारुदा, क प्रपात्यवनां विदा ॥ १ ॥”

अर्थात्—“न्योषरके * नान्ये नन् (मुकी हुई), ननये गरीरवाची, पुनरे : पुल तेनी कौनसी चीज है, जो पुनरके कन्येपर चढ़कर जाती है ; पर वह ची नहीं है ।”

कुमारने इसके उत्तरने कहा,—“कावाकृति (काँवर) ।”

६ स्तव और चारोंका डहा : पुन और रत्ना ।

इसी प्रकार कुछ देर तक उसके साथ हँसी-दिल्ली कर, गुणधर्म-कुमार अपने घर माये और छान, भोजन, भंग-छेप आदि करके शान्ति-पूर्वक अपनी जगह पर बैठे हुए थे, इसी समय प्रतिहारने भाकर कहा,—“हे स्वामी ! आपके महलके दरवाज़ेपर एक साधु आपके दरवाज़ेकी इच्छासे आया हुआ है। यदि आपकी आज्ञा हो, तो मैं उसे भीतर बुला लाऊँ।” कुमारने कहा,—“बुला लाओ।” यह सुन, प्रतिहार उस साधुको बुला लाया। कुमारने साधुका बड़े धियनके साथ स्वागत किया। सच है, कुलीन मनुष्योंका यही स्वभाव है। कहा है,—

‘को चिन्ह मयूरं, गर्ह च को कुण्ड रापरिपात्रं ।

को कुलपाश गंधं, शिष्यं च कुम्पसूपाशं ॥ १ ॥’

अर्थात्—“मयूरको कौन चिह्नित करता है ? राजदरवाज़ेको मनी-हर गति किसने सिललाई ? कमलमें सुगन्ध किसने पैदा की ? और त्रेण कुलमें उत्पन्न हुए मनुष्यको गिनयी कौन बनाता है ?”—अर्थात् यह सब स्वभावमें ही होता है।

कुमारने उसे आसन दिया, पर वह अपने काष्ठासनपर ही बैठ रहा। इसके बाद राजकुमारने उसे प्रणाम कर उससे यहाँ आनेका कारण पूछा। इसपर उसने कहा,—“हे भद्र ! मैंने आचार्य वैराग्यने मुझे आपके पास आनेका बुला लायेके लिये भेजा है। उनकी आज्ञासे क्या काम है, यह मैं नहीं जानता।” यह सुन, कुमारने पूछा,—“हे मुनि ! वैराग्याचार्य कहाँ हैं ?” उसने कहा,—“वे नगरके बाहर एक स्थानमें टिके हुए हैं।” कुमारने कहा,—“मैं ज्ञातः काल उनके पास जाऊँगा।” यह सुन, वह तपस्वी ‘बहुत भयङ्ग’ कहकर अपने स्थानको छोड़ गया। इसी समय कालका ज्ञान करानेवाले अधिकारी पुष्पने इस प्रकार कहा,

‘सर्व प्राणान्तरं पूरे, स्मृतान्ते शिष्य च ।

नननन चहा नन ननन नानि दिशन्तः ॥ १ ॥’

अर्थात्—‘अहो ! यह सूर्य पहले उदयको प्राप्त हो, अपने प्रतापका विस्तार कर, इस समय तेजहीन होकर अस्ताचलको जारहा है ।’

यह सुन, कुमार सन्ध्याकालके कृत्य कर, सुषनिद्रामें रात बिता दी । प्रातःकाल काल-निवेदकने फिर कहा,—

“निहतप्रतिपन्नोऽसौ, सर्वेपामुपकारकृत् ।

उदयं याति तीग्नांशु—रन्योऽप्ययं प्रतापवान् ॥ १ ॥”

अर्थात्—“अन्धकार—रूपी सत्रुका नाश करनेवाला और सबका उपकार करनेवाला यह सूर्य उदयको प्राप्त हो रहा है । इसी प्रकार दूसरे लोग भी, जो प्रतापी होते हैं, उदयको प्राप्त होते हैं ।”

उसके ऐसे वचन सुन, गुणधर्मकुमार प्रातःकालके कृत्य कर, परिवार सहित भैरवाचार्यके पास आये । वहाँ बाघके चमड़ेपर बैठे हुए योगीको देखकर कुमारने पृथ्वीमें माथा टेककर भक्ति-पूर्वक उनको नमस्कार किया । उसी समय योगीन्द्रने बढ़े आदरके साथ उन्हें आसन दिखलाते हुए कहा,—“तुम उसी पर बैठो ।” उनके ऐसा कहने पर भी कुमारने विनयके साथ कहा,—“हे पूज्य ! मेरे लिये यह उचित नहीं है, कि मैं गुरुके समान आसन पर बैठूँ ।” यह कह, अपने सेवकके उत्तरीय चरित्रपर बैठते हुए उन्होंने कहा,—“हे प्रभो ! आपने इस नगरमें आकर मुझे कृताभं कर दिया ।” यह सुन, योगीन्द्रने कहा,—“हे कुमार ! तुम मेरे सब प्रकारसे माननीय हो ; परन्तु मैं अकिञ्चन मनुष्य ठहरा, अतएव किस प्रकार तुम्हारा स्वागत सत्कार करूँ ?” यह सुन कुमारने कहा,—“हे पूज्य ! आपका आशीर्वादही मेरा सत्कार है । आपके दर्शनोंसे ही मेरे सारे मनोरथ सिद्ध हो गये ।” यह सुन योगीन्द्रने फिर कहा,—“हे कुमार ! तुमने बहुत ही ठीक कहा ; पर लोकोक्ति तो यही कहती है, कि—

“भक्तिः प्रेम प्रियालापः, सन्मानं विनयस्तथा ।

प्रदानेन बिना लोके, सर्वमेतन्न धोभते ॥१॥

अर्थात्—“भक्ति, प्रेम, प्रियवचन, सम्मान और गिनतके दान बिना लोकमें कोई शोभित नहीं होता ।”

यह सुन, कुमारने फिर कहा,—“महाराज ! आप अपनी दयादृष्टिसे मुझे वेषों और सम्यक् प्रकारसे मुझे भाषा प्रदान करें, वस यही आपका बड़ा भारी दान है ।” यह सुन, योगीने कहा,—“हे कुमार ! मेरे पास एक बड़ा ही उत्तम मंत्र है । उसका मैंने आठ वर्ष तक जप किया है । इसलिये यदि एक दिन रात भर तुम विघ्नोंका निवारण करनेके लिये तत्पर होओ, तो मेरा सारा परिश्रम सफल हो जाये ।” यह सुन, कुमारने कहा,—“हे प्रभु ! यह काम मुझे किस दिन करना होगा ?” योगीने कहा,—“हे कुमार ! तुम कृष्ण चतुर्दशीके दिन भकेले रातके समय खड्ग लिये हुए स्मशानमें आओ । मैं वहाँ अपने अन्य तीन शिष्योंके साथ मौजूद रहूँगा । यह सुन, कुमारने कहा,—“बहुत अच्छा ।” और अपने घर चले आये ।

क्रमशः कृष्ण चतुर्दशी आ पहुँची । उस दिन रातके समय भकेले ही कुमार खड्ग लिये हुए स्मशान-भूमिमें आ पहुँचे । वहाँ पहुँचनेपर योगीने उनसे कहा,—“हे कुमार ! रातको भय उत्पन्न होगा, इसलिये तुम मेरी और इन उत्तर-साधकोंकी रक्षा करना ।” यह सुन, कुमारने कहा,—“हे योगीन्द्र ! आप स्वस्थ चित्तसे मन्त्रकी साधना कीजिये । मेरे रक्षक रहते हुए आपके कार्यमें कौन विघ्न उत्पन्न कर सकता है ?” इसके बाद योगीने एक मण्डप बना कर उसमें एक मुर्दा ला रखा और उसके मुँहमें आग डाल, होम किया । योगी होम कर ही रहे थे, कि इसी समय सब दिशाओंको गुँजाती, आसमानको फाड़ती और दुनियाँके ज्ञान बढ़रे करती हुई एक बड़ी भारी कड़ाकेकी भायाज पैदा हुई । इसी समय अकस्मात् ज़मीन फट गयी और उसके अन्दरसे एक भयङ्कर और यमराजकासा विकराल पुरुष प्रकट होकर बोला,—“रे पापी ! रे दिव्य स्त्रीका अभिलाषी ! मैं मेघनाद नामका क्षेत्रपाल यहाँ

नहीं है। यह क्या तुम्हें नहीं मालूम है? तू मेरी पूजा किये बिना हो नन्त्र सिद्ध करना चाहता है? तबपर तूने इस सोपे-सादे गज-कुमारकी भी धोखेमें ला रखा है।” यह कह, उस क्षेत्राधिपतिने उसे मार डालनेकी इच्छासे सिंहाद किया। उसे सुनते ही योगोंके तीनों चले पृथ्वीपर गिर पड़े। यह देख, कुमारने क्षेत्राधिपतिसे कहा,—“अरे! तू व्यर्थ क्यों गर्जन कर रहा है? यदि तुम्हें शक्ति हो, तो पहले मेरे साथ युद्ध कर।” यह कह, उसे शस्त्र-रहित देख कर, कुमारने भी मरने हाथसे खड्ग फेंक दिया। इसके बाद दोनों प्रचण्ड भुज-दण्डसे युद्ध करने लगे। अन्तमें युद्ध करते हुए बलवान कुमारने उस क्षेत्र-पालको अपने पाहुनसे परास्त कर दिया। इससे प्रसन्न होकर उसने कहा,—“हे महाबुध ! मैं तुनसे हार गया और तुम्हारे साहसकी देख-कर प्रसन्न हो गया हूँ, इसलिये तुम्हारी जो कुछ इच्छा हो, तुम्हसे मांगो।” यह सुन, कुमारने उसे अपने भुजयन्त्रसे बल्ला कर कहा,—“यदि तूने मेरे ऊपर प्रसन्न हो, तो इस योगोंकी इच्छा पूरी कर दो।”

यह सुन, क्षेत्रपतिने कहा,—“इच्छित फलको देनेवाला यह महा-नन्त्र तो तुम्हारे प्रभावसे इसे सिद्ध हो ही गया है। अब तूने कुछ अपनी इच्छित वस्तु मांगो, जिसमें मैं तुम्हें दूँ; क्योंकि देवताका दर्शन कभी निष्फल नहीं जाता।” यह सुन, कुमारने कहा,—“यदि ऐसा बात है, तो तूने ऐसा कर दो, जिससे मेरी पत्नी कनकवती मेरे वरामें हो जाये।” यह सुन, क्षेत्रपतिने ज्ञानसे उसका स्मरण कर कहा,—“वह ही तुम्हारे वरकी हो जायेगी और तूने मेरे प्रभावसे अपनी मनचाहों कर सकोगे।” इस प्रकार उसे वर-दान देकर वह क्षेत्रपाल मृत्यु हो गया। इसके बाद नन्त्रको सिद्धि कर, उस योगेन्द्रने कुमारको प्रशंसा करते हुए कहा,—“हे कुमार ! तूने समय पड़ने पर मुझे याद करना।” यह कह, योगी अपने शिष्योंके साथ अपने स्थानको चले गये। इसके बाद अपना शरीर मार्जन कर घर आये और वीरोंका याना उतारकर सो रहे।

दूसरे दिन, रातका पहला पहर बीतने पर कुमार भट्टस्य रूप (जो दूसरेको न दिखाई दे) बनाये अपनी पत्नी कनकघटीके महलोंमें भाषे । उस समय कनकघटी अपनी दो दासियोंके साथ बेठी बातें कर रही थी । बातों-ही-बातोंमें उसने दासियोंसे पूछा,—“हे सखियों ! इस समय कितनी रात बीती होगी ?” वे बोलीं,—“भभी दो पहर रात नहीं बीती है । स्वामिनी ! यहाँ जानेका समय हो चला है ।” यह सुन, कनकघटीने स्नान कर, अंगोंपर विलेपन लगाया और दिव्य वस्त्र पहन, बात-की-बातमें देवगृहके समान एक सुन्दर विमान बना कर उसीपर दासियोंके साथ सवार हो गयी । इसके बाद जब वह जानेको तैयार हुई, तब उसका यह सब बनाव—सिंंगार देख, आश्चर्यमें पड़कर गुणधर्मकुमारने सोचा,—“वे ! इस छीने विद्याधरियोंके समान विमान कैसे बना लिया ? और इस विमान पर चढ़ कर इतनी रात गये कहाँ चली आ रही है ? अथवा इस सोच-विचारसे मतलब क्या है ? मैं भी इसी तरह इसकी नज़रोंसे छिपा हुआ इसके साथ-साथ जाऊँ और चलकर देखूँ, कि यह कहाँ जाती है और क्या करती है ?” यही सोचकर कुमार भट्टस्य-रूपसे उसी विमानके एक कोनेमें चढ़ बैठे और साथ-साथ चल पड़े । वह विमान उत्तर दिशामें बढ़ी दूर जाकर नीचे उतरा । वहाँ एक बड़े भारी सरोवरके पास एक अशोक-वृक्ष था, जिसमें एक विद्याधर रहता था । कुमारने उसको देख लिया । कुमारकी पत्नी कनकघटी विमानसे नीचे उतर, उस विद्याधरको प्रणाम कर, उसके पास बैठ रही । इतनेमें और भी तीन कन्याएँ विमानोंपर चढ़ी हुई वहाँ आयीं और उस विद्याधरको प्रणाम कर, उसके पास बैठ रही । इसके बाद और भी कितने ही विद्याधर वहाँ आ पहुँचे ।

उस अशोक वृक्षके ईशानकोणमें श्रीयुगादि जिनेश्वरका मनोहर और विशाल चैत्य था । उस मन्दिरकी सीढ़ियाँ रत्नों और सुवर्णकी थीं, जिनसे वह मन्दिर देव-विमानकी तरह शोभित हो रहा था । घोड़ी

इसके बाद वह सारी नब्बली उसी मन्दिरमें चली गयी । वहाँ विष्णु-धरोने जिनेश्वरका स्नानमहोत्सव किया । इसके बाद विष्णुधरोने स्नानमें कहा,—“भाऊ नाननेकी धारो किसको है ?” यह सुनते ही नत्काल कनकवती खड़ी हो गयी और मोड़नोंको धराधर बांधकर रङ्गुनपुडने प्रवेश कर, हाव-भावके साथ मनोहर नृत्य करने लगी । अन्य ताँनों कन्याओंमेंसे एक यौन बजाने लगी, दूसरी बाँसरी बजाने लगी और तीसरी ताल देने लगी । उस समय गुणधर्मकुमार मद्रुष करते एक स्थानमें छोड़े-बड़े आश्चर्यके साथ यह सब तमाशा देखने लगे । इतनेमें नाचती हुई कनकवतीकी करघनी टूट गयी और उसमें लगे हुए सोनेके घुँघरूकी एक लड़ी टूटकर पृथ्वी पर गिर पड़ी, जिसे कुमारने तत्काल उठाकर अपने पास रख लिया । नाच बतन होनेपर कनकवतीने उसे धर-उपर बहुत डूँढ़ा, पर वह कहीं नहीं मिली । इसके बाद सब अपने-अपने घर चले गये । कनकवती भी अपनी दासियोंके साथ घर आयी । उसके साथ-ही-साथ कुमार भी छिपे-छिपे घर आये । कनकवतीने घर आकर विमानका लोप कर दिया । इसके बाद रातके सिल्ले पहर अपने घर आकर कुमार सो रहे ।

इसके बाद दूसरे दिन सबेरे ही अपने नित्र नखी-मुत्र नित्रसागरके हाथमें घुँघरूकी वह लड़ी देकर कुमारने कहा,—“हे नित्र ! यह घुँघरू-का दाना तुम मनय पड़ने पर मेरी छाँके हाथमें देना ।” इस प्रकार उसे सिखला पड़ाकर कुमार उसे लिये हुए अपने प्रियाके पास आये । कनकवतीने तुरतही उठकर उन्हें बैठनेके लिये आसन दिया । कुमार और उनके नित्र उत्तार बैठ रहे । इसके बाद कुमार अपनी छाँके साथ हुआ बैठने लगे । कनकवती जंत गयी । जंतकर बोली,—“प्यारे ! तुम हार गये—अब मुझे कुछ हज़ाना दो ।” यह सुनते ही कुमारने अपने नित्रको जोर इशारा किया । उसने तुरतही अपने बखले वह घुँघरूकी लड़ी निकाल कर कनकवतीके हाथमें दे दी । उसे देखतेही अभय होकर कनकवतीने कहा,—“यह तो मेरी है—तुम्हारे पान कैसे

न करमा और प्रतिदिन रातके समय विमानमें बैठकर मेरे पास मक्का करना । उसके ऐसा कहने पर भी, मैंने माँ-बापके आज्ञा और कुमारके भनुरागमें पड़कर इनके साथ शादी कर ली । यह मुझे प्यारे हैं और मैं इनकी प्यारी हूँ, इसमें शक नहीं ; पर वे किसी-न-किसी तरहसे मेरा धर्मापराध जाना जान गये हैं और शायद उन्होंने उस विद्याधरको भी भाँजों देल दिया है । अतएव अब मेरे मनमें यह शङ्का हो रही है, कि कहीं तो वह विद्याधर मेरे प्राणवल्लभकी जान ले लेगा या मुझे मार डालेगा । सखी ! इसीलिये मैं बड़ी चिन्तामें पड़ गयी हूँ । उसपर मेरी यह दुःस्थिति तो और भी आफ़तका परकाल हो गयी है । मेरा पितृकुल भीरु भयसुरकुल, दोनों ही उत्तम और प्रसिद्ध हैं । इधर दुनियाँमें हाँ तरङ्गकी प्रकृतिवाले लोग हैं, जो अघाही-तघाही बका हो करते हैं । इनो सब बातोंको सोच-साँच कर मैं व्याकुल हुई जाती हूँ ।” उसकी ये बातें सुन, उसकी सखीने कहा,—“सखी ! आज तो तुम यहाँ रह जाओ— मैं अकेला जाकर उससे कहूँगी, कि मेरी सखी की तद्विषय आज्ञा बकली नहीं है ।” यह सुन, कनकवतीने कहा,—“हे शुभविचाराली ! येलाही करी ।” यह कह, कनकवतीने विमानको रचना कर, उस दे दिया । यह स्योंही विमान पर चढ़कर बली, स्योंही गुणपर्मकुमार भी उसके साथ हो लिये । उन्होंने मन-ही-मन निश्चय किया,—“रहो, मैं आज ही उस विद्याधरकी सारी चौकड़ी भुलाये देता हूँ और जो-जो चीजें रहनेवाली होंगे, नाचाँका शीक मिटाये देता हूँ ।”

कमरा यह विमान घनमें पहुँचा । ओधरोंने धीजिनेधरकी कमरा पूरा प्रारम्भ कर दी थी । इतनेमें दाखी विमानपर चढ़ी हुई पड़ों और नौके उतरकर त्रिनालयमें भायी । कुमार भी छिरे-छिरे सब कुँ देकने लगे । इतनेमें एक ओधरने उस हासोसे पूछा,—“आज मानमें देर क्यों हुई और तुम्हारी स्वामिनी कहाँ रह गयी ?” उसने पड़लेसे ही मोधा दुधा उत्तर दिया, कि मनुष्य चारपल्ले मेरी स्वामिनीने आज मुझे ही यहाँ भेजा है । यह सुनते ही ओधरोंके स्वामिनीकोचके साथ कहा,—



इसके बाद हो दोनमिं भयभूर युद्ध होने लगा । “अन्तमें बलरामजी कुमारने मौका पाकर उस विद्याधरका सिर काट डाला और उसकी सारी सेना डर गयी । सबको गुण उर्मेकुमारने मोठे पवनमोसे शान्तकर ढाड़स दिया । इसी समय अन्य तीनों युवतियोंने कहा,—“हे स्वामी ! आज भाने हम लोगोंको इस दुष्ट खेवरके पन्नेने छुड़ा दिया !” यह सुन, कुमारने पूछा,—“तुम लोग किस-किसकी लड़कियां हो ?” उनमेंसे एकने कहा,—“शकपुरं नामक नगरमें तुलभराज नामके एक राजा है । मैं उसकी पुत्री हूँ, मेरा नाम कमलावती है । इसीके मरके मारे मैंने आज्ञाक विवाह करना भी नहीं स्वीकार किया ।” कुमारने पूछा,—“तुम्हारा भय कैसा था ? मेमका या कोयका ?” यह बानी,—“कोयका हो भय था । मेमका भला कैसे होता ? क्योंकि एक दिन मैं भाने मकानकी छिड़कीपर बैठो हुई थी, वहीसे यह दुष्ट मुझे हर ले गया । जब यह मेरी छिड़का काट लेनेको तैयार हुआ, तब इसने मुझे इस बानको मान लेनेको मजबूर किया, कि मैं इसकी आज्ञाके बिना विवाह न करूँगी और हर रातको इसके पास भाया करूँगी । तब इसने कहा, कि तेरी सवारीके लिये मेरी आज्ञासे निरन्तर विमान तैयार हो जाया करेगा । यदि यह बात तुझे स्वीकार हो, तो मैं तुझे छोड़ दूँगा और तेरी जान नहीं रूँगा । उसकी यह बात सुन, मैंने प्राणोंके मोहसे इसकी बात स्वीकार कर ली और सौमन्ध जायी । इसके बाद इसने मुझे नाचना सिखाया । इसी तरह इसने और भी तीन राजकुमारियोंको बशने किया है, पर आज इसे मारकर भायने हम सबको छुओ कर दिया ।” यह सुन, कुमारने उन सबको उनके घर पहुँचा दिया । इसके बाद कुमार उस दासीके साथ विमानपर बैठे हुए मन्त्रो प्रियाके घर भाये । इसी समय कनकवती कुमारको देख कर दासोंसे पूछ बैठो,—“हे सबो ! मेरे प्राणवत्तुमने क्या उन दुष्ट विद्याधरकी मार डाला ?” इसके जवाबमें उस दासीने उसमें सारा हाल यह सुनया । कनकवती मन्त्रे स्वामीकी कड़ी-कड़ी हुई कोछा-

का हाल सुनकर बड़ी प्रसन्न हुई । इसके बाद गुणधर्मकुमार बड़ी देर तक अपनी लीसे बातें करते रहे और साथे रात वहीं सोये ।

इसी समय उस विद्याधरके छोटे भाईने क्रोधमें भाकर नीशमें पड़े हुए गुणधर्मकुमारको उठा ले जाकर गम्भीर समुद्रमें डाल दिया और उसको लीको एक पर्वतपर ले जाकर छोड़ दिया । देवयोगसे कुमारको एक लकड़ीका तख्ता हाथ लग गया, जिसके सहारे वे सात रात बाद समुद्रके किनारे जा पहुँचे । वहाँ उनकी एक ठपस्वोले मुत्ताकृत हुई । उसीके साथ-साथ वे उस तरस्वोके आश्रममें चले भाये । वहाँ उन्होंने अपनी ली कनकपतीको भी देखा । कुमार कुलपतिको प्रणाम कर उसके पास बैठ गये । तब कुलपतिने पूछा,—“हे भद्र ! क्या यह ली तुम्हारी पत्नी है ?” कुमारने कहा,—“हाँ ।” उस तापसने कहा,—“परसों मैं जंगलमें गया हुआ था । वहाँ मैंने इस बालाको तुम्हारे विपांगसे ब्याकूल हो, पेड़से लटक कर जान देनेकी तैयार देखा । उसी समय मैंने इसका पाया छिन्न कर बड़ी-बड़ी मुश्किलोंसे इसकी जान बचायी । इसके बाद मैंने अपने ज्ञानसे तुम्हारे भातेका हाल जान लिया और इसे समझा-बुझाकर सन्तुष्ट किया ।” अब कुलपतिने ऐसा कहा, तब कुमार भरानो लीसे निठे । इसके बाद वे दोनों ली-पुण्य, बंले आदिके फल खा कर रातके समय उसी निजंन लतायामें सा रहे । इसी समय उस जेवरने फिर उन दोनोंको वहाँसे उठा ले जाकर समुद्रमें फेंक दिया । इस बार भी पूर्व-कर्मोंके प्रभावसे दोनोंको एक तख्ता हाथ लग गया, जिसके सहारे वे किनारे पहुँचे और फिर उसी स्थानपर आ गये । उस समय कुमारने कहा,—“ओह ! विधि-विहन्यना किसोसे जानी नहीं आती । कहा है, कि—

‘कीचरिषं प्रेनगतिं, नेधोत्थानं नरेन्द्रचितं च ।

विपन्नविधिः, विलसितानि च, को वा रक्षन्तीति विशादुन् ॥ १ ॥’

अर्थात्—‘लोकः चरित्र, प्रेनकी गति, नेधकी उत्पत्ति, रक्षय

मन, और बाय विधाताका विवास मला कौन-जान सकता है ;
अर्थात् कोई नहीं जान सकता ।

“सच है, विधि-विवास ऐसा ही हुआ करता है । अथवा, विषयमें भासक चित्तवालोंको विषय प्राप्त होना भी कुछ दुर्लभ नहीं है ।” इसके बाद उन्होंने फिर विचार किया,—“हाँ, उत्तम प्रभाववाले जीव इसी तरह वैराग्य प्राप्त कर, सब परिग्रह छोड़ कर, ममता-रहित होकर निर्मल तपस्या करते हैं ।” गुणधर्मकुमार ऐसा सोच ही रहे थे, कि इतनेमें कनकयतोने कहा,—“स्वामी ! आप इतने परकामी होकर भी क्यों खेद करते हैं ? आज तक आप बीरोग रहते चले आये और आपके किसी अंगमें कोई विकार नहीं है । कहा है, कि—

‘बीनोदातो न विदधे, नेकभ्यद्रा कृता मही ।

विषया नोपगुह्यध, प्रकामं निचिन्तेऽथ किम् ? ॥१॥’

अर्थात्—‘दीनोंका उद्धार नहीं किया, पृथ्वीका एकघण्टा राग्य नहीं किया, विषयोंको नहीं भोगा, तो फिर भय इनके लिये भक्तोंसे क्या करना !’

ये दोनों ऐसी-ही-ऐसी बातें कर रहे थे, कि इतनेमें रात हो आयी; परन्तु कुमार, भगनी स्त्रीकी बातें सुन, अपने चित्तमें वैराग्यकी भावना कर रहे थे, इसीलिये उन्हें नींद नहीं आयी । इसी समय यह खेद फिर यहाँ भा पहुँचा । कुमारने उसे हरा कर जीता ही छोड़ दिया । इसके बाद प्रातः काल होने पर कुमार, कुलपतिको प्रणाम कर, एक मगरमें चले गये । वहाँ बाहरकी तरफ एक उद्यानमें गुणरत्न महोदयि नामक सूरिको देखकर कुमारने प्रियाके सहित उनके पास जाकर उन्हें प्रणाम किया । इसके बाद उनकी मोहकस्वप्नी निद्राका नाश करनेवाली धर्मदेवता सुन, सूरिको प्रणाम कर, पदान्तमें जाकर वैराग्यमें ठहर कुमारने अपनी प्रियासे कहा,—“प्रिये ! अब हमें इन्हीं गुरुजीसे शिक्षा ले लेनी चाहिये ।” यह सुन, विषयोने धिरक नहीं हो चुकनेवाली

एगो हुए थे, मैं इन्हींकी भाँसासे दूर खला गया था, इसीलिये लौटकर उन्हें दूँद रहा हूँ । हे भद्र ! मैं तुमसे पूछता हूँ, कि क्या वह स्त्री उनके साथही उनके घर खली गयी ? ” यह सुन, कुमारने कहा,—“ वह तो न जाने कहाँ खली गयी । ” यही जवाब दे, उस आश्रमीको बिदाकर, उन्होंने अपने मनमें सोचा,— “निर्लज्ज स्त्रियाँ उपकार या सरसताके लिहाजसे पशुमें नहीं भातीं । इनको कुल, शील और मर्पादाका कुछ ज्ञान नहीं होता । जहाँ तक इन्हें एकान्त नहीं मिलता, समय नहीं मिलता, भयया चाहनेपान्ना पुण्य नहीं मिलता, वहाँ तक ये सती बनी रहती हैं । मारदकी यह बात बहुत ही ठीक है । ” यही सोचकर उन्होंने पासके ही एक नगर्में उसे उसके मामाके घर रख छोड़ा और उन्हीं मुनीन्द्रसे भाकर बोक्षा ले, उम्र तपस्या कर, आयुष्य पूर्ण होनेपर मृत्युको प्राप्त हो, देवलोकमें जा देव हुए तथा वहाँसे ज्युन होकर मनुष्यजन्म पाकर ये मोक्षपदको प्राप्त करेंगे ।

इधर कनकवती मामाके घरसे निकल कर गुणचन्द्र कुमारके घर खली गयी और उसकी प्यारी बनकर रहने लगी । वहाँ उसकी सौतेल्ले उसे जहर दे दिया, जिससे वह रीढ़ ध्यानमें मरी और चौधे नरकमें खली गयी । उस नरकसे निकल कर यह बिरकाल तक भय-समय करती फिरेंगी ।

गुणधर्म—कनकवती-कथा समाप्त ।

भगवान्ने कहा,— “हे राजा ! इसी तरह विषय नामक प्रमाद जायोंको महा दुःख दिया करता है । फिर हे राजन् ! कषायरोगी प्रमादके विषयमें नागदत्तकी कथा प्रसिद्ध है । वह श्रीमहाबोर जितेश्वरके तीर्थमें होनेवाला है, पर मैं तुमसे उसको कथा कहता हूँ । सुनो,—

ॐ X • १२३४५६७८९१०१११२१३१४१५१६१७१८१९२०२१२२२३२४२५२६२७२८२९३०३१३२३३३४३५३६३७३८३९४०४१४२४३४४४५४६४७४८४९५०५१५२५३५४५५५६५७५८५९६०६१६२६३६४६५६६६७६८६९७०७१७२७३७४७५७६७७७८७९८०८१८२८३८४८५८६८७८८८९९०९१९२९३९४९५९६९७९८९९१००१०११०२१०३१०४१०५१०६१०७१०८१०९११०१११११२११३११४११५११६११७११८११९१२०१२१२२१२३१२४१२५१२६१२७१२८१२९१३०१३१३२१३३१३४१३५१३६१३७१३८१३९१४०१४१४२१४३१४४१४५१४६१४७१४८१४९१५०१५१५२१५३१५४१५५१५६१५७१५८१५९१६०१६१६२१६३१६४१६५१६६१६७१६८१६९१७०१७१७२१७३१७४१७५१७६१७७१७८१७९१८०१८१८२१८३१८४१८५१८६१८७१८८१८९१९०१९१९२१९३१९४१९५१९६१९७१९८१९९२००

(१) नागदत्तकी कथा (२)

इस जम्बूद्वीपके भरतक्षेत्रमें ही वसन्तपुर नामका एक बड़ा भारी नगर है । किसी समय उसमें समुद्रवृक्ष और वसुवृक्ष नामके दो बड़े

भारी सौभाग्य रहते थे । वे दोनों ही शान्त, सुन्दर शीलवान्, अल्प कषायवान्, सरलचित्त और परस्पर मैत्री रखनेवाले थे । उनका एकही साथ कारबार चलता था । एक जो काम करता दूसरा भी वही काम करने लगता । उनका ऐसाही निश्चय था । एक दिन वे दोनों एक उद्यानमें गये । वहाँ सभानें बैठे हुए वज्रगुप्त नामक मुनिको धर्मदेशना देते देख, उन दोनोंने उन्हें शुद्ध भावसे प्रणाम किया और उनके पास बैठ, धर्म-कथा श्रवण कर, साधु-धर्मका प्रतिपालन कर, आयुके अंतमें संलेखना द्वारा मृत्युको प्राप्त हो, स्वर्ग चले गये । वहाँ भी उन दोनों देवोंने परस्पर ऐसी ही प्रीति यनी रही । एक दिन स्वर्गमें रहतेही समय उन्होंने निश्चय किया, कि हम दोनोंमेंसे जो पहले स्वर्गसे नीचे आयेगा, उसे स्वर्गमें रहनेवाला दूसरा मित्र धर्ममें स्थापित करेगा । ”

तदनन्तर कुछ समय बाद समुद्रदत्तका जीव स्वर्गसे व्युत्त हो भरतक्षेत्रके धरा-निवास नामक नगरके सागरदत्त नामक व्यवहारीके घर, उसकी भार्या धनदत्ताकी कोखमें नागकुमार देवताके घरदानसे, पुत्र-रूपसे अवतार ग्रहण किया । समय जानेपर माताने उसे प्रसव किया । मा-बापने उसका नाम नागदत्त रखा । क्रमसे समय पाकर वह बहत्तर कलाओंमें निपुण हुआ और गन्धर्व-कलानें विशेष अनुराग रखने लगा । इसीलिये वह संसारमें गन्धर्व नागदत्तके नामसे विख्यात हो गया । एक दिन वह बोधा वज्रानेन बतुर और गारुड़ी विद्यामें निपुण पुरुष मित्रोंके साथ नगरके उद्यानमें क्रीड़ा करने गया । इतनेमें स्वर्गमें रहनेवाले वसुदत्तके जांवने उसे धर्मकी ओरसे गाफिल देखकर पूर्वभवमें निश्चय किये हुए सङ्कल्पके अनुसार उसे तरह-तरहसे प्रति-योध दिया, परन्तु अब उसे कितनी तरह बोध न हुआ, तब उसने अपने मनमें विचार किया,—“यह बड़ी नीजमें है—पूरा तरह लुब्ध है । ” इसलिये अब तक यह प्राण-संशयकारी सङ्कल्पमें नहीं पड़ेगा, तबतक धर्ममें प्रवृत्ति नहीं होगा । ” ऐसा विचार कर, वह देव, सुववस्त्रिका

भीर रजोहरण लिये दुप मुनिका रूप बनाये, हाथमें साँपकी पिटारी धारण किये, वहीं भा पहुँचा, जहाँ नागदत्त कीड़ा कर रहा था । उसी समय पासके ही रास्तेसे उसे जाते देख, नागदत्तने पूछा,— “हे गार्हड़िक ! तुम्हारी इस पिटारीमें क्या है ? ” उसने कहा,— “साँप है । ” नागदत्तने कहा,— “तुम अपने साँपोंको बाहर निकालो । मैं तुम्हारे सर्पोंके साथ कीड़ा कईगा और तुम मेरे सर्पोंके साथ कीड़ा करो । ” इसके उत्तरमें उस व्रतधारीने कहा,— “हे भद्र ! तुम मेरे सर्पोंके साथ कीड़ा करनेकी बात भी न करो, क्योंकि मेरे सर्पोंको देवता भी नहीं छू सकते । फिर तुम मूर्ख बालक होकर मन्त्र या भीषणिको जाने बिना ही मेरे सर्पोंके साथ किस प्रकार कीड़ा करोगे ? ” यह सुन, नागदत्तने कहा,— “तुम देखो तो सही, कि मैं किस तरह तुम्हारे सर्पोंको ग्रहण करता हूँ । पर पहले तुम मेरे इन सर्पोंको तो ग्रहण करो । ” यह सुन उसने कहा,— ‘ भच्छा, अपने साँपोंको छोड़ो । ’ नागदत्तने अपने साँपोंको छोड़ दिया, पर ये उसके शरीर पर नहीं चढ़े और एकाध बार कड़क कर डंसा भी तो देवशक्तिके कारण उसके शरीरमें डंक नहीं व्याप सका । यह देख, नागदत्तने डाहके मारे कहा,— “हे गार्हड़िक ! अब दूर न करो, तुम्हारे पास भी जितने सर्प हों, उन्हें छोड़ दो । ” इसपर देवताने कहा,— “तुम पहले अपने सब स्वजनोंको एकट्ठा कर लो और राजाको साक्षी-रूपमें यहाँ बुलाओ, तो मैं अपने साँपोंको छोड़ूँगा । नहीं तो नहीं ? ” नागदत्तने ऐसा ही किया । तब व्रतधारी गार्हड़िकने ऊँचे स्वरसे कहा,— “हे भाइयो ! सावधान होकर मेरी बातें सुनो । यह नागदत्त गन्धर्व मेरे सर्पोंके साथ कीड़ा करना चाहता है । इसलिए यदि मेरे ये विषधर इसे डंस देंगे, तो आपलोग मुझे शोष न देंगे । ” यह सुनकर नागदत्तको उसके स्वजनोंने मना किया, तो भी उसने नहीं माना । इसी समय गार्हड़िकने अपनी पिटारीमेंसे चार सर्प निकाल कर चारों दिशाओंमें छोड़ दिये और कहा,— “मेरे ये सर्प बड़े क्रूर हैं । इन सर्पोंके स्वरूप मैं तुमसे वर्णन किये देता हूँ सुनो,—

जिला दो । तब उसने कहा,—“यदि यह जीवन भर कुम्हार किया करे, तो यह जी जायेगा । मुझे भी पहले इन सोंपोंने डंसा था । मैंने इनका घिय दूर करनेके लिये निरन्तर जैसी क्रियाएँ की है, वह सुनो—मैं सदा सिर और दाढ़ी-मूँछोंके बाल नोच देता हूँ, प्रमाणयुक्त श्वेत वस्त्र पहनता हूँ, उपवासादिक विविध प्रकारकी तपस्याएँ करता हूँ, इन तपस्याओंके पारणाके समय भी दूध-सूखा भोजन करता हूँ, कभी कण्ठ पर्यन्त भोजन नहीं करता और उबाला हुआ पानी पीता हूँ । भाइयो ! यदि मैं ऐसा न करूँ, तो इनका घिय फिर मेरी देहमें व्याप जाये । साधही मैं कभी घनमें रहता हूँ, कभी पर्वत पर रहता हूँ और कभी सूने घर या स्मशानमें ही रहता हूँ । इसी तरह रात्रि-दिवस रहित सम्यक् प्रकारसे अनेक परिपक्षोंका सहन करता हूँ । ऐसा ही करनेसे मेरे घिय नहीं बढ़ने पाता । और जो कोई भल्य आहार करता है, भल्य निद्रा लेता है और भल्य वचन बोलता है, उसके यशमें ही ये संप्रै हो जाते हैं । यही नहीं, देयता भी उसके अधीन हो रहते हैं । इसलिये भाइयो ! अधिक कहनेसे क्या लाभ । यदि यह मेरे कहे मुताबिक रहे, तो जियेगा, नहीं तो अवश्य ही मर जायेगा ।” यह सुन सब मनुष्योंने कहा,—“हे गारुडिक ! यह भी ऐसा ही करेगा । तुम कुछ ऐसा उपाय कर दो, जिससे विश्वास उत्पन्न हो ।” उनकी ऐसी बात सुन, उस गारुडिकने एक बड़ा भारी मण्डल बीजा और सब सिद्धोंको प्रणाम कर, सारी महाविद्याओंको नमस्कार कर, इस प्रकारकी पवित्र विद्याका उच्चारण किया,—“सर्वे प्राणातिपात, सर्वे मृषावाद्, सर्वे भ्रष्टादान, सर्वे मैद्युन और सर्वे पत्रिहको तुम जोते जी सर्वथा त्याग करो ।” इसी दण्डको तीन बार कहनेके बाद उसने अन्तमें ‘स्याहा’ शब्दका उच्चारण किया, इससे वह श्रेष्ठीपुत्र तुरन्त होशमें आकर उठ बैठा । उसकी विद्याके प्रभावसे जब वह नींदसे जगे हुएकी तरह उठकर खड़ा हुआ, तब उसके स्वप्नोंने गारुडिककी कही हुई सब बातें बतला दीं । पर नागवृत्तने उस तरहकी क्रियाएँ

करनेसे इनकार किया और घरकी तरफ चल पड़ा । रास्तेमें जाते-जाते वह फिर बेहोश होकर गिर पड़ा । इस बार भी उसके स्वजनोंकी प्रार्थना सुनकर गारुडिकने उसकी बेहोशी दूर कर दी । इसी तरह तीसरी बार भी वह बेहोश हुआ और फिर होशमें लाया गया । अचानक उसे दृढ़ निश्चय हो गया और गन्धर्व नागदत्तने उसकी बात मान ली । इसके बाद वह देव उसे जड़ूलमें ले गया और अपना देव-रूप दिखा, उसे पूर्व भवका स्वरूप बतलाया, जिससे नागदत्तको जाति-स्मरण हो आया । वह पूर्व भवका स्मरण कर प्रत्येकबुद्ध मुनि हो गया । इसके बाद देवने उसे प्रणाम कर अपने स्थानकी यात्रा की । इसके अनन्तर वह मुनि, चार कपाय-रूपों-सर्पोंको शरीर-रूपों पिटारीमें बन्दकर, उन्हें बाहर आनेसे रोकने लगा । इस प्रकार मुनि नागदत्त कपायोंको जीत, समग्र कर्मोंका क्षय कर, कितनेही कालके अनन्तर केवल-ज्ञान प्राप्तकर, मोक्षको प्राप्त हुआ ।

इति गन्धर्व-नागदत्त-कथा समाप्त ।

शान्तिनाथ परमात्माने कहा,—“इसी प्रकार चिवेकी जनोंको चाहिये, कि पाँचों प्रकारके प्रमाद^{*} त्याग दें तथा चारों प्रकारके धर्म[†] को अङ्गीकार करें । यह धर्म साधु और धावकके भेदसे दो प्रकारके हैं । इनमें क्षान्ति इत्यादि दस प्रकारके यतिधर्म कहे जाते हैं और धावक-धर्म बारह तरहके हैं । दोनों ही प्रकारके धर्मोंमें पहले सम-कित माना गया है । यह समकित दो तरहका, तीन प्रकारका, चार प्रकारका, पाँच प्रकारका और दस प्रकारका कहा जाता है । इसे सिद्धान्तके अनुसार जानना । और पाँच अणुव्रत, तीन गुणव्रत और चार शिक्षाव्रत—ये बारह प्रकारके धावकधर्म अनन्त जिनेश्वरोंने बतलाये हैं । इनमें प्रथम स्थूल प्राणातिपात नामक पहले अणुव्रतको कथा इस प्रकार है—

* नय, विषय, कषाय, निद्रा और विकृषा ।

† शान, धील, तप और भाव ।

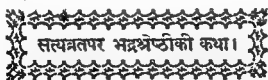
यमपाश-मातङ्गकी कथा

किसी नगरमें यमपाश नामका एक तलारक्षक रहता था । वह जातिका चाण्डाल था ; परन्तु कर्मसे चाण्डाल नहीं था । उसी नगरमें व्याधि गुणोंसे युक्त नलदाम नामका एक सेठ रहता था । उसकी स्त्रीका नाम सुमित्रा था । उसीके गर्भसे उत्पन्न भस्मण नामका एक पुत्र भी उसके था । एक दिन उस नगरके राजाके यहाँ कोई व्यापारी एक बड़ा ही अच्छा घोड़ा ले आया । उसकी परीक्षा करनेके लिये ज्योंही राजा उसपर सवार हुए, त्योंही राजाका कोई शत्रु देव उस घोड़े पर सवारी कर बैठा, जिससे वह घोड़ा भाकाशमें उड़ गया और बड़े वेगसे दौड़ता हुआ बड़ी दूर एक वनमें चला गया । वहाँ भकेला पाकर, उस निर्जन वनको देख, भयभीत हो, राजाने उस घोड़ेको छोड़ दिया । वह घोड़ा वहींका वहीं गिर कर ढेर हो गया । इसी समय एक मृगराजाके पास आ पहुँचा । राजाको देख, जाति स्मरण द्वारा अपने पूर्व भवका हाल जानकर उस मृगने पृथ्वी पर लिख कर राजाको सूचित किया, कि—“हे राजन् ! मैं पूर्व भवमें भापका देवल नामका ब्रह्माभूषणोंकी रक्षा करनेवाला सेवक था । मरते समय मार्चध्यान द्वारा मरण प्राप्त करनेके कारण ही मैं तिर्यच योनिमें मृग हुआ हूँ ।” इस प्रकार अपना हाल सुनाकर उसने प्यासे राजाके भागे-आगे चलकर उन्हें एक जलाशय दिखाया । वहाँ पहुँचकर राजाने जलपान किया, मुँह धोया और स्वस्थ हुए, इतनेमें राजाकी सेना भी आ पहुँची । राजा अपने जीवनदाता मृगको साथ लिये हुए अपने नगरमें आये । वहाँ वह मृग राजप्रासादसे लेकर नगरके चौक भादि स्थानोंमें स्वच्छन्द भावसे घिघरण करने लगा । उसे कोई बातोंसे भी दुःखी नहीं करता था । कदाचित् वह किसीका कुछ दुःखतान

व्याधिसे अत्यन्त पीड़ित हो रहा था, घूमता-फिरता हुआ हमेशा नर्म भावा और वहाँ टिके हुए मुनिकी बड़ी मलिके साथ चन्दना की । उनके प्रभावसे मेरा पुत्र नीरोग हो गया । उसने घर आकर मुझसे यह हाल कहा । यह सुन, कुटुम्ब सहित रोगसे पीड़ित मैं भी वहाँ गया और मुनिकी प्रणाम किया । इसके बाद मैंने आवश्यकधर्म अङ्गीकार कर लिया और जोयज्ञीय पर्यन्त हिंसाका त्याग कर दिया । हे राजन् ! उन मुनि-धरने मुझसे अपने प्रतिबोधकी कथा कह सुनायी थी, इसलिये मैं उनका सारा हाल जानता हूँ ।" यह सुन, राजाने सन्तुष्ट होकर यम-पाशका सत्कार किया और उसे सारी चाण्डाल-जातिका स्वामी बना दिया । इसके बाद राजाके हुक्मसे दूसरे चाण्डालने मम्मणको फल कर डाला । यमदण्ड अपनी आयु पूरी होनेपर मरकर देवता हो गया ।

प्रतिपात-विरति-सम्बन्धीनी यमपाश-कथा समाप्त ।

दूसरा मृषावाद्-विरमण नामक मत है । कन्या, माँ, और मूमिके विषयमें असत्य बोलनेसे परहेज रखना, किसीको धरोहर न मार लेना या झूठी गवाही न देना यही पाँचों मृषावाद्-विरमणके स्वरूप हैं । इसके विषयमें भद्रश्रेष्ठीकी कथा इस प्रकार है—



इस जम्बूद्वीपके भरतक्षेत्रमें क्षिति-प्रतिष्ठित नामक नगर है । उसमें सुषुद्धि और दुषुद्धि नामके दो निर्धन बनिये रहते थे । वे दोनों बड़े ही प्रसिद्ध और परस्पर मैत्री रखनेवाले थे । एक बार वे दोनों बहुतसा किराना माल लेकर धन कमानेके लिये परदेशको चले । क्रमशः वे लोग एक बड़े पुराने और जीर्ण नगरमें आ पहुँचे । वहाँ वे लाभकी इच्छासे कई दिनोंतक टिके रह गये । एक दिन सुषुद्धि एक दूरे-फूरे मकानमें शीघ्र करनेके लिये बैठा हुआ था, कि इसी समय उसे एक खजाना

सुबुद्धिने कहा—“हे मित्र ! यदि मुझे यह धन हड़प कर लेनेकी ही इच्छा होती, तो मैं पहले तुमसे इसकी चर्चा ही क्यों करता ? तुम खुद ही धोखेबाज़ हो, इसीलिये मुझे भी ऐसा ही सम्भव रहे हो।” इसी तरह परस्पर भगड़ा करते हुए वे दोनों राजाके पास पहुँचे। वहाँ सबसे पहले दुर्बुद्धिने ही राजासे प्रार्थना की, कि—“हे देव ! मैं एक जगह गड़ा हुआ धन पाया था। उसे मैंने आपके ही दरसे एक पेड़के नीचे गुप्त रीतसे गाड़ दिया था, परन्तु इस सुबुद्धिने मुझे खूब छकाया—इसने यह सारा धन वहाँसे उड़ा लिया है। इसलिये हे नरेन्द्र ! आप इसका जैसा उचित हो वैसा न्याय कर दें।” यह सुन, राजाने उससे पूछा,—“इस विषयमें तुम्हारा कोई गवाह भी है या नहीं ?” दुर्बुद्धिने कहा,—“हे स्वामिन् ! और तो कोई गवाह नहीं है, पर मैंने जिस वृक्षके नीचे धन गाड़ा था, वह वृक्षही यदि कह दे, तब तो आप सच मानेंगे न ?” राजाने कहा,—“हाँ, जरूर मानूँगा।” उसने कहा,—“अच्छा तो कलही इस बातकी परीक्षा कर लीजिये इसके बाद राजाने दोनोंकी ज़मानत लेकर उन्हें बिदा कर दिया और वे अपने-अपने घर चले गये। सुबुद्धिने सोचा, “ये ! यह दुर्बुद्धि ! ऐसा दुष्कर कार्य किस तरह कर सकेगा ! क्योंकि लोग कहा करते हैं, कि धर्मकी ही जय होती है, अधर्मकी नहीं।” ऐसा विचार कर यह निश्चिन्त मनसे अपने घर गया।

इधर दुष्टदुद्धिने अपने घर था, कपटका जाल फैलानेके विचारसे अपने पिता भद्र धोषीको एकान्तमें बुलाकर कहा,—“हे पिता ! मेरी एक बात सुनो। सारी मुहरें मेरे हाथमें आ गयी हैं। मैं रातके समय चुपकेसे तुम्हें उस वृक्षके कोटरमें ले जाकर रख आऊँगा। सवेरे जब सब लोग इकट्ठे हों, तब तुम कहना, कि सुबुद्धिने ही दुर्बुद्धिको धोखा देकर सब धन ले लिया है। यह सुन उसके पिताने उससे कहा,—“हे पुत्र ! तेरा यह विचार अच्छा नहीं है। तो भो तेरा आग्रह देखकर मैं ऐसा ही करूँगा।” यह सुन, हर्षित होते हुए दुर्बुद्धिने रातके समय चुपकेसे अपने पिताका ले जाकर उसी पट-वृक्षके कोटरमें रख दिया।

प्रतःकाल राजा और नगर-निवासियोंके सामने मूल और चन्दन लेकर उस वट-वृक्षकी पूजा करते हुए उसने कहा,—‘हे वट-वृक्ष ! तू सच-सच बतलाओ कि यह धन किसने लिया है ! इस विवादका निर्णय तुम्हारे ही ऊपर निर्भर है, इसलिये सच बतलाओ : क्योंकि—

‘मत्पेन धायते वृक्षो, मत्पेन तपते रश्मिः ।

मत्पेन वायवो वान्ति, मयं मत्पे प्रतिष्ठितम् ॥१॥’

अर्थात्—‘तत्पेन ही वृक्षों टिछी हुई हैं, मत्पेन ही सूर्य प्रकाश फैलाते हैं, मत्पेन ही प्रतापने हवा चलता है । तब कुछ मत्पेन ही बहरा हुआ है ।’

उसके ऐसा कहने पर उस वट-वृक्षके कोटरमें देखा हुआ बड़सेठ बोला,—‘हे भाइयो ! तुम—सुबुद्धिने ही लोभके चामे आकर सब धन ले लिया है ।’ यह सुन कर सबको बड़ा बाध्य हुआ । इसके बाद राजाने सुबुद्धिसे कहा,—‘हे सुबुद्धि ! तू अपराधी है । तूही धन चुरा ले गया है । जा, शीघ्र इसे वापिस कर दे ।’ राजाकी यह बात सुन, सुबुद्धिने अपने मनमें विचार किया,—‘वृक्ष तो अचेतन है, इसलिये यह हरगिज़ बोल नहीं सकता । हो न हो, इसमें भी सुबुद्धिवां कोई चालवाज़ी है । मालूम होता है कि इसने किसी आदमीको इस वृक्षके कोटरमें सिंघला-पड़ाकर रख छोड़ा है, नहीं तो वृक्षसे यह मनुष्यकी सी बात कैसे निकल सकती है ?’ ऐसा ही विचार करके उसने राजासे कहा,—‘महाराज ! मैं धन तो ज़रूर वापिस करूँगा : पर मेरी कुछ अज़्मीत तो सुन लीजिये, तो बड़ी दया हो ।’ राजाने कहा,—‘तो फिर कहता क्यों नहीं ? जो कुछ कहना हो, जल्द-कह डाल ।’ सुबुद्धिने कहा,—‘महाराज ! मैंने लोभान्ध होकर मित्रको भी धोखा दिया और धन ले लिया : परन्तु मैंने वह धन इसी वटवृक्षके अन्दर रख छोड़ा था । इसके बाद जब मैं फिर उसे लेने आया, तब एक भयानक सर्प फन फैलाये नज़र आया । उसे देखकर मैंने सोचा, कि इस धनपर तो किसी देवताका ज़हरा मालूम

पड़ता है। यही सोचकर मैं फिर कर घर लौट आया। अब यदि भापकी भाशा हो, तो मैं किसी-न-किसी उपायसे उस धनके अभिना-यक सर्पको मार डालूँ, जिससे यह धन हाथ लग सके।" उसकी ऐसी बातें, जो सब-सी मालूम पड़ती थीं, सुनकर राजाने कहा,— "भच्छा, तुम जैसा चाहो, वैसा करो।" यह सुन, सुमुद्रिने उसी समय सबके सामने कंठे लाकर उस वृक्षका कोटर भर दिया और उसके चारों ओर सूखे हुए कंठे रखकर उनमें भाग लगा दी। कंठोंके धुपसे व्याकुल होकर बुधबुद्धिका पिता भद्रसेठ उसी समय वृक्षके कोटरमेंसे निकल आया और ज़मीनमें गिर पड़ा। राजा भादि सब लोगोंने उसे देखकर मुरत पहचान लिया। उसे देख, भाव्यवित हो-कर सबने उससे पूछा,— "भद्रसेठ! यह क्या मामला है?" उसने कहा,— "हे राजन्! मेरे कुपुत्र बुधबुद्धि बुधुद्रिने ही इस प्रकार मुझसे झूठी गवाही दिलवायी है। झूठ बोलनेका फल तो मुझे इसी ज़ममें मिल गया। इसलिये किसीको भुले भी झूठ नहीं बोलना चाहिये।" यह कह, सेठ खुप हो रहा। इसके बाद राजाने बुधु-द्रिका सर्पसब छीन लिया और उसे देशनिकाळा दे दिया। सत्यपात्री होनेके कारण राजाने सुमुद्रिकी यत्नालङ्कार भादि देखकर सम्मानित किया और सबने उनकी बड़ी प्रशंसा की।

इस कथासे शिक्षा ग्रहण कर, मनुष्योंको चाहिये, कि इस लोक और परलोकमें हित करनेवाला सत्यवचन ही बाड़े और असत्यका संधा त्याग करें।

वृद्धसेठ-कथा समाप्त ।

अब स्फुल भद्रवृक्षका त्याग करना, तीसरा अणुग्रह है। इसका त्रिनक्षत्रकी मालि गालन करना चाहिये। अब श्रीशान्तिनाथ आगेने ऐसा कहा, जब कल्याणराज राजाने कहा,— "हे स्वामी! यह त्रिनक्षत्र कौन था? और उसने किस प्रकार हम तीनोंके यत्नका गालन किया था?" ऐसा पूछने पर मुने कहा,— "अह! उसको कह दो। मुनी,—

जिनदत्तकी कथा

वत्सलपुरमें जितराजू नामके राजा रहते थे। उसी नगरमें सेठ जिनदत्तका पुत्र जिनदत्त भी रहता था, जो जोंवा जोंवादितत्वोंका जलनेवाला उत्तम भ्रातृक था। वह युवावस्थाको प्राप्त होनेपर भी वैराग्य-प्रवृत्तिके कारण चरित्र प्रइप करना चाहता था और विच-हृदि बंध्योंसे भगा छिप्ता था। एक दिन वह अपने मित्रोंके साथ नगरके बाहर उद्यानमें गया हुआ था। वहाँ उत्तने एक ऊँचे शिखर-वाला बड़ा भारी जिनमन्दिर देखा। उसे देखते ही उत्तका चित्त हर्षसे छिठ उठा। इसके बाद विधिपूर्वक जिन मन्दिरमें प्रवेश कर, पुष्पा-दिते जिनेश्वरको पूजा कर, वह चैत्य बंदन करने लगा। इसी समय उसी नगरोंकी रहनेवालों एक कन्या वहाँ आयी। वह उत्तरांग वस्त्रसे मुख-कोय बांध, मनोहर सुगन्धित श्रृंगोंसे जिन प्रतिमाका मुख शोभित करनेके लिये उत्तके दोनों गालों पर दोल काढ़ने लगी। इस प्रकार उस लड़कीकी जिनेश्वरकी मूर्तिमें लगे देव कर मन-ही-मन आर्चनमें पड़े हुए जिनदत्तने अपने मित्रोंसे पूछा,—‘मित्रो! यह किसकी लड़की है?’ उन लोगोंने कहा,—‘ये! क्या तुम इसे नहीं जानते? यह ज्योतिष नामक सौदागरकी पुत्री, जिनमयी है जो सब स्थानोंमें शिरोनमि है। शहर तुम भी बस-काव्य आदि गुणोंसे पुरस्कारोंमें शिरोनमि हो रहे हो। इसलिये यदि कदाचित् विवाह तुम दोनोंको ओझों नित्य देतो उस सिरजिनशरको सारा निश्चय सफल हो जाये। उत्तको सुनिश्चयका प्रयास समर्थक हो जाये।’

उस मित्रोंने इस प्रकार हँस कर कहा, येजिनदत्तने कहा,—‘हे मित्रो! तुम लोग इस जिनमन्दिरमें नरें साथ स्थित कर रहे हो। यह ब्रह्म नहीं है। मित्रो! मैं शीघ्र ऐसा चढ़ा हूँ, यह क्या

तुम्हें मालूम नहीं है ? मैं तो इस लड़कीके मुख-मण्डन करनेकी चतुराई देखकर, राग-रहित भावसे तुमसे इसके बारेमें वैसा सवाल किया था। नहीं तो इस जिनालयमें श्री-जातिका नाम भी नहीं लेना चाहिये, क्योंकि सिद्धान्त-ग्रन्थोंमें लिखा हुआ है, कि जिनेश्वरके मन्दिरमें १ ताम्बूल, २ जलपान, ३ भोजन, ४ धाहन, ५ स्त्रीभोग, ६ शयन, ७ धूकना, ८ मृतना, ९ उच्चार और १० जुभा आदिका सेवन नहीं करना चाहिये । (ये दसों बड़ी आशातनाएँ हैं) इसलिये नारीकी यात चलानी भी उचित नहीं है ।” जिनदत्त ऐसा कह ही रहा था, कि जिनमतीने उसकी ओर देखा । उसका सुन्दर चेहरा-मोहरा और रूप लावण्यदि देखकर उस कन्याके चित्तमें अनुराग उत्पन्न हो आया, उसके मनकी यह हालत उसकी सखियाँ जान गयीं । घर जाकर उन सबने उसके माता-पितासे उसका यह अभिप्राय कह सुनाया । जिनदत्त भी अपने घर भा, भोजनकर, दूकान पर पहुँचा और द्रव्य उपार्जन करनेके लिये व्यापार करने लगा ।

इसी समय जिनमतीका पिता जिनदास सेठके पास आया और अपनी पुत्री उसके पुत्रको देनी चाहो । सेठने भी बड़े उल्लास और हर्षके साथ यह सम्यन्ध स्वीकार किया । उसने सोचा,—“जिसके पास अपने समान विद्य हो और जिसका कुल अपने समान हो, उसी के साथ मित्रता और विवाहका सम्यन्ध करना चाहिये, परन्तु यदि एक ऊँचे और दूसरा नीच कुलका हो, तो ऐसी असमानतामें सम्यन्ध करना उचित नहीं है ।” उसने फिर सोचा,—“माती हुई लड़कीका निषेध करना ठीक नहीं है ।” इसी प्रकार इन लोकोक्तियोंका मन-ही-मन विचार करते हुए उसने यह सम्यन्ध स्वीकार कर लिया और अपने प्रिय मित्र थेष्टोको आदरके साथ विदा किया ।

इसके बाद जब जिनदत्त घर आया, तब उसके पिताने उससे विवाहकी बात कही । यह सुनकर उसने कहा,—“मैं तो विवाह करने-काही नहीं हूँ । मैं वीर्य लेनेवाला हूँ ।” यह सुन, उसके पिताने उससे

राजाको यह बात तब मालूम पड़ी, जब वे घर लौट आये । उन्होंने उसी समय यमुदत्त कोतवालको उसे ढँढ़ लानेकी आज्ञा दी, राजाकी आज्ञा पाकर यमुदत्त कुण्डलकी तलाशमें चल पड़ा । इसी समय उसने अपने भागे-भागो उसी रास्तेमें जिनदत्तको भी किसी कार्यपरा जाने हुए देखा । उसी समय जिनदत्तने रास्तेमें कुण्डल पड़ा हुआ देखा, यह रास्ता ही छोड़ दिया और दूसरी राहसे जाने लगा । गोवा,—

“आत्मरश्मयंभूतानि, परत्रय्याक्षि मीरुतः ।

मातृस्पर्शपरोक्ष या पर्यानि न पर्यानि ॥ १ ॥”

अर्थात्—“जो तब प्राणियोंमें अपनी आत्माके समान जानता है, पराये धनको मिट्टीका देना समझता है और परायी स्त्रीको माताके समान देखता है, वही वास्तवमें देखता है ; अर्थात् वही पण्डित है ।”

इतनेमें पीछेसे यमुदत्त भी वहाँ आ पहुँचा और कुण्डलको पड़ा देखा उसे लिये हुए राजाके पास आकर उनके हवाते कर दिया । राजाने प्रसन्न होकर पूछा,—“हे भद्र ! तुम्हें यह कुण्डल कहाँ मिला ?” यह सुन, उस दृष्टने हृदय-भावसे राजामें कहा, “हे स्वामी ! इसे मैंने जिनदत्तसे लिया है ।” यह सुन, राजाने कहा,—“प्ये ! क्या जिनदत्त परद्रव्य ग्रहण करता है ? यह तो बड़ा धर्मात्मा और शिष्टीका कहलाना है ! धर्मात्माओंके विषयमें गूँसवाणोंका मन है कि,—

“प्राप्य किम्पुन नृप, स्मिन् व्याप्तिमाहितम् ।

अदत्त नादनीत नृप, पराधीनं वरिष्ठमिदम् । १ ॥”

अर्थात्—“तुम्हें क्या धन प्राप्त मिला गया है, धन गया है, नष्ट हो गया है, आनाशिक मिलने हो गया हुआ है, वगैरहके नीग्रह गया हुआ है अथवा अन्य कुछ गया है — यह इन सब बातवाचनों अदत्तही कहलाना है । बुद्धिमानोंकी वृत्ति यह कि गया अदत्त न हो न ले ।”

राजाका यह बात सुन, यमुदेवने कहा,—“हे स्वामिन् ! अदत्त

जैसा चोर तो शायद ही दूसरा कोई होगा । और-और चोर तो तुम्हें छिपे चोरी करते हैं; पर यह तो चौड़े मैदान पराया माल हड़प कर जाता है ।" यह सुन, क्रोधित होकर राजाने सोचा,—जिनदत्तको तो लोग बड़ा ही अच्छा आदमी बतलाते हैं; पर इसके कहनेसे तो पता चलता है, कि वह सज्जन नहीं है । अतएव यदि वह सचमुच दुष्टात्मा है, तो राजाको ओरसे उसे फाँसोंका हुक्म सुनाया जाना चाहिये ।" ऐसा विचार कर, राजाने बलुदत्तको हुक्म दिया,—“कोतवाल ! यदि जिनदत्त चोर है, तो तुम उसे जल्द-जल्द मार डालो ।” राजाका ऐसा हुक्म होते ही हर्षित चित्तसे बलुदत्तने जिनदत्तकी गिरफ्तार कर लिया और उसे गंधेपर बड़ा उसके तारे धरतपर रक्तचन्दनका लेप कर, दोल आदि वज्रवाते हुए उसे तिराहे-चौराहेको राह खूब घुमवाया । यह देख, उहाँ-तहाँ लोग ‘हा हा’-शब्द करने लगे । कमसे यह राज-मार्गमें लाया गया । इतनेमें शोरगुल सुनकर जिनमतों पासवाले घरसे बाहर निकल आये और जिनदत्तको दुःख देनेवाले सरकारो अफसरको देखा । उस समय उस बालकने रोते-रोते अपने मनमें विचार किया,—“अहा ! यह जिनदत्त घनात्मा, दयालु और देव-गुरुको भक्तिमें तत्पर है, तथापि यह निरपराध होते हुए भी ऐसी दुःखशायिनी शराकी क्यों प्राप्त हुआ ?” इतनेमें जिनदत्तने भी उसे अपनी ओर देखते देख लिया और उसके प्रति अनुरागवान् होकर अपने मनमें विचार किया,—“अहा ! इसका मेरे ऊपर कैसी अद्भुत प्रीति है ! मेरा दुःख देखकर यह भी बड़ा दुःखित मालूम पड़ता है । अतएव अबके यदि मैं इस सङ्कटसे उद्धार पा गया, तो इसे अवश्य ही स्वीकार करूँगा और कुछ दिनों तक इसके साथ सुख भोग करूँगा, नहीं तो आजसे ही मेरा सागरिक अनशन होगा ।” वह यही सोच रहा था, कि कोतवालके निर्दय मनुष्य उसे बधस्थानको ओर ले आये ।

इधर त्रिपतिव्रतकी पुत्री जिनमतोंने हाथ-पैर धो, घरके मन्दिरमें जा, प्रतिमाके पास बैठ, शासन देवताका मन-हो-मन चिन्तन करते हुए,

जिनदत्तने दुःखका नाश करनेके लिए शुद्ध-बुद्धिसे कायोत्सर्ग किया। उसके शीलके प्रभावसे तथा श्रेष्ठ मन्त्रिसे प्रसन्न होकर शासनदेवीने जिनदत्तकी मजबूत सूलीको भी पुराने तृणकी तरह तीन टुकड़े कर दिया। सब सिपाहियोंने उसके गलेमें फाँसी डाल, उसे एक वृक्षको शाखामें लटका दिया। यहाँ भी देवताने उसकी फाँसी तोड़ डाली। यह देख, क्रोधमें आकर कोतवालके मादमियोंने उसके शरीर पर चट्टानों का प्रहार किया। उस प्रहारको देवताने उसके शरीर पर फूल-मालाकी तरह कर दिया। उसका यह बढ़ा-चढ़ा हुआ प्रभाव देख, सिपाही बड़े भयम्भेमें भा गये और राजासे जाकर उन्होंने सब हाल कह सुनाया। राजा भी भय और आश्चर्यके साथ उसके पास भा पहुँचे और उसका ऐसा प्रभाव देख, उसे हाथीपर बैठाकर अपने घर ले भाये। तदनन्तर उन्होंने उससे बड़ी नम्रताके साथ सारा हाल सब-सब बतला देनेको कहा। इसके उत्तरमें उसने सारा कथा चिट्ठा कह सुनाया। यह सुन, राजा कोतवालपर बड़े येतारह नाराज़ हुए और उसका बध करने का हुक्म दे दिया। परन्तु दयालु जिनदत्तने राजासे प्रार्थना करके उसे छुड़वा दिया। उस समय राजाने उससे कहा,—“रे दुष्ट ! जो तेरी तरह, एक सम्यग्दृष्टिवाले धर्मात्माको मिथ्या दोष लगाता है, उस दुष्टका तो बध करनाही ठीक है।” जिनदत्तने कहा,—“हे राजन् ! मेरे ऊपर भाये हुए कष्टोंके लिये भाप इस बेचारेको क्यों दोष देते हैं ? इसका क्या अपराध है ? यह सब मेरे कर्मोंका दोष था।” इसके बाद राजाने सन्तुष्ट होकर उसपर पञ्चाङ्ग प्रसाद किया और बड़े उत्सवके साथ उसे घर पहुँचवा दिया। उसे देखकर उसके माता पिता आदि सभी स्वजन बड़े हर्षित हुए। उसी समय विषयित्रने आकर जिनदत्तसे कोतवालके भावे और जिनमतीके शासनदेवताका आराधना तथा कायोत्सर्ग करने आदिका वृत्तान्त कह सुनाया, जिसे सुनकर वह अपने मनमें बड़ा आनन्दित हुआ इससे बाद शुभ दिनको जिनदत्तने बड़ी धूम-धामसे जिनमतीके साथ विवाह किया और कुछ कालनक उमरके साथ संसारिक सुख-

भोगते हुए वैराग्य लेकर भार्याके साथही धीसुस्थित नामक आचार्यसे दीक्षा ग्रहण कर ली । चिरकाल तक द्रीक्षाका पालन कर, शुभध्यान-के साथ मृत्युको प्राप्त होकर वह प्रियाके साथ स्वर्गको चला गया ।

विनद्वन्द्व-कथा समाप्त ।

सबके धीशान्तिनाथ स्वामी राजा चक्रायुधसे चौथे व्रतका विचार कहने लगे,—“हे राजन् ! मैथुन दो तरहका होता है—एक औदारिक और दूसरा वैकिय । औदारिक मैथुन भी तिर्यञ्च और मनुष्यके भेदसे दो प्रकारका होता है तथा वैकिय मैथुन देवाङ्गना-सम्बन्धी होनेके कारण एक ही प्रकारका होता है । सब व्रतोंने यह व्रत बड़ा दुष्कर है । इस विषयमें कहा है, कि—

“नेरु गिरिहो जह पन्वमाखं, परावखो सारतरो गयाखं ।

साहो बलिहो जह सावयाखं, तरेव भीलं पवरं व्याखं ॥ १ ॥”

अर्थात्—“वैसे सब पर्वतोंने नेरु बड़ा है, सब हाथियोंने परा-वत बड़ा है, और सब शिकारी पशुओंमें सिइ बड़ा है, वैसेही सब व्रतोंने तील बड़ी है ।”

परस्त्रीका त्याग करना ही शीलव्रत कहा जाता है और सब स्त्रियों-का निषेध करना ब्रह्मचर्य कहलाता है । जो पर-स्त्री-लम्पट होता है, वह बड़ा भयङ्कर कष्ट पाता है । कहा भी है, कि—

“नपुंसकत्वं तिर्यक्त्वं, दुर्नाग्यं च भवे भवे ।

भवेन्नराद्यां कीद्यां-द्या-न्यद्वान्तामक चेत्तान् ॥ १ ॥”

अर्थात्—“परायी नारिने जातक चित्तगले पुरुषों और पराये पुरुषमें नन लगानेवाली स्त्रियोंकी जन्न-जन्नमें नपुंसकत्व, तिर्यक्त्व और दुर्नाग्य प्राप्त होता है ।”

इसलिये मनुष्योंको चाहिये, कि परस्त्री पर नन न ललचाये । यदि वह परस्त्रीका त्याग नहीं करता, तो उसे वेसाही दुःख होता है, जैसा करालगिडल नामक पुरोहितको हुआ । यह सुन, चक्रायुध राजाने

पूछा,—“हे प्रभु ! यह करालपिङ्गल कौन था ? और उसने किस प्रकार चीथे यंत्रका ध्वजन करके दुःख पाया ? हे स्वामिन् ! कृपाकर उसकी कथा कहो ।” इस पर भगवान् ने कहा,—“उसकी कथा यों है, सुनो—

कराल पिङ्गलकी कथा

इसी भरतक्षेत्रमें नलपुर नामका नगर है । उसमें नलपुत्र नामका एक प्रतापी राजा था । उसके घरमें राजाके भतिशय प्रिय और शान्तिक पीष्टिक आदि क्रियाएँ करनेमें निपुण करालपिङ्गल नामका पुरोहित रहता था । यह कृषान्, युवा और धनवान् था । उसी नगरमें पुष्पदेव नामका एक बड़ा भारी व्यापारी रहता था । पुरोहितकी उस व्यापारीके साथ बड़ी मित्रता थी । उस व्यापारीकी स्त्रीका नाम पद्मश्री था । यह मनोहर रूपवाली और पतिव्रत आदि उत्तम गुणोंसे युक्त थी । कहा भी है, कि—

पतिव्रताया नारीणां, भर्तुस्तुगति देवताः ।

रंगरा यथाश्रम्यत्रस्यापि, स्वयं हि भीष्मं शरी ॥ १ ॥

अर्थात्—“पतिव्रता विधोंके स्वामीपर सभी देवता प्रसन्न रहते हैं जैसे कि * गंगानदीने स्वयं ही एक बाण्डालको भीकल दिया था ।”

एक दिन पुरोहितने किसी कामसे राजाको बड़ा सन्तुष्ट किया । तब राजाने उसे धरदाम दिया, कि तुमहारी जो कुछ इच्छा हो, माँग लो । यह सुन, विषयासक्त चित्तवाले पुरोहितने कहा,—“हे स्वामिन् ! यदि आप मुझे मुँह माँगा दान देना चाहते हैं, तो मैं आपसे यही माँगता हूँ, कि इस नगरमें मैं चाहे जिस पर-स्त्रीके साथ सम्भोग करूँ, पर मेरा अपराध नहीं माना जाय ।” यह सुन, राजाने कहा,—“हे पुरोहित ! जो ओ तुमसे मिलना चाहे उसीसे तुम भी मिलना औरसे नहीं, यदि

* यह कथा किसीको मासूम नहीं है ।

कदाचित् तुम किसी ऐसी स्त्रीके साथ बलात्कार क्रीड़ा करोगे, जो तुम्हारी इच्छा नहीं करती हो तो, मैं तुम्हें वही दण्ड दूँगा, जो परदार-निषेधन करनेवालोंको दिया जाता है ।” पुरोहितने राजाकी यह आज्ञा स्वीकार कर ली । इसके बाद यह पुरोहित बेरोक-टोक स्वच्छन्द भावसे परायों स्त्रियोंके फिराकमें सारे नगरका चक्कर लगाने लगा । योंही घूमते-फिरते उस कामान्धने एक दिन पुष्पदेवकी स्त्री पद्मश्रीकी देखा ; उसे देखते ही वह प्रेमान्ध होकर उससे मिलनेका उपाय सोचने लगा । उसने सोचा,—“कैसे पुष्पदेवकी यह पत्नी मेरे घरमें आयेंगी ?” इसी सोच-विचारमें पड़े हुए उसने एक दिन पुष्पदेवकी स्त्रीकी दासी विधुलतासे कहा,—“हे भद्रे ! तू ऐसी कोई तरकीब लड़ा दे, जिससे तेरी स्वामिनी मेरे ऊपर आरिक्त हो जाये ।” यह सुन, उसने एक दिन अपनी स्वामिनीसे पुरोहितकी बात कही ; पर उस शीलवतीने उसकी बात नहीं मानी । दासीने यह बात जाकर पुरोहितसे कही, कि मेरी स्वामिनी तुम्हारी बात माननेवाली नहीं है । यह सुनकर उस दुरात्माने एक दिन स्वयंही अवसर पाकर पद्मश्रीसे सम्भोग करनेकी प्रार्थना की । सुनतेही वह बोली,—“ज़बरदार, ऐसी बात फिर कभी न कहना, नहीं तो कहीं तुम्हारे निशकी इसकी खबर पड़ जायेगी ।” यह सुन, पुरोहितने अनुमान किया, कि यह दिलसे तो मेरे ऊपर ज़बर ही आशिक है । इसके बाद उसने फिर मुस्करा कर कहा,—“हे भद्रे ! तुम ऐसा कोई उपाय करो, जिससे तुम्हारे पति परदेश चले जायें ।” उसकी यह बात सुन, उसने यह सारा हाल अपने स्वामिनीसे जाकर कह दिया । पुष्पदेवने बात सुनकर मनमें रखली—किसाँपर प्रकट नहीं की ; पर उसने मन-ही-मन सोचा, कि यह पुरोहित क्या करता है, इसे देखना चाहिये ।

इसके बाद पुरोहितने अपनी विद्याके प्रभावसे राजाके सिरमें बड़ी भयानक पोड़ा उत्पन्न कर दी । उस समय सिरके दर्दसे छटपटाते हुए राजाने पुरोहितकी बुलवाकर कहा,—“पुरोहितजी ! इस सिर दर्दसे तो मेरे प्राण आज्ञाओं निकले जा रहे हैं ; इसलिये तुम कुछ टोना-टटका,

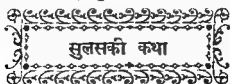
तन्त्र-मन्त्र करके मेरी यह पीड़ा शान्त कर दो ।” यह सुन, उसने मन्त्री उत्पन्न की हुई पीड़ा मन्त्रोपचार करके शान्त कर दी । उस समय रोग रहित हो जानेके कारण प्रसन्न होकर राजाने पुरोहितसे कहा,—“हे पूज्य ! तुम्हारी जो कुछ इच्छा हो, माँग लो ।” पुरोहितने कहा,—“हे राजन् ! आपकी दयासे मेरे किसी चीज़की कमी नहीं है, पर हे नरेश्वर ! मेरा एक मनोरथ आप अवश्य पूरा कर दें । वह यह है, कि किंजल्प नामक द्वीपमें किंजल्पक-जातिके पक्षी रहते हैं—उनका स्वर बड़ाही सुन्दर होता है, उनका रूप भी बड़ा ही मनोहर होता है । उन्हें देखनेसे मनुष्यको बड़ा सुख होता है । उन्हीं पक्षियोंको छानेके लिये आप यहकि पुष्पदेव नामक धणिकको आज्ञा दे दीजिये ।” यह सुन, राजाने तत्काल पुष्पदेवको बुलाकर, कहा,—“सेठजी ! तुम किंजल्प द्वीपमें जाकर वहाँसे किंजल्पक जातिके पक्षी ले आओ ।” राजाकी यह बात सुन, उसने सोचा,—“यह सारा प्रपञ्च उसी पुरोहितका रचा हुआ है ।” ऐसा विचार कर उसने राजासे कहा,—“जैसी आपकी आज्ञा ।” यह कह, वह अपने घर गया । इसके बाद उसने अपने घरमें तहज़ाना सा गड़ड़ा छुड़वाकर उस पर एक यन्त्र-युक्त पलंग रखवा दिया और अपने कुछ विश्वसनीय मनुष्योंको बुलाकर कहा,—“अगर किसी दिन कराल-पिङ्गल पुरोहित वहाँ आ पहुँचे, तो तुम लोग उसे इसी कलद्वार पलंग-पर बेठाना और इसी गड़देमें गिरा देना । इसके बाद गुप्त रीतिसे उसे निरे पास ले आना ।” इस प्रकारकी आज्ञा अपने सेवकोंको देकर पुष्पदेव, देशान्तर जानेके बहाने घरसे बाहर निकला और नगरके बाहर एक गुप्त स्थानमें जा छिपा । इसी समय पुष्पदेवको परदेश गया जानकर करालपिङ्गल बड़ी क्षुशीके साथ उसके घर आ पहुँचा । वहाँ पुष्पदेवके विश्वासी नौकर लुके-छिपे बैठे हुए थे । पुष्पदेवकी पत्नीने बड़ी ख़ातिरके साथ पुरोहितको उसी कलद्वार पलंगपर बेठाया । बैठतेही वह खन्दकमें गिर पड़ा, इसके बाद छिपे हुए सेवक बाहर आये और उसको मुश्कें बाँधकर उसे पुष्पदेवके पास ले आये । तब बुद्धिमान

पुष्पदेव, उस दुष्टको पींजरेमें बन्द कर, अपने साथ दूसरे देशको ले गया ।
 घटां छः महीने तक रह, अपना कार्य सिद्ध कर, वह फिर अपने नगरको
 आया । उस समय उस पुरोहितकी पूरी मिट्टी पलीद करनेके इरादेसे
 उसने अपनी बुद्धिसे यह उपाय सोच निकाला, कि पदले तो मोमको
 गलाकर उसका रस उसके सारे शरीरमें पोत दिया । इसके बाद उसके
 समूचे बदनपर खूबसूरत मालूम होने लायक पाँच रंगोंके चिड़ियोंके पर
 लाकर चिपका दिये । इस प्रकार उसने पुरोहितको पूरा पक्षी बना
 डाला और उसे काठके एक बड़ेसे पींजरेमें बन्द कर, उसमें ताला लगा,
 उस पींजरेको एक गाड़ीपर रखवाया और उसे लिये हुए राजसभामें आ
 पहुँचा । आतेही उसने राजाको प्रणाम कर, निवेदन किया,—“महा-
 राज ! मैं आपकी आज्ञासे जलमार्ग द्वारा उस द्वीपमें पहुँचा और वहाँसे
 बहुतसे किंजल्प-पक्षी लेकर चला था, पर सयके सय रास्तेमें मर गये—
 सिर्फ एक जीता बच गया है, उसे आपको दिखानेके लिये ले आया हूँ—
 कृपाकर देख लीजिये ।” राजाने कहा,—“हे सौदागर ! तुम उस पक्षी-
 को यहीं लाकर मुझे दिखलाओ ।” राजाकी यह आज्ञा पा, वह बहुत-
 से लोगोंसे उस गाड़ीको खिंचवा लाया, जिसपर यह पींजरा रखा था
 और पास भानेपर उन्हीं लोगोंसे वह पींजरा उतरवाकर, राजाके पास
 रखवा दिया । इसके बाद उसने उस पींजरेका ताला खोला । यह
 देख, राजाने कहा,—“यह पक्षी तो सुन्दर स्वर और मनोहर रूपवाला
 मालूम पड़ता है । खैर, देखना चाहिये, यह कैसा है ?” यह कह,
 राजाने उसे भली भाँति देखा, तो आदमीसा मालूम पड़ा । यह देख,
 उन्होंने पुष्पदेवसे पूछा,—“क्या यह पक्षी आदमीकी सी सूरत-शक्नुवाला
 होता है ?” उसने कहा,—“जी हाँ ।” राजाने कहा,—“सुना है, कि इसकी
 बोली बड़ी मीठी होती है, इसलिये इसे एकबार बुलवाओ तो सही ।”
 यह सुन, पुष्पदेवने हाथमें एक लोहेका सींकवा ले, उसकी तेज़ नोकसे
 उसे गोदते हुए कहा,—“रे पक्षी ! बोल !” उसने कहा,—“क्या बोलूँ ?”
 यह सुन राजाको बड़ा विस्मय हुआ उन्होंने उसका मुँह और दाँत देख,

उसे पहचान कर पुण्यदेवसे पूछा,—“हे ज्यवहारी ! यह पक्षी मरे पुरो-
हितके समान दिखाई देता है ।” उसने कहा,—“महाराज ! यही समझ
लीजिये, कि यही है ।” राजाने फिर पूछा,—“तुमने इसको ऐसी दुर्गति
क्यों कर रखी है ?” इसपर उसने राजाको उसका सारा कथा चिट्ठा कह
सुनाया । यह सुन, क्रोधित होकर राजाने अपने सिपाहियोंको बुरम
दिया, कि इस दुष्टकर्मा और परत्नीगामी मयम ब्राह्मणको मार डालो ।
राजाकी यह आज्ञा सुन, उन सबने पुरोहितको गधेपर चढ़ा, बड़ी फ़ज़ीहतके
साथ उसे सारे नगरमें घुमाया और घघ-स्थानमें ले जाकर मार डाला ।
यह मरनेपर घोर नरकमें गया । वहाँ उसे अग्निसे तपते हुए पुतलेका
आलिंगन करना पड़ा और इसी तरहके और भी अनेक प्रकारके दुःख
उठाने पड़े । यहाँसे निकलने पर भी वह अनन्तकाल तक इस संसारमें
भ्रमण करता रहेगा ।

कालपिंगल-कथा समाप्त ।

इसके बाद स्वामीने फिर कहा,—“पाँचवाँ परिग्रह प्रमाण नामक
भणुग्रन्थ सचित्त, भवित्त और मिथके भेदसे तीन तरहका है और इसके
तीन भेद भी कहे जाते हैं—जैसे, धन, धान्य, श्वेत, गृह, चाँदी, ताँबा-
पीतल आदि, सुवर्ण, द्विपद और चतुष्पद, इन नवों परिग्रहोंका प्रमाण
करना । जो पुरुष इन नवों परिग्रहोंका प्रमाण नहीं करता, वह सुलस
ध्यायककी भाँति दुःख पाता है । यह सुन, ब्रह्मायुध राजाने कहा,—“हे
भगवन् ! यह सुलस कौन था ? कृपाकर उसकी कथा कह सुनाइये ।”
तब प्रभुने कहा,—“हे राजन् ! सुनो—



इसी भरतक्षेत्रमें अमरपुर नामका नगर है । उसमें छत्रको ॥ एण्ड
लगाता था, केशको ही बन्धन प्राप्त होता था, खेतमें ही मार शब्दकी

प्रवृत्ति होती थी, हाथियोंको ही नद होता था, हारके लिये ही छिद्र दूँदा जाता था और कन्याके विवाहमें ही करपोड़न * होता था ; किन्तु प्रजाके विषयमें इनमेंसे एक भी नहीं था । उसी नगरमें न्याय-धर्ममें उत्तर अमरसेन नामके राजा और कृष्णदत्त नामक सेठ रहते थे । वे विशेषतया जैनधर्मके पालक और सनकित्तके धारण करनेवाले थे । सेठको लो जिनदेवी बड़ी अच्छी भाविनी थी । उसके गर्भसे सेठको सुलत नामका एक पुत्र उत्पन्न हुआ था । उस बड़े उजान हुआ, तब उसके माता-पिताने उसको शरीर सेठ जिनदासकी पुत्री सुनदाके साथ कर दो । एक दिन सुलतने पिताकी आज्ञासे सद्गुरुके पास जाकर धावकके प्याहल में द्रव (परिग्रह प्रमाणके सिवा) ग्रहण किये । उसके बादसे सुलत कट्यभ्रोंमें अधिक दिलचस्पी रखनेके कारण विषय-विनो-दमें बैसा मन नहीं लगाता था । सेठनाने इस प्रकार अपने पुत्रकी धर्ममें उत्तरता और शास्त्रोंमें आदर रखते देख कर सेठसे कहा,—“हे स्वामी ! आपका पुत्र तो साधुसा मालूम पड़ता है, इसलिये आप ऐसा उपाय कीजिये, जिससे उसके मनमें विषयको इच्छा उत्पन्न हो ।” यह सुन, सेठने कहा,—“हे प्यारी ! तुम ऐसा बात न कहो; क्योंकि अनादि कालसे प्राणी विषय-व्यागमें नारते आप प्रवृत्त हो जाते हैं ; पर धर्ममें प्रवृत्ति होना ही सुरिच्छल होता है ।”

ऐसा कह कर भी सेठनाने हठके नारे सेठने अपने पुत्रको चतु-राई सांख्यके लिये नर्त, विद्या और जुआरियोंके पास भेजा, इसके परिणाममें सुलत कुछ ही दिनोंमें सब कट्य * मूल गया । वह इन गये गुजरे ननुष्योंको सङ्कतिमें पड़ कर सदा ईर्ष्या-दिल्लो और तनाय करने, झुझार कर्ण्य सुनने, नाटक देखने और जुआ खेलनेमें ही मग्न रहने लगा । कर्मचर वड इन्हीं लोगोके साथ-साथ एक दिन कान-पताका नामक बैत्याके घर जा पहुँचा । उस रण्डोंने उसे धनवान्का चेष्टा जान कर, मन-ही-मन बड़ा अक्मना नाना और आदरसे उठ कर

जड़ी हो, उसे आसन दे, उसकी यड़ी आयमगत की। सुलस भी मित्रोंके कहनेसे वहीं बैठ रहा। रण्डोने गप-राप करनी शुरू की। उसकी चिक्की-चुपड़ी बातें सुन कर वह उस पर बेतरह लड़ू हो गया। यह बात ताड़ कर उसके सब मित्र वहाँसे उठ कर भागे-भागने घर चले गये। फिर तो उस घेइयाने धीरे-धीरे उसे पैसा हरथे पड़ाया—इस प्रकार उसका दिल खुश कर दिया,—कि वह उसके घरसे बाहर निकला ही नहीं। वह यहीं पड़ा हुआ चापका माल उड़ाने-बाने लगा। इसी प्रकार उसने सोलह वर्ष बिता दिये। इसी समय देव-योगसे उसके माँ-बाप मर गये। तब उसकी स्त्री भी उसे उसी तरह उड़ानेके लिये धन देने लगी। कुछ दिनोंमें भारा सज्जाना माली हो गया। तब उसकी स्त्रीने उस घेइयाकी दासीके द्वारा अपने गहने उसके पास निजया दिये। वह देव, उस रंड़ीकी नायकाने अपने मनमें विचार किया, कि इस मुषके घर धनका भव पूरा डोटा हो रहा है। अब हम किन्नीकी देहके गहने क्यों लें ? यही सोच कर बुढ़ियाने हजार द्यारेके साथ धे गहने उसकी स्त्रीको सौदा दिये। इसके बाद उसने अपनी पेटी कामगताकासे कहा,—“बेटी ! अब इस मरदुपके पास धन बिलकुल ही नहीं रहा। इसलिये इसे छोड़ देना ही ठीक है।” घेइयाने कहा,—“किमने हमें इनका धन दिया और किमने साथ में सोलह वर्ष तक भोग-विह्वल किया। उसे अब क्योंकर त्याग करने केमा ?” यह सुन, कुटुंबी बुढ़ियाने कहा,—“हमारे कुलको तो यही रक्षित है। यह भी है, कि—

“किमने दीनमताको देहके पुत्रयोपिपत्तु ।

रादिदये वसिष्ठो मेव, वयामामयुते विष्णु ॥ १ ॥”

अर्थात्—‘संग-हीन प्रापुर्बोधा वेनर, कुत-सिबोद्यो वेदर ॥ १ ॥’,
 अनिवोचो उदारता (सर्वाभयन) और देवताबोधा मेव—अमुन ॥ १ ॥
 भी विवेके-पुत्र है ।’

“हमारा ही यही काज है, कि, अन्धकारकी सेवा करें और मित्रोंको

उसी तरह त्याग दे, जैसे रत्न पाकर ईश्वर को जेठ दिया जाता है।" युवाके ऐसा कहने पर भी उस बेवफा ने तुलसकी नहीं छोड़ा।

एक दिन मौका पाकर बुद्धिमान तुलससे कहा,—“हे नन्द! तुन योड़ी देखे लिखे नाँवे जाओ, जितने यहाँ बैठ कर नाकका गढ़ना लागू किया जा सके।” यह सुनकर उसने सोचा,—“इन लेखक वराने मैंने कभी इस तरह का बात नहीं सुनी थी, आज ही यह बात क्यों सुन पड़ी?” यही सोचकर वह नाँवे उतरकर बैठ रहा। इसी समय बुद्धिमान दासिबाने उससे कहा —“अरे! तू निर्लज्ज की तरह यहाँ क्या बैठा हुआ है?” यह सुन, तुलस तत्काल उस घरसे बाहर निकलकर अपने घरकी ओर चला; पर इतने दिन घरसे बाहर रहनेके कारण वह घरका रास्ता भी भूल गया था। खोजताके कारण उसकी कत्तेमें भी कष्ट होता था। कितों-कितों तरह रास्ता याद करता हुआ वह धीरे-धीरे अपने घरके पास आ पहुँचा। उसका वह घर दूर-दूर गया था, उसकी शीतलें गिर पड़ी थीं, झूना कड़ गया था और बिबाड़ दूर गये थे। इस तरह खण्डहरके समान रहित, उमड़ और निर्जन घर देख कर उसने एक आदमीसे पूछा,—“हे नारी! वृषभक्ष सेठका यहाँ घर है या दूसरा?” उसने कहा,—“यही है।” तुलसने पूछा,—“तो इसकी ऐसी हालत क्यों हो रही है? सेठों इच्छते हैं न?” उसने कहा,—“सेठ और सेठाना—दोनों कभीके मर गये और निर्धनताके कारण घरको ऐसी हालत हो गया।” यह सुन, उसने शोकतुर होकर विचार किया,—“अरे! मैं बेवफा ने ऐसा वास्तव हो रहा, कि माँ-बापके मरनेका भी हाल नहीं जाता। धन भी चान्त हो गया और मेरी ही करनाँसे पिताका स्वर्गीय विनायके सहारा नष्टन लगान हो गया। अब मैं अपने अन्तोनय-सज्जनोंको कैसे मुँह दिखलजंगा!” ऐसा सोचते हुए वह बाहरसे ही घरको ओर आँख मर देख कर नगरके बाहर एक ऊँचे उद्यानमें चला गया। यहाँ उसने झरोसे एक ताड़-वृक्ष पर यह बिड़ो धरती छाँके नाम लिखा—

“स्वस्तिथी जिनेश्वरोंको नमस्कार कर, सुलस, अपनी प्रियाको इस पत्र द्वारा आनन्द देता हुआ उत्कण्ठापूर्वक यह बात बतला देना चाहता है, कि यह आज वेश्याके घरसे धाहर हो गया । रास्तेमें अपने मा-
 धापके मरनेका हाव्य सुन, मैं निर्धन लज्जाके मारे तुम्हारे पास नहीं आया, पर अगले देशान्तरकी जा, मनोवाञ्छित धन उपार्जन कर मैं थोड़े दिनों बाद फिर आऊँगा । तुम अपने मनमें इस बातका ज़रा भी खेद न करना ।” इस प्रकार पत्र लिख, उसने उन भक्षरोंपर कोव-
 लेकी मुकनी छिड़क, उस पत्रको मोड़ा हो या, कि वैद्ययोगसे उसी समय उसकी स्त्रीकी दासी वहाँ आ पहुँची । उसीके हाथमें यह पत्र देकर यह परदेश चला गया ।

क्रमशः चलता हुआ सुलस एक नगरके पास आ पहुँचा । यहाँ एक
 बने लगा,—“दूधपाळे
 पिलव और पल्लाश-
 के वृक्षके नीचे थोड़ा सा बहुत धन अवश्य ही होता है ।” ऐसा विचार
 कर, उसने देखा, तो वृक्षके अङ्कुर छोटे-छोटे नज़र आये, इसलिये उसने
 सोचा, कि यहाँ थोड़ा द्रव्य है । सापही उसके दूधका रंग सुनहरा
 था, इसलिये उसने यह भी जान लिया, कि इसके नीचे सोना है ।
 शास्त्रके आधार पर ऐसा विचार कर, यह “ॐ नमो धरणेन्द्राय, ॐ
 नमो धनदाय” आदि मन्त्रोंका उच्चारण कर उस जगहकी ज़मीन
 खोदने लगा । उसमेंसे हजार मुहरोंके बराबर धन निकला । उस
 धनकी अपने घरमें छिपाये हुए यह नगरमें आया और बाज़ारमें पहुँच
 कर एक बनियेकी दूकानपर बैठ गया । उस समय यह बनियाँ गाह-
 कोंके मारे बेतरह परेशान था, यह देख कर सुलसने भी उसकी थोड़ी
 बहुत मदद कर दी । इतनी ही देरमें सुलसकी व्यापार-सम्पत्तिको
 चतुराई देख, उस दूकानका मालिक बड़ा खुश हुआ और सोचने लगा,—
 “भाह ! यह सज्जन कैसे होशियार मालूम होते हैं ! आज इसकी मददसे
 मुझे बड़ा लाभ हुआ । यह कोई मामूली भाग्यी नहीं मान्यूस पड़ने ।”

पेसा बिचार उत्पन्न होतेही उसने पूछा,—“हे भद्र ! तुम कहाँसे आ रहे हो और कहाँ जाओगे ?” यह सुन, सुलसने कहा,—“मैं तो यहाँ बनारस-पुर नगरसे आया हूँ ।” सेठने फिर पूछा,—“तुम यहाँ किसके घर भतिथि होकर ठहरे हो ?” उसने बिनपके साथ उत्तर दिया,—“सेठ-जी ! इस समय तो मैं आपका ही भतिथि हूँ ।” यह सुन, सेठ उसे अपने घर ले गया । यहाँ उसे मन्मथ, उदरधन, ध्यान, मोहन भादि कराकर उसने फिर उससे यहाँ आनेका कारण पूछा । तब सुलसने कहा,—“हे तू ! मैं इस उपाजन करनेके लिये घरसे बाहर निकला हूँ । मुझे कोई दुकान भाड़ेपर शंखिये, बिसतर पैठकर मैं व्यापार करूँ ।” इसपर सेठने उसे एक दुकान दितया दी । उसीपर पैठकर सुलस व्यापार करने और धन कमाने लगा । ऊ नहानेने उसने पासकी सुइयोंको पुगुना कर डाला । तब वह उस धनसे किराना मात खरीद कर, बहुत बड़ा झण्डिया साथ ले, समुद्रके किनारे बसे हुए तिलकपुर नामक नगर में व्यापार करनेके लिये आया । यहाँ भी उसे मनचलाता लाभ हुआ । इसके बाद वह अधिक लाभके लिये अहाड़ने किराना मात भरकर लय भी उसने सवार हो गया और रज्जयानने चला । यहाँ पहुँचकर वह नेट लिये हुए उस जगहके राजाके पास मिलने गया । राजा ने भी उसका आदर-सम्मान कर उसका आधा कर माफ़ कर दिया । यहाँ मनचला लाभ उठानेके इरादेसे किराना बेच तरह-तरहके रज्ज लिये और बहुतसा धन एकत्रा किये हुए वह अपने देशकी ओर आनेके लिये अहाड़न सवार हो गया । राहमें अचानक दुर्भाग्यके मारे उसका अहाड़ समुद्रमें टूट गया—सारा धन बह हो गया । बेचत भरसा जब लिये एक लकड़ा पकड़े हुए वह बीच दियोंने समुद्रके किनारे आ गया । यहाँ कौनका प्रताप देख, उसने नवोदर पल धा और एक स्थानपर अन्तर देख, उसने वहाँसे पास हुआ, सम्य होकर उसने सोचा,—“ओह ! मैंने किसका यही समझा मर्ज की धो ! पर आज (५) एव-मेरीके मित्र मेरे लय हुए की व रहा । राहमेंके घर

भी न रहे । यह था तो मेरे पापोंका फल है मयघा देवकी यही गति है । कहा भी है,—

“देवमुल्लंघ्य यत्कार्यं, कियते फलवन् न तत् ।

सरोज्ज्मभातकेनासं, गमरंभेय निर्गतम् ॥ १ ॥”

अर्थात्—“देवका उल्लंघन करके जो काम किया जाता है, उसका कोई फल नहीं होता । जैसे कि, चातक सरोवरका जल चोंचसे उठा-ता है सही; पर यह गलेके छिद्रसे बाहर निकल जाता है—पेटमें नहीं जाने पाता ।’

“पर जो कुछ हो, मुझे उद्यमका त्याग कदापि नहीं करना चाहिये—विपत्तिमें भी पुण्यार्थ करनाही उचित है । पण्डितोंने कहा है,—

“नीचैर्नारभ्यते कार्यं, कर्तुं विम्र भयात् सप्त ।

प्रारभ्य स्वयमेव मध्ये, किञ्चिद्विम्र उपस्थिते ॥ १ ॥

उत्तमास्त्वन्तरायेणु, भयस्त्वपि महानयः ।

प्रगल्भं कार्यमारब्धं, न त्यजन्ति कथञ्चन ॥ २ ॥”

अर्थात्—“नीच मनुष्य इसी ढरसे कोई काम नहीं करते, कि कहीं उसमें कोई विम्र न पड़ जाये, मध्यम श्रेणीके मनुष्य कार्यारम्भ तो कर देते हैं; पर पीछे कोई विम्र उपस्थित होते ही उससे हाथ सींच लेते हैं; परन्तु उत्तम पुरुष हजारों विम्र पड़नेपर भी प्रारम्भ किये हुए प्रशंसनीय कार्यको नहीं छोड़ते ।”

इसी प्रकार विचार करता हुआ सुलस भागे बढ़ा । हस्तेमें एक जगह उसे भुएङ्के-भुएङ् गिद्ध दिखाई दिये । उन्हें ही लक्ष्यमें रखकर वह पास पहुँचा, तो उसे एक लाश नज़र आयी । उसके पक्षके छोरमें क-रोड़ोंकी फ़ीमतीके पाँच रत्न देखकर उसने अपने मनमें सोचा,—“मैंने भवसादानसे विरति कर ली है; पर यह लाचारिणी घन छे लेना मेरे लिये बेजा नहीं है । इन रत्नोंकी जो फ़ीमत आवेगी, उससे मैं इनके स्वामीके पुण्यार्थ चैत्य (मन्दिर) बनवा दूँगा ।” यही सोच, उस

रत्नोंको लेकर वह वहाँसे चल पड़ा । क्रमशः वह समुद्रके किनारे वसे हुए बेलकूल नामक नगरमें पहुँचा । उस नगरमें लक्ष्मीका वास देख, वह उसके अन्दर पैठा और धाँतार नामक एक सेटके घर आया । सेटने भी उसे खूब ठाट-बाटके साथ खिलाया-पिलाया और उसको बड़ी आचमगत की । इसके बाद उसने दो करोड़ पर दो रत्न बेंचे और इसी धनसे किरानेका माल ख़रीद कर बड़ीसी गाड़ीमें लदवाया और बहुत बड़ा काफ़िला साथ लिये हुए अपने देशकी ओर चला । रास्तेमें एक बड़ा भारी जङ्गल मिला । दोपहरमें वहाँ एक स्थानपर सारे काफ़िलेका डेरा पड़ा । काफ़िलेके लोग रसोई-पानाँकी धुनमें लग गये । इतनेमें भौल-जातिके चोर एकाएक कहींसे आकर काफ़िलेमें लूट-पाट मचाने लगे । यह देख, अपने सब साथियों समेत सुलस उनसे युद्ध करनेको तैयार हो गया । भौलोंने सुलसके सेवकोंको हराकर मगा दिया और सुलसको जीता ही पकड़ कर द्रव्यके लोभसे एक बनियेके हाथ बँच दिया । उस बनियेने उसे मुँहमगी दामोंपर एक पैले मनुष्यके हाथ बँच दिया, जो मनुष्योंके रुधिरकी तलाशमें रहता था । यह आदमी 'पारसकूल' से आया था । वह मनुष्योंको ख़रीद कर अपने देशमें ले जाता और उनके शरीरका रुधिर निकाल कर कुरइमें डाल देता था । उस रुधिरमें ओ जन्तु उत्पन्न होते थे, उन्हींसे कृमिराग (चिरमिची रङ्ग) बनता था, जिससे कपड़े रंगे जाते हैं । फिर तो वे कपड़े जला देने पर उनकी राख भी लाल रङ्गकी होती थी । येचारा सुलस वहाँ बड़ा दुःख उठाही रहा था, कि एक दिन उसके शरीरसे रुधिर निकलता देख, एक भारूड पक्षी उसे उठाकर आसमानमें उड़ गया और उसे रोहिताचल पर्वतकी एक झिलापर ला पटका । ज्योंही वह पक्षी उसे धानेको तैयार हुआ, त्योंही एक दूसरे भारूड-पक्षीका दृष्टि उस पर पड़ी, फिर तो दोनों पक्षी आपसमें युद्ध करने लगे । वस, सुलस उनके चंगुलसे बच कर पासकी एक गुफामें चला गया । इसके बाद जब वे दोनों पक्षी दूसरी जगह चले गये, तब सुलस गुफासे बाहर

निकला और करनेके पानोसे अपनी देह धो, संरोहिणी-औपधिके रस-से अपने घायोंको आराम कर, वह पर्वतसे नीचे उतर आया । वहाँ उसने धूलसे भरे और हाथमें कुन्दा लिये हुए कितनेही आदमियों और पञ्चकुलको देखकर एक आदमीसे पूछा,—“माई यह कौनसा पर्वत है ? इस देशका नाम क्या है ? यहाँका राजा कौन है ? ये आदमी कुन्दासे क्या खोद रहे हैं ? यह पञ्चकुल कैसे है ? यह सब बातें छुगकर मुझे बतलाओ ।” यह सुन, उस आदमीने कहा,—“माई ! जो कोई किसी देशमें जाता है, वह यह सब बातें ज़रूर पहलेही मालूम कर लेता है । तुम तो इस देशका नाम भी नहीं जानते ! तो क्या तुम आसमानसे टपक पड़े हो या पातालसे निकल आये हो ? अगर मुझे यहाँका कुछ भी हाल नहीं मालूम था, तो फिर तुम यहाँ किस लिये आये ?” सुलसने कहा,—“माई ! तुमने यह जो कहा, कि क्या तुम आसमानसे टपक पड़े हो, वह बिलकुल ठीक है । मैं सच-मुच आसमानसेही टपक पड़ा हूँ ।” उसने पूछा,—“तो कैसे ?” सुलसने उत्तर दिया,—“एक विद्याधर मेरा मित्र है । उसने मुझसे एक दिन कहा, कि मेरे साथ चलो, मैं तुम्हें सुमेरु-पर्वत दिखा लाऊँ । यह सुन, मैं कौतूहलके मारे उसकी सहायतासे आकाश-मार्गसे चल पड़ा । इतनेमें उसका कोई शत्रु विद्याधर रास्तेमें मिल गया । उस समय मेरा मित्र अपने शत्रुसे लड़ने लगा और मुझे छोड़ दिया, जिससे मैं नीचे गिर पड़ा ।” इस प्रकार सुलसने उसे अपनी भङ्गसे ऐसा जबाब दे दिया, जो सचही मालूम पड़ता था । उसने फिर कहा,—“हे माई ! मैं इसी तरह आसमानसे टपक पड़ा हूँ, इसलिये मैंने जो-जो बातें तुमसे पूछी हैं, उनका सिक-सिलेवार उत्तर मुझे दे दो ।” यह सुन, उस आदमीने कहा,—“यह रोहणा नामका देश है, इस पर्वतका नाम भी रोहणाचल है । यहाँके राजाका नाम यज्ञसागर है । यह पञ्चकुल राजाके ही है । हाथमें कुन्दा लिये हुए ये लोग ज़मीन खोदकर इसमेंसे रत्न निकाल रहे हैं और इसके लिये राजाको कर देते हैं ।” यह सुन, सुलसने सोचा,—“इस

नगरमें कहीं डेरा जमाकर रहना और इस उपायसे धन कमाना चाहिये।”
यही सोच कर वह उन्हीं आदमियोंके साथ रत्नपुत्र नगरमें चला गया।
वहाँ वह एक बूढ़े बनियेके घर जा टिका। उसने उसे भोजन कराया।
तब भोजन करके सुलसने उससे सब हाल कह सुनाया। इसके बाद
रत्नोपाार्जन करनेमें उत्साहित होकर वह कुदाल आदि सामग्रियाँ लेकर
रत्न इकट्ठा करने लगा। इसी तरह रत्न-संग्रह करते हुए एक दिन
उसे एक बड़ा ही मूल्यवान् रत्न हाथ लगा। किसी-किसी तरह उस
रत्नको अपने शरीरके अन्दर छिपा कर वह धानसे बाहर निकला और
उस एकके सिवा और सब रत्नोंमेंसे राजाके करका भाग पञ्चकुलोंको
देकर पूर्व-दिशाके बलङ्गार-स्वरूप धीमत्पत्तन नामक नगरमें जा, वह
रत्न बेच, उसका किराना माल खरोद, फिर अपने नगरकी ओर चला।
रास्तेमें एक बड़ी भारी जङ्गल मिला। उसमें दावाग्नि घघक रही थी,
इसलिये उसका सारा किराना जलकर खाक हो गया। फिर वह अ-
केला भटकता हुआ एक गाँवमें आया। गाँवके बाहर एक परिव्राजक-
को देख, उन्हे प्रणाम कर वह उनके पास बैठ रहा। परिव्राजकने उसे
मधुर वचनोंसे सन्तुष्ट करते हुए पूछा,—“हे वत्स ! तुम कहाँसे आ
रहे हो ? कहाँ जाओगे ? और किस कारण तुम दुनियाँमें अकेले भट-
कते फिरते हो ?” यह सुन, सुलसने कहा,—“मैं अमरपुरका रहने
वाला बनियाँ हूँ और धनके लिये शहर-उधरकी खाक छानता फिरता
हूँ।” यह सुन, परिव्राजकने कहा,—“बेटा ! तुम कुछ दिन मेरे पास
रहो, मैं तुम्हें धनेश्वर बना दूँगा।” यह सुन, सुलसने कहा,—“आपको
यह मेरे ऊपर बड़ी भारी दया है !” और उन्हींके पास रहने लगा। परि-
व्राजकने उसे किसीके घर भोजन करनेके लिये भेजा। वह वहाँसे वापस
चला आया और परिव्राजकसे पूछने लगा,—“पूज्यवर ! आप किस
तरह मुझे धनाढ्य बनायेंगे ?” परिव्राजकने कहा,—“बेटा सुनो।
मेरे पास रत्न-कूपका कल्प मौजूद है। उसके रत्नको एक यूँ टपका
देनसे बहुतों को हा सोना हो जाता है। वही चीज मैं तुम्हें दूँगा।

पहले तुम जाकर एक बड़ीसी मैस को पूँछ लाकर मुझे दो ।” उनकी यह बात सुन, सुलसने एक मरी हुई मैसकी पूँछ लाकर परित्रात्रकको दी । योगीने उस पूँछको छः महीने तक तेलमें डुबो रखा । इसके बाद योगीने एक हाथमें, कल्प-पुस्तक और दूसरे हाथमें वही पूँछ रख ली और सुलसके माथे पर दो रस्से, दो तुम्बियाँ, एक छटोली, बलिदान-की टोकरी और मग्निका पत्र रस दिया और दोनों वहाँसे चलकर पर्वतके मध्यमें गुफाके द्वारपर आ पहुँचे । वहाँ जो यह प्रतिमा रखी थी, उसकी पूजा कर, वे दोनों गुफाके भन्दर घुसे । वहाँ जो कोई मूल, बैताल राक्षस बिप्र करनेके लिये उठ खड़ा होता था, उसे सुलस नि-निहट मनसे बलिदान देता जाता था । यह देख, योगी बड़ा प्रसन्न हुआ । आगे जाने पर एक विवर मिला । उसमें क्षूप भँघेरा था । उस भन्धकार-को दूर करनेके लिये, उन्होंने वही मैसकी पूँछ जलायी और उसीके प्रकाशमें वे दोनों उस योजन-प्रमाण विथरको पारकर गये । इतनेमें चार हाथ लम्बा और चार हाथ चौड़ा चौरस रसरूप देखकर दोनोंको बड़ा हर्ष हुआ । इसके बाद योगीने उस छटोलीको तैयार कर उसके दोनों ओर दो रस्से बाँध दिये और सुलससे कहा,—“सुलस ! तुम इन दोनों तुम्बियोंको हाथमें लिये हुए इस छटोली पर बैठ कर कुर्ममें उतर पड़ो ।” यही सुन, सुलस दोनों तुम्बियाँ लिये हुए छटोली पर बैठ गया । योगीने धीरे-धीरे रस्सेको नीचे सटकाना शुरू किया । कमए वह रस्से के पास पहुँच गया । इसके बाद वह नवकार-मन्त्रका उच्चारण कर रस लेने लगा, इसी समय उसके भीतरसे शब्द निकला,—“यह रस भावमीको फोड़ी बना देता है, इसलिये हे साधर्मिक ! तुम हाथसे इन रसको मत छुओ । यदि यह रस देहसे छू जायेगा, तो तुम्हारी जान चली जायेगी । तुम जैन-धर्मके आराधक हो, इसलिये मैं तुम्हारी सहायता करनेको तैयार हूँ । इन दोनों तुम्बियोंको तुम मुझे दे दो—मैं इनमें रस भर दूँगा ।” यह शब्द सुन, सुलसने कहा,—“तुम मेरे धर्म-बन्धु हो, इसलिये मैं तुम्हें प्रणाम करता हूँ । कहा है, कि—

“कन्ने ऐसे जाना, कन्ने ऐसे बरिदा देहा ।

जे डिमनामदारना, ने न मे कन्दरा भविषा ॥ १ ॥”

अर्थात्—“जो अन्य देशमें उत्पन्न हुए और अन्य देशमें ही
जिनके मरीने गुंदि जाया है, वे भी जिन मातनानुरक्त होनेके कारण
नरे पशु हैं ।”

“अब तुम मुझे अपना वृत्तान्त कह सुनाओ । मुझे बड़ा आश्चर्य हो
रहा है । तुम कौन हो और इस कुर्यमें कैसे आ पहुँचे हो, यह सब
मुझे पतला दो ।” इसके उत्तरमें उत्तने कहा,—“हे पशु ! मेरा हाल
सुनो । मैं बिराटानगरके रहनेवाला जिनरोवर नामका वणिक् हूँ ।
व्यापारके निमित्त जहाज़ पर चढ़कर मैं समुद्रमें जा रहा था, कि एका-
एक रास्तेमें मेरा जहाज़ नष्ट हो गया । पड़े कष्टसे एक तस्ता पकड़
कर मैं अंतिमो समुद्रके बाहर निकला । इसके बाद उड़्डने धूमते-
फिरते मुझे एक पश्चिात्रक मिल गया, जितने मुझे रस्सा लौन
दिखा, इस कुर्यमें लाकर डकेल दिया । ओहो मैं तुम्हियाँ नर कर
कुर्यके मुँह पर पहुँचा था, लौंही उसने मुझसे तुम्हियाँ लेकर मुझे
कुर्यमें डाल दिया । मैं अनुमान करता हूँ, कि तुम्हीं भी वहाँ योगी
कुर्यमें उतार लाया है । वह बड़ा ही दुष्टात्मा है । उस पर हरगिज़
विश्वास न करना । “हे सुधाचक्र ! अब तुम भी मुझे अपना नाम
आदि पतला दो ।” इसके उत्तरमें सुलतने उससे अपना वृत्तान्त कह
सुनाया । इसके बाद उसके साधर्मिकने वे दोनों तुम्हियाँ रस्से भर
कर उठे दे दीं । तदनन्तर छोटोटीके नाँवे दोनों तुम्हियोंको बांधकर
सुलतने रस्ता दिखाया । तब परिव्रात्रकने उसे कुर्यके मुँहके पास-
तक धाँच लाकर कहा,—“हे भद्र ! पहले तुम मुझे वे दोनों तुम्हियाँ
दे दो, इसके बाद मैं तुम्हीं बाहर निकालूँगा ।” सुलतने कहा,—
“दोनों तुम्हियाँ सूर्यमन्द्रदूतोंके साथ छोटोटीके पादमें बंधी हैं ।” यह
सुन, योगीने उससे फिर तुम्हियाँ नाँगीः पर उसने नहीं दीं । तब
उत्तने तुम्हियों सहित सुलतको कुर्यमें डाल दिया और आप कहीं और

चला गया। शुभकर्मोंके योगसे सुलस कुर्य की मेजलाके ऊपर बा गिरा—रसमें नहीं डूबने पाया। तब वह बड़े ऊँचे स्वरसे नवकार-मन्त्रका उच्चारण करने लगा। कहा मो है, कि—“यह श्रेष्ठ नवकार-मन्त्र मङ्गलका स्थान है, यह भयका नाश करता है, सकल संघको सुख उत्पन्न करता है और चिन्ता करनेसे ही सुख देनेवाला है।”

इसके बाद भक्त्यन्त दुःखित हो कर वह आप-ही-आप अपनेको इस प्रकार बोध देने लगा,—“हे जीव ! यदि तुमने परिग्रहसे विरति कर ली होती, तो हरगिज्ञ ऐसे कष्टमें नहीं पड़ते। हे प्राणी ! अब भी तो तुम अपनी आत्माको साक्षी दे कर संयम ग्रहण कर लो और मन-शन-प्रत करना आरम्भ करो। ऐसा करनेसे तुम्हारा शोभ ही इस संसारसे निस्तार हो जायेगा।” ऐसा कह कर वह ज्योंही चारित्र लेनेको तैयार हुआ, त्योंही कुर्यके मध्यमें रहनेवाला जिनरोखर धावक धोला,—“हे भद्र ! चारित्र ग्रहण करनेको ऐसे आतुर मत होमो। इस कुर्यसे निकलनेका एक उपाय है। उसे सुन लो। एक बड़ा भारी साँझ किसी रास्तेसे कभी-कभी यहाँ रस पीनेके लिये आता है। ज्यों-ही वह रस पीकर पीछे लौटने लगे, त्योंही तुम क्षूष मङ्गयूतीसे उसकी पूँछ पकड़ कर बाहर निकल आना। मैं अब मरा चाहता हूँ, इस लिये मुझे आराधना कराओ।” यह सुन, उसका अन्तिम समय आया जान, जिनशासनके तत्त्वको जाननेवाले सुलसने उसे उत्तम आराधना करायी ; निर्यामणा करायी ; चार शरण कह सुनाये, अरि-हन्त, आचार्य, उपाध्याय और सर्व साधु जिनमें मुख्य है, ऐसे पाँच पदोंकी आख्या करके उसे उनका स्मरण कराया और बीरासी लाख जोयपोनिके जाँघोंका मिथ्यादुष्कृत दिलवाये। इस प्रकार आगममें पतलापी हुई आराधना सुलसने उसे विस्तारके साथ करा दी, जिसे जिनरोखर धावकने अपने चित्तमें अङ्गीकार किया। इसके बाद अनशन ग्रहण कर, मन-ही-मन नवकार मन्त्रका स्मरण करते हुए शुभ-ध्यान-पूर्वक मृत्युको प्राप्त हो कर वह श्रेष्ठ धावक आठवें देव-

देखा । वस, यह आलस्य छोड़, आश्चर्य सहित उस शाखापर पहुँच गया । यहाँ उसने एक पक्षीके घोंसलेमें एक उत्तम मणि और सर्प-को ठठरी देखी । यह देख, उसने सोचा,—“मवश्य ही यह विष उतारनेवाली सर्प-मणि है । इसीका यह प्रकाश है ।” ऐसा विचार कर, उस रत्नको हाथमें लिये हुए सुलस उस वृक्षसे नीचे उतरा । उस मणिका प्रकाश देख, बाघ और सिंह भी भाग गये । क्रमशः सबेरा हो गया । इसके बाद उस मणिको पत्थरके छोरमें बाँधे हुए वह सात दिन बाद उस जङ्गलके पार हुआ । वहाँ एक पर्वतपर आगका उँजैला देखाकर सुलस उसीकी सीधपर चलकर वहाँ पहुँचा और कितने ही आदमियोंको धातुवाद करते देखा । द्रव्यकी इच्छासे वह कितने ही दिन तक उनके पास रहा और उनकी सेवा करने लगा । यह उन्हीं लोगोंके साथ खाता-पीता भी था । सुपर्ण सिद्धिके लिये उसने बहुत दिनोंतक धातुवाद किया, परन्तु अब कुछ भी अर्थसिद्धि नहीं हुई, तब उसने अपने मनमें सोचा,—

‘धातु धमेविष जा धव आसा, सिर मुंवेविष जा स्वभासा ।

धेम धरेविष जा धर आसा, निषिक्की आसा ॥ निरासा ॥१॥’

अर्थात्—“धातु फूँके बिना धनकी आशा, सिर मुँहाये बिना रूपकी आशा, और वेश बनाये बिना घरकी आशा, ये तीनों आशाये मुझे तो निराशा रूपमें हुई हैं ।”

ऐसा विचार कर, यह एक दिन धातुके विषयमें मग्नचित्त और निरस्तसाह होकर रातको सोया हुआ था,—कि इसी समय उन धातु-वादी पुरुषोंने उस नीद्रिमें बेहोश देख, उसके पत्थरके छोरसे वह मणि निकाल ली और उसके स्थानमें एक पत्थरका टुकड़ा बाँध दिया । इसके बाद प्रातःकाल उठकर सुलस वहाँसे चल पड़ा और क्रमशः मट्टकी शीर्षक नामक नगरमें आ पहुँचा । वहाँ उस रत्नको बेज्जंके लिये उसने अपने गाँठ बोझी, तो रत्नकी जगह पर पत्थर देख कर यह सोचने लगा,—“ओह ! उन धातुवादियोंने तो मुझे सूट लिया । अब

उन्हें मैं क्या दोष दूँ ? सब मेरे कर्मोंका दोष है ।” ऐसा विचार कर वह मन-हो-मन झोंकने लगा ।

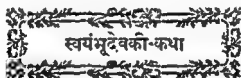
एक बार उसने अपने मनमें सोचा,—“मेरा जीना व्यर्थ है, अब मेरा मर जाना ही अच्छा है ।” ऐसा विचार कर, अधियाले पाँचकी चौदसके दिन आधी रातके समय, सुलस स्मशान-भूमिमें जाकर उच्च-स्वरसे कहने लगा,— ‘हे भूत-वैताल और राक्षसों ! तुम सब सावधान होकर मेरो एक बात सुनो । मैं महामांस बँचता हूँ, जिसे इच्छा हो, आकर ले जाये ।” उसको यह बात सुन, भूत, प्रेत और वैताल आदि किलकिल-शब्द करते, तत्काल हाथमें शस्त्र लिये, हर्षसे नाचते-कूदते हुए वहाँ महाभुषणड़ोंकी भाँति आ पहुँचे और बोले,—“हे पुरुष ! यदि तुम वैराग्य प्राप्त कर, महामांस दे रहे हो, तो यहीं भूमिपर पड़ जाओ । हम तुम्हारा मांस ले लेंगे ।” यह सुन, सुलस निडर हो कर ज़मीनपर पड़ गया । इसके बाद ज्योंही वे भूत, वैताल आदि उसका मांस ग्रहण करनेके लिये तैयार हुए, त्योंही जिनशेखर देव, सुलसकी वह अवस्था देख, जल्दी-जल्दी वहाँ आ पहुँचा । उसे देखते ही सब भूत-प्रेत भाग गये । तब उस देवने कहा,— “हे सुलस धायक ! मैं तुम्हें प्रणाम करता हूँ । जिनशासनमें निपुण होकर भी तुमने ऐसा विरुद्ध कर्म क्यों करना चाहा था ? क्या तुम मुझे पहचानते हो ? मैं तुम्हारा मित्र जिनशेखर हूँ । तुमने मुझे कुपमें निर्यामणा करायी थी । तुम्हारी उसी आराधनाके प्रभावसे मैं सहस्रार नामक आठवें देवलोकमें जाकर इन्द्रकी समानताका देवता हो गया हूँ । इसलिये तुम मेरे गुरु हो ।” यह सुन, सुलस भी जिनशेखरको देव हुआ जान, उसे देखकर तत्काल उठ खड़ा हुआ और बोला,— “हे धर्मबन्धु ! मैं भी तुम्हें प्रणाम करता हूँ ।” यह कह, उसने कुशल-मङ्गल पूछा । इसके बाद देवने कहा,— “हे भद्र ! मैं तुम्हारा कौनसा मनचीता काम कर दूँ ? वह बतलाओ । तब सुलसने कहा,—“मुझे तुम्हारे दर्शन हुए, इससे मैं बड़ा सुखी हुआ; तो भी मैं तुमसे यह पूछना चाहता हूँ, कि अभी मेरे गाढ़े अन्तराय

भङ्गीकार करनेके बाद उन्होंने बड़ी उग्र तपस्या की । कमसे सुलस सब कमोंका क्षय कर, उसी भयमें केवल-ज्ञानको प्राप्त हो, मोक्षको प्राप्त हो गया ।”

इस प्रकार पाँचवें अणुव्रतके विषयमें भगवान्-श्रीशान्तिनाथने राम चन्द्रायुधकी सुलसकी कथा कह सुनायी ।

सुलस-कथा समाप्त ।

फिर स्वामीने कहा,— “हे राजन् ! मैंने तुम्हें पाँचवें अणुव्रतका हाल सुना दिया । अब मैं तुम्हें दिग्परिमाणव्रत, भोगोभोग-परिमाण-व्रत और अनर्घ-दण्ड त्याग-व्रत इन तीनों गुणव्रतोंका वर्णन सुनाता हूँ उसे सुनो । पूर्वादि चारों दिशाओं और ऊर्ध्व तथा अधो दिशामें गमन करनेका परिणाम करना ही दिग्व्रत नामका पहला गुणव्रत कहलाता है । दिशाओंका प्रमाण नहीं करनेसे जीव अनेक प्रकारके दुःख पाता है । स्वयंभूदेव नामक वणिक्ने ऐसा नहीं किया, इसीलिये श्लेष्म-देशमें जाकर उसने बड़ा दुःख उठाया था ।” यह सुन, राजाने पूछा,—“हे स्वामी ! उसका हाल कह सुनाइये ।” तब प्रभुने कहा,—



इसी भरतक्षेत्रमें गंगातट नामका नगर है । यहाँ सुदन्त नामके एक राजा रहते थे । राजा अपने नगरमेंही रहने और सर्वत्र दून भेजकर अपने अधीन देशभरका सम्पत्ति मँगवाया करते थे । उसी नगरमें स्वयंभूदेव नामक एक किसान रहता था । वह खेतोंका काम करता था, पर उसके जेबमें सन्तोष नहीं था । एक दिन पिछली रातको उठकर उसने सोचा,—“यहाँ रहनेसे मुझे जैसा चाहिये, ऐसा लाभ नहीं होता, इसलिये कहीं और जाकर खूब धन पैदा कर अपने समस्त प्रभारों सज्जद करके, नौ ठीक हो ।” ऐसा विचार कर, वह कनक-

व्यापारके लिये सामान लेकर उत्तराण्यकी ओर गया । वस्त्रों वह लक्ष्मी-शोचक नामक नगरमें आ पहुँचा । उन्म नगरमें प्रवेश कर, उम्मेने गदना व्यापार फैलाया । उसमें उसे भाग्यानुसार लाभ भी हुआ । यहाँसे यह धनकी भाशासे और-और नगरोंमें भी गया, पर वहाँ भाग्यसे अधिक नहीं मिला । तो भी उसके मनमें यह धान नहीं आया, कि—

“भाग्याधिकं वैरं भगवत्सिंहोर्ध्व, इदानीं विषं चिन्तयेकन्मयः ।

भिरुक्तं पण्डितं ज्ञात्वापार-जन्मपि पत्रप्रियं वसाम् ॥१३॥”

अर्थात्—“राजा अपने सदाके सेवकोंके भी उनके भाग्यसे अधिक धन नहीं दे सकता; पराश्रित्युपे निरन्तर वतभारा पड़ती रहने पर भी दासके वही तीन पात होते हैं ।”

इस बातको सोचे बिना यह भाग्यसे अधिक फलकी इच्छासे किसी दूसरे नगरमें गया । यहाँ श्रितने ही पनियोंको देखकर उसने पूछा,— “हे व्यापारियों ! तुम लोग किस देशसे आये हो ?” उन्होंने कहा,— “हम लोग व्यापार करनेके लिये चिलात-देशमें गये हुए थे और यहाँसे सूय मालमता पेश कर यहाँ आये हुए हैं ।” यह सुन, स्वयंभूदेवने बहुतसा किराना माल ले, धाने-पीनेकी सामग्री तथा बहुतसे आद-मियोंके साथ, उस देशकी ओर प्रस्थान किया । क्रमसे चलते हुए महा-तप्त धालुकामय मार्गको पारकर, अति शीतल हिममार्गको भी लाँघकर, वह अति विषम पर्वतीय मार्गमें आ पहुँचा । लोभके फन्देमें फँसा हुआ आदमी क्या-क्या नहीं करता ? इसके बाद वह चिलात-देशके पास पहुँच गया इतनेमें यहाँके घुँच्छ-राजाका जो शत्रु-राजा था, उसके सैनिकोंसे उसकी मुन्हाकात हुई । उन शत्रु-राजाने जब सुना, कि यह आदमी चिलात-देशमें जा रहा है, तब उसका सारा सामान लूट लिया और उसे अपने नगरकी ओर लौट आनेका मजबूर किया । परन्तु स्वयंभूदेव किसी-किसी तरह उन लोगोंकी नज़र बचाकर गुप्त रीतिसे चिलात-देशमें पहुँच गया । यहाँ भीलोंके लड़कोंने उसे पकड़कर उसके सारे शरीरकी रधिरसे पीत दिया । इसके बाद उन दुष्टोंने उसे एक जंगलमें ले

जाकर छाड़ दिया । वही उसे मुरवा समझकर उसपर बहुतसे पत्ते
भाकर बेउने लगे और थोथकी ठाकरसे उसे पीड़ा पहुँचाने लगे । यह
देख, भोज-वालकोंने बाण मारकर मित्र भादि पक्षियोंकी मार गिराया ।
इस प्रकार सन्ध्यापर्यन्त उसकी फ़ज़ीहत कर, वे उसे घर ले भाये
और उसे बन्धनमें मुक्तकर, बिला-पिलाकर बड़े पत्तसे उसे घाँसे
छिया रखा । दूसरे दिन फिर उन सबने उसकी धेसी ही विश्रम्भा
की । इस प्रकार उसने बहुत दिन तक दुःख भोगा । एक दिन भोजोंके
छड़कोंने उसकी धेसी ही दुर्गंतिकर, उसे जंगलमें छोड़ दिया । इनमें
वही एक बाघिन भायी । उसके करके मादे भोजके वे छड़के भाग गये
और वह बाघिन स्वयम्भूरेयको उठाकर अपने बच्चोंके भाजनके जिये
अन्नमें ले गया । वही भगना झाड़ुमें उसके हाथ-पैरोंके बन्धन काट-
कर, उसे वही छाड़, वह बाघिन अपने बच्चोंको पुलाने लगी गयी । इसी
वसव स्वयम्भूरेय वहाँमें भागा और वहाँमें भगना खोद पा, एक ज़ाँझि-
लेके मत्तु ही लिया । उहाँ भोगोंके साथ थलकर वह कुछ दिनों बाद
अपने घर पहुँचा । वही पहुँचकर उसने सोचा, —“र जीव ! तू प्रसिद्ध
ज्योतिर्क बादल चिरकाख तक मुनिप्राप्तकी प्राक छानना फिर, पर
तू नरसिंह भोजन भी न पा सका तू जाना घर लौट आया, इसीकी वृत्ति
जागलाज समझ ले ।” इस प्रकारका विचार मनमें जानसे उसे बेराज्य
हृदय हो गया और उसने एक मुनिमें शरित ग्रहण कर लिया गया उसका
अतिशय सद्गति गालाकर, वागुध्य रूपे होने पर, घरकर स्वयं चला गया ।

स्वयम्भूरेयका समाप्त ।

यह कथा सुनी कर भोजानन कहा, — भोगोंभोगका प्रयास कर भोज
दूसरा गुच्छन कहलगा है । यह सब भोजन और चर्मके भेदा उ प्रका
रका है । इनमें भोजनका प्रकाश है, कि किंका मनुष्य भोजनका
अति भोजनका भोजन न करे और समझ कर करे । (भोजन) ।
नयन काय, चर्मका प्रकाश कहलगा है । इनमें भोजन विज्ञान के
इन चर्म भोजनका लक्षण कहा कहिये—१ मरिचक मटर, २

सत्त्वित्त २ मिथवाहार, ३ दुष्पक आहार, ४ अपक आहार और ५ तुच्छ औषधिका भक्षण-भोजनके विषयमें येही पांच अतिचार कहे जाते हैं । कर्मके विषयमें अङ्गार-कर्म आदि पन्द्रह कर्मादानोंको ही पन्द्रह अतिचार समझना चाहिये । हे चक्रायुध राजा ! तुम्हें इन सब अतिचारोंका त्याग कर देना चाहिये । भोगके विषयमें जितशत्रु राजा तथा उपभोगके विषयमें नित्यमरिडता ब्राह्मणी का दृष्टान्त है । भगवान्की यह बात सुन, चक्रायुध राजाने उनसे इन दोनोंकी कथा पूछी । इसपर प्रभुने मधुर वाणीमें कहा,—

अजितशत्रु राजाकी कथा ।

इसो भरतक्षेत्रमें वसन्तपुर नामका नगर है । उसमें जितशत्रु नामके एक राजा रहते थे । उनके मन्त्रोंका नाम सुबुद्धि था । राजा उससे बहुत मानते और प्यार करते थे एक बार उल्टी शिक्षा पाये हुए दो घोड़ों पर राजा और मन्त्रों सवार हुए । वे घोड़े उन्हें एक निर्जन वनमें ले गये । वहाँ वे दोनों तीन दिन तक भटकते फिरे । इतनेमें पोछे लौटतो हुई उनकी सेनासे उनकी मुलाकात हो गयी । उन्होंने साथ-साथ वे दोनों चौधे दिन भूखे-प्यासे अपने घर आये । क्षुधासे पीड़ित राजाने उसी समय अपने रत्नोद्भेको धुलवाकर उससे अथन्य, मयन और उत्तम सब तरहकी रत्नोद्भे तुरत तैयार करवायी । कहा भी है, कि—

‘शिविधनुदितमन्त्रं शृङ्गवदष्टं सुशीघ्रं,
उत्तदत्तच्छतपुष्पं पल्लवं पञ्चवाक्मनै ।
उत्तपत्तनमनेतन्मांसमेनं त्रिधा हि,
पदसत्तवत्पुष्पं भोजनप्रदशं च ॥ १ ॥’

अर्थात्—“तीन प्रकारका अन्न, शृंग-बंट, सुशीघ्र, उत्तमे उत्तम,

१ ये पन्द्रह दोषोंका समझने नहीं आते ; पर सम्मन्त्रक इनका अप्रयत्न-न्यायों, पञ्चान्यों तथा पञ्चमे हुए पदापौका आहार है ।

४५, ५५ और ६६ तथा परस्पर और पाँच प्रकारके भाक्त । इनके
 भोगा मन्त्रपर, मलपर और नमस्करका (अर्थात् लेखन-निरूपण)
 नाम—इन सबको चन्द्रस-युक्त मलके साथ तैयार करना—वेदी
 मण्डप प्रकार भोजनक है । ॥

इसके बाद लड़के लड़कियाँ नृत्यात्मक मन-ही-मन याद करते हुए राजा-
ने लड़के अत्यन्त आहार किया। इसके बाद मध्यम भौद उत्तम आहार
भी इस तरह मजेदारक नृत्य-कर्म कर जाया, कि उनके पैरों हवा की सी
गुंझार न रही। हवासे राजाको हेजा हो गया। उन्ही बीमारोसे
सरकार के अन्तर हुए। सुबुद्धि मंत्रोने अपने शरीरकी हायत रेश,
भाज-भसमकर भोजन किया, इसीलिये वह गूची नहीं हुआ। एक
प्रकार सेन तुर्ही भागमें लुब्ध होनेका पुरा मतीजा कथाके द्वारा क
जया। सब रोगोंकी निपुण नहीं होनेसे जो दोष होता है, उसे भी
कन-साये देना है।

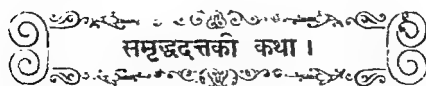
॥ नित्यमगिडना ब्राह्मणाकी कथा ॥ ६८ ॥

[illegible]

दम कितारें हैं । अगर कहीं किसी दिन घरमें चोर घुस पड़े, तो ये गहने तुम्हारे लिये फुसाइका घर ही जायेंगे । यह सुन, उनमें कहा,— “यदि तुम्हें मुझे इन्हें पहननेकी देना नहीं था, तब तुमने इन्हें बनवाया किस लिये ? मेरे म्हालसे तो इन्हें पहने रहना ही ठीक है । जब चोर जायेंगे, तब मैं इन्हें भटपट उतार फेंकूंगी ।” यह सुन, यह ब्राह्मण चुप रह गया । एक दिन उस गाँवपर भोंदोंकी बड़ी प्रचण्ड चढ़ाई हुई और वैद्योगसे ये उसी ब्राह्मणके घरमें घुस पड़े । उस समय भोंलोंने उस ब्राह्मणकी पत्नीको गहने पहने देव, उसे पकड़ लिया, पर चूँकि यह बड़ी हष्ट-पुष्ट थी, इसलिये ये गहने उसके शरीरसे भासागीके साथ नहीं निकल सके । यह देख, उन भोंलोंने उस ब्राह्मणीके हाथ-पैर आदि बहुत बड़ी निर्दयताके साथ काट डाले और उसके सब गहने लेकर चम्पत हो गये । वह ब्राह्मणी आर्चध्यानके साथ मृत्युको प्राप्त हो, नरकमें गयी ।

भोगोपभोग पर नित्य मगिइता ब्राह्मणी की कथा समाप्त ।

फिर श्रीशान्तिनाथ भगवान्ने चक्रायुध राजासे कहा,—“हे राजन् ! तीसरा गुणव्रत अनर्थ-दण्ड-त्याग है । अनर्थके चार भेद हैं । पहला यह है, जो एक मुदुत्त पादही अवध्यान कराता है । दूसरा, जो प्रमादका आचरण कराता है । तीसरा, जो हिंसाके उपकरणों-को दूसरेको देता है और चौथा, दूसरेको पाप-कार्य करनेका उपदेश देता है । इसव्रतके विषयमें समृद्धदत्तकी कथा प्रसिद्ध है । यह इस प्रकार है—



समृद्धदत्तकी कथा ।

धातकी पण्डके भरतक्षेत्रमें रेपुर नामक एक नगर है । उसमें रिपुदमन नामके राजा रहते थे । उसी नगरमें समृद्धदत्त नामका एक

किसान भी रहता था । यह एक दिन माघी रातको उठकर मन-ही-मन विचार करने लगा,—“यदि मुझे लक्ष्मी प्राप्त हो जाये, तो मैं राजा हो जाऊँ और भरतक्षेत्रके छहों खण्डोंको पेरोंतले ले भाऊँ । इस के बाद येतादृश-पर्यन्तपर रहनेवाले विद्याधर मुझे भाकाशगामिनी किरा बतला देंगे । उस विद्याके प्रभावसे मैं भासमानमें उड़ता फिरेगा ।” ऐसा सोचते-सोचते समृद्धिदत्तने शय्यापरसे ही भासमानकी ओर छलनि मारी और नीचे गिर पड़ा । उसके शरीरको बड़ी बल पड़्यो । उसकी चीख सुनकर घरके मादमी इकट्ठे हो भाये और उन्होंने उसे फिर पलंगपर सुला दिया । कितने दिन बाद बड़ी बड़ी मुश्किलोंसे उसकी पीड़ा दूर हुई और यह स्वस्थ शरीरवाला हो गया ।

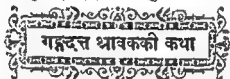
१—एक दिन उसने सब लोगोंके सामने ही बहुतसा धन देकर एक अच्छीसी तलवार खरीदी । एक दिन यह तलवार भूलसे घरके भाँगनमें ही पड़ी रह गयी और यह भन्दर जाकर सो रहा । जब दोपहर रात बीत चुकी, तब उसे उस तलवारकी याद आयी, परन्तु उसने प्रमादपण तलवारको घरमें लाकर नहीं रखा और “मेरी तलवार मल कोन पुण्या १” यही सोचकर सो रहा । रातके आधे पहर उस घरके बाँद पीठे और यही तलवार लिये हुए भगने घर चले गये । एक निम्न धोरोने उम्मी कट्टेके प्रतापसे किसी तरह नगर सँठके पुत्रको हथकर जेद कर लिया । इसी समय राजपुत्रोंने उन धोरोको माँठ धोरोने भी सँठके कट्टेकी जान ले ली । राजकर्मचारियोंने धोरोने घरसे बरामद की हुई यह तलवार ले जाकर राजाको दे दी । यह देख कोपित होकर राजाने उसे बुलाकर कहा,—“दे तुष्ट ! क्या तूने ही मेरा पाप किया है ?” उसने कहा,—“नहीं, स्वामी ! मैंने हरगिज़ नहीं किया ।” राजाने पूछा,—“यह तलवार तुम्हारी है या नहीं ? यदि तुम्हारी तलवार लेकर किसी दूसरेनेही यह पाप-कर्म किया हो, तो भी तुम्हीं इस पापके करनेवाले समझे जायेंगे ।” यह

सुन, उसने राजासे अपनी तलवारको भूलसे उठाकर नहीं रखनेका हाल कह सुनाया । तो भी राजाने उसके अपराधके लिये उसे दण्ड देकर छोड़ दिया ।

२—एक दिन राजाका एक शत्रु उसके पास विष लेने आया । उसका प्रकृति जाने बिना ही उसने उसके हाथ विष बँचा दिया । उस शत्रुने राजा और प्रजाका नाश करनेको इच्छासे वह ज़हर ले जाकर गाँवके बाह्यबन डाल दिया । उस ज़हरांते पानीको पीकर बहुतरे मनुष्य मर गये । अब राजाने यह बात सुनी, तब इस मानलेको उड़का पत्रा लगाते-लगाते उन्हें मालूम हुआ, कि सन्तुष्टिदत्तने ही उनके शत्रुके हाथ विष बँचा था और उसने उसके यहाँसे ज़हर लाकर प्रजाका नाश करनेके इरादेसे उसे सरोवरके डलमें डाल दिया था । यह बात मालूम होनेपर राजाने उसे बुलवाकर उसपर जुर्म कायम किया और उसे सज़ा दी ।

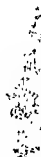
३—एक दिन वह गाँवको सनाने देखा हुआ था । इसी समय एक किसान दो बछड़े लिये हुए उधरसे जा निकला । यह देख, सन्तुष्टिदत्तने उससे पूछा,—“ये दैत सधे हुए हैं या नहीं ?” उसने कहा,—“नहीं ।” तब उसने फिर कहा,—“उन्हें बड़ी बेरहमीके साथ उड़े मार-मारकर अच्छी तरह साथ लेना चाहिये ।” उसका यह कट्टर वचन सुन, वे दोनों बछड़े उसपर बड़े क्रोधित हो उठे । प्रायः प्रायःमात्रको अपने प्रति कटुवचन कहनेवाला अश्वि मालूम होता है । इसके बाद उन पेलोंके स्वामाने उन्हें उबरइस्तो गाड़ने आत दिया । उनके शरीर कोमल होनेके कारण, उनको अति निकट पड़ी और वे दोनों ही, अस्म-विजरा द्वारा अपने व्युत्पन्न कर्तव्य कर मरणको प्राप्त हो, व्यन्तर हो गये । तब सन्तुष्टिदत्तको अपना शत्रु समझकर उन्होंने उसके शरीर-ने तरह-तरहकी व्यधिप्रां उत्पन्न कर दी और कहा,—“मरे जाओ ! तूने जो उन दोनों पेलोंके बरतने देनतत्व ही पर्येन्द्र दिया था, उसका मतभ्रान्ति फल आज भोग ले ।” यह कह, वे उसपर अपना व्यन्तरपना

भगवान्ने कहा,—“अब मैं दूसरा देशायकाशिक नामक शिक्षाका पतलाता हूँ । इस मतमें विष्णुनके परिमाणका और अन्य सब प्रतीक सदा संक्षेप करना होता है । इसके आनयन प्रयोग ७ भादि पाँच प्रलियार हैं । इस मतको शुद्ध रीतिसे निवाहनेसे गङ्गदत्त श्रावकको तरह मनुष्यके लोक परलोक सफल हो जाते हैं ।” भगवान्की यह बात सुन, श्रावकोंने उनसे गङ्गदत्तकी कथा सुनानेकी कहा । भगवान्ने उनकी ओ कथा सुनायी, यह इस प्रकार है,—



इसी भरतक्षेत्रमें शंखपुर नामका नगर है । उसमें गङ्गदत्त नामका एक प्रसिद्ध वणिक् रहता था । एक दिन उसने गुरुसे श्रावक-धर्म ग्रहण किया । यह निरन्तर बारहों प्रतीक पालन करता था । एक दिन उसने देशायकाशिक मत ग्रहण किया । उसदिनउसने सोचा,—“भात्र में खेत्यके सिवा और किसी जगह घरसे बाहर नहीं जाऊँगा । इन प्रकारका अभिग्रह ग्रहण कर यह घर पर हो रहा । उसी समय उसके किसी मित्र वणिक्ने आकर कहा,—“भात्र नगरके बाहर एक कृत्रिम भाया हुआ है । अगर तुम यहाँ चलो, तो हम दोनों यहाँ जाकर सस्ते भावसे किराना खरीदें और खूब लाभ उठावें ।” यह सुन, गङ्गदत्तने कहा,—“मित्र ! भात्र गा मैं नहीं जा सकना । मैंने भात्र ही देशायकाशिक मत लिया है । भात्र में खेत्यके सिवा और किसी जगह घरसे बाहर नहीं जा सकना ।” उनके मित्रने फिर कहा,—“मित्र ! भात्र बड़ा व्यन होनेका सम्भावना है । इसे क्यों हाथसे जाने देते हो ! तुम फिर किसी दिन यत्र ले चला ।” गङ्गदत्तने कहा,—“मित्र ! जिससे धर्मकी शानि हो, ऐसे बड़े भाइयवरवाले लाभका क्या फल होगा ? मैं

७ निश्चिन्त बाहरा ध्यातमें बड़े पात्र धर्मोंके द्वारा मैराना धातन प्रयोग करेला है ।



भेद केवल मेघनुसं परहेज रक्षना और हस्त-स्पर्शादिके विषयमें स्वतन्त्रता रक्षना है। घोषा अग्न्याहार नामका पौषध है। यह भी दो तरह का होता है। इनमें सर्व सावध-व्यापारका त्याग करना पहला और इसके किसी-किसी व्यापारका त्याग करना दूसरा भेद जानना चाहिये। (पौषध करते हैं उसमें आहार-पौषध देशसे और सर्वसे होता है। बाँकी के तीनों प्रकारके पौषध सर्वसे हो होते हैं) इस मतके ऊपर जिनचन्द्रका दृष्टान्त प्रसिद्ध है।" यह सुन, चक्रायुध राजाने यह कथा सुनानेकी प्रार्थना की। तब प्रभुने जो कथा कही वह इस तरह है,—

जिनचन्द्रकी कथा

इसी भरतक्षेत्रमें सुप्रतिष्ठित नामका नगर है। उसमें भगवन्तर्पण नामके राजा राज्य करते थे। उसी नगरमें अनेकधर्ममें भक्ति निधन जिनचन्द्र नामका एक धायक रहता था। उसके मनोहर कन्याली तुन्दरी नामकी पत्नी थी। एक दिन जिनचन्द्र धायक किसी पर्ये स्थितके उपासक्यमें गुन-वासनासे पौषध ग्रहण कर पौषधकालमें पड़ा हुआ था। उस समय शम्भुचन्द्रने नवविज्ञान द्वारा उसकी निधन होकर पौषधली ग्रहण किये हुए जानकर देवताओंकी समामें उसकी इस प्रकार प्रार्थना की,—“महा ! जिनचन्द्र नामक धायक पौषधव्रतमें ऐसा निधन हो रहा है, कि उसे देवता भी नहीं डिगा सकते।” यह सुन, इसकी प्रार्थनासे उल्लभुनकर एक देव, इन्द्रकी आज्ञा से, उसकी पत्नीसे कहनेके लिये माया। उस समय उस देवने मायासे प्रज्वालित हुए बिना ही मूर्खीद्वय उद्विग्न कर दिया और उसकी बहनका कप धारण किये उसके पास आकर कहा,—“भाई ! तुम्हारे लिये यह मंत्राले आया है। मूर्खीद्वय हो गया है, इसलिये पौषध पूर्ण कर, वारणा करो।” बहनकी यह वचन सुन, उपने माया,—“मैंने जिनका धर्मध्यान किया

और जिनका करनेकी शक्ती है उनके अनुमान विचार करनेसे जो भी दिन तथा अवसर मान्य होता है । इसलिए यह माना हो जाता है कि जो देवका आज्ञा मान्य होता है ।" वही मान्य कर यह पुत्र होता है । उसे बाद इस देवने उसके मित्रका भी आग्रह कर, सुगन्धित चिने-र और पुष्प लेकर उनके पास रख दिये । वह उसने अपने हाथ जो ही मसाला । उससे होता तक नहीं । जब इस तरह बालों को बड़ ही दिया, तब इस देवने अपनी आज्ञाओं एक पुरुष पनाया और इस लक्ष्मी उसकी आज्ञाओं के साथ निहन्तना करने हुए दिखाया । जो भी यह आज्ञा आज्ञाओं को भी यह नहीं हुआ । इस प्रकार अनुमान इस लक्ष्मी से निश्चय जान कर उस देवने मित्र और मित्रज आदि के प्रति इन उपदेशों दिल देने शुरू किये । जो जो उसे सोच नहीं हुआ । तब उस देवने अपना हाथ प्रकट कर, लक्ष्मी को ही हुई प्रशंसाका हाथ सुनाई दे उससे कहा,— "हे आज्ञा ! मे सुन्दरा कौनसा मित्र कावे कह ?" वह सुन, उसने निश्चयताके कारण कुछ भी नहीं माना । तब फिर उस लक्ष्मी ने कहा,— "हे आज्ञा ! देवका इतने कभी निष्कार नहीं होता — इस लक्ष्मी कुछ भी तो मानो ।" तब जिनबन्धने कहा,— "हे देव ! लक्ष्मी देवपुत्रका प्रभावना हो, ऐसा काम करो ।" वह सुन, उस देवने अपने और सहित जिनबन्धने को, अष्टादश नक्षत्रों दिया और सुना लक्ष्मी पुष्पोंसे धोजिनरत्नको पूजा को । इसके बाद वह जिनबन्धने नामने यादुदत्तको ऊँचाकर नृत्य करने लगा । वह देव, सब लोगोंने लक्ष्मी के साथ पूजा,— "अज्ञा ! धोजिनधर्मका नाशरत्न केसा है ?" उसने कहा,— "इस जिनधर्मका प्रभाव क्लेशरूप और चिन्तामयिसे भी अधिक है । इनके प्रभावसे प्राणियोंका सर्व और मोक्षका सुख प्राप्त होता है । इसलिए सुधाधियोंकी चालिये, कि धोजिनरासनके विषयमें मनको आराधनासे संबंध रख करने रहे ।" देवका यह वचन सुन, लोग भी जिनधर्ममें नतदर हो गये । इस प्रकार जिनधर्मको प्रभावना कर, वह देव जिनबन्ध आश्रयको आज्ञा लेकर लक्ष्मीलोकमें चला गया ।

बहुष" इच्छानुसार परस्पर बातें करने लगीं । उनका ससुर भी कान लगाकर उनकी बातें सुनने लगा ।

प्रथम यन्त्रमती नामकी बड़ी यह बोली,—“हे सखियों ! भव भगने भगने मन की बातें गुलज़र कहो-सुनो ।” यह सुन शीलमतीने कहा,—
 “कहीं कोई और हमारी बातों को कान लगाये सुनता न हो, इसलिये मन की बातें करनी उचित नहीं है ।” यह सुन, दूसरी बोली,—“हे शीलमती ! तुम व्यर्थ ही भय न करो, यहाँ तो कोई नहीं है ।” तब सपसे छोटी बहूने कहा,—“गहले तुम लोग भगनी-भगनी बातें कह जाओ, इसके बाद जब मेरी बारी आयेंगी, तब मैं भी कह सुनाऊँगी ।” यह सुन, पक्षी बड़ी बहूने कहा,—“अच्छी तरह पचायी हुई गरमागरम खिचड़ी और उसमें ताज़ा घो पड़ा हुआ हो, तो मुझे बहुत अच्छा मालूम होता है । इसके निवा इहो भगवा घीके साथ साथ रखी हो और उनके साथ धामके भँसार हो, तो मुझे बहुत अच्छा मालूम होते हैं ।” इसके बाद कीर्त्तिमतीने कहा, “मुझे काँड़ और घीके साथ साथ खीर बहुत अच्छी लगती है । भगवा घीके साथ-साथ हाल मान और उनके साथ कड़वा और कट्टा मास मुझे बड़ा अच्छा लगता है ।” तब तीसरी शान्तिमती बोली,—“मेरा पसंद सुनो । उसका मूँद और चरवान मुझे बहुत पसंद आते हैं । सायली टार और गुरियाँ मुझे बहुत पसंदी हैं ।” इसके बाद चौथा शीलमतीने कहा, “मेरी सबसे अधिक पसंद ऐसी कोई आस पसन्द नहीं रखती, क्योंकि लोग कहा करते हैं, कि पैर के जल मल वाहना है — वह आस करके पूरी, मिठाई आदि नहीं माँगता । इसलिये मेरी तो बड़ा इच्छा रहता है, कि उससे मुनश्चिन्त रहने के लिये कर, दरवाज़े बन्द आदि का लेल कर, लकड़ों के पत्र पढ़न तथा इसमें कट्टे-कट्टे की तरह मसूर-मसूरान कर, मसूर की तथा अन्य की माँस कर, करके अन्य मनुष्यों का भी अनुग्रह कर तथा इन दूधियाँ का दूध दे, अन्यसे कष्ट कवा हुआ जो कुछ मोलके मिले जाय, गरीबों का दिया जाय । इससे मेरी इच्छा पूरी हो जाती है ।” अब शील-

मतलब अपना यह इच्छा प्रकट की, तब उसे सुनकर दूसरी बोली,—
“तेरी इच्छा तो ऐसी है, कि जो कभी पार न लगे, क्योंकि कितानेके
घरमें बैसा बच्चा भोजनही निलना दुर्लभ है, फिर उत्तम वस्त्रों और
अलङ्कारोंको तो बात ही क्या है ?” उस को बात पूरी हो हुई थी, कि
वृष्टि भी बन्द हो गयी और वे चारों स्त्रियाँ खेतमें चली गयीं ।

इधर महोनाल उन चारोंकी बात सुन, अपने मनमें विचार करने
लगा,—“ओह ! मेरी चारों बहुओंमें तब तो केवल छानेइके लिये हाय-
हाय करतां हैं, इससे नालूम होता है, कि इनको सात इनको इच्छाके
बहुतार खाना नहीं देता । इसलिये आज घर आकर अपना हाथी
उपद्रूगा और तबों बहुओंको इच्छा पूर्ण करूंगा । साथ ही अत्तन्नवित
इत बड़नेवाला छोटी बहूको, जो हो निल जाये, वही छा लेनेकी इच्छा
भी पूर्ण करूंगा ।” यही सोचकर वह घर आया और उसने अपनी खाली
बहुओंकी बातें कह सुनायीं । उसने कहा,—“हे प्रिये ! बाइसे तुम
तबों बड़ी बहुओंको उनके इच्छानुसार भोजन दिया करना और छोटी
बहूको जंता-तैता कराव अब छानेको देना ।” यह कह, वह भी खेतमें
चला गया । इसके बाद खेतका काम इत्तन कर, भोजनके समय सारा
परिवार घर आया । धारिणी सब तरहका भोजन तैयार रखे हुए थी ।
उसने पहले अपने स्वामी और चारों पुत्रोंकी खिन्नकर, पतिके बतलपे
अनुसार भोजन बहुओंके सामने लकर रखा । उस समय वे चारों
विस्मित होकर परस्पर एक दूसरीका मुंह देखकर विचार करने लगीं,—
“बाइ न जाने कैसे हमें इच्छित भोजन निल गया ; पर छोटी बहूको
ऐसा कराव खाना क्यों निल्य ? इसकी क्या कारण है ?” ऐसा विचार
करतां हुई वे छानेकर उठ गयीं । छानेमें गये अनेकाने सोच,—
“नै तो कुछ लिगाइ नहीं था, फिर सातने ऐसा पंडि नेह क्यों
किया ? कहते हैं, कि—

“सौमित्रो वृषात्तको, विद्वान्मित्रो विद्वान् ।

धनदोषो व्यावहृत्यो, रवेते अन्तःकाले तद्वत् ।”

अर्थात्—‘पंक्तिभेद करनेवाला, वृथा पाक करनेवाला, अक्षरपरी निद्राभंग करनेवाला,’ धर्म-द्वेषी और कथाभंग करनेवाला—ये पाँचो पाण्डात कह जाते हैं ।’

इसके बाद ये चारों बनुप फिर क्षेत्रकी ओर चलीं । मार्गमें तीनों बड़ी बहूभोने कहा,—‘आज तो अपना मनोरथ पूरा हो गया । इस शीलमतीने भी जैसा सोचा था, वैसाही इसे भी खानेको मिला । प्रायः पुण्यवान् मनुष्योंको उनके इच्छानुसार फलकी प्राप्ति होही जाती है । इसीलिये बुद्धिमानोंको चाहिये, कि कुछ मनोरथ न करें ।’ उनके साथ जाते-जाते शीलमतीने कहा,—‘इस तरह बढ़िया-बढ़िया चीजें खानेका कोई फल थोड़े ही है ! मला-बुरा जैसा कुछ भोजन पेटमें पहुँचा, यह एकसाँ हुआ । परन्तु जिस दिन मेरा मनोरथ पूर्ण होगा, उस दिन मेरी भावना कृतार्थ हो जायेगी ।’ यह कह, यह थुप हो रही ।

इस प्रकार सदा इच्छानुसार भोजन मिलनेसे बहूभोंको बड़ा भावार्थ होने लगा । एक दिन तीनों बहूभोने अपनी साससे पूछा,—‘माताजी ! आजकल आप हमें हमेशा पादुनोंकी तरह उत्तम भोजन क्यों देती हैं ! और शीलमतीको सदा बुरा खाना क्यों देती हैं ! इसका कारण क्या है !’ इसपर उनकी मासने कहा,—‘तुम लोगोंने किसी दिन एक जगह कहीं होकर भोजनकी बात चलायी थी । वहाँ तुम्हारे ससुर भी बड़े थे । उन्होंने तुम्हारी बातें सुनकर मुझे कह सुनायी । उन्होंने कहे अनुसार मैं तुम लोगोंका इस तरहका खाना दिया करता हूँ ।’ यह बात सुनते ही शीलमतीका चेहरा उदास हो गया । रातको एकान्तमें उसे इस तरह उदास मुँह किये देख, गुरुपालने उससे पूछा,—‘हे जिये ! आज तुम ऐसी उद्विग्न क्यों दिखाई दे रही हो ? क्या तुम्हें लगाने भयकाँके साथ बिटायी है ? भयना तुमने उनके साथ कुछ दिठाई की है, या तुमने माताका कुछ अनिष्ट कर डाला है !’ यह सुन, यह बोली,—‘हे स्वामी ! तुमसे तो मेरी कोई बात छिपी नहीं है ; पर इस मामलेमें कहनेकी तो कोई बात ही नहीं है, इसीलिये मैं तुमसे कुछ भी नहीं

कहा ।” यह सुन, उसके स्वामीने उससे बड़े आग्रहके साथ पूछा । तब उसने आदिसे अन्त तक अपने मनोरथकी कथा उसे कह सुनायी । यह सुन, शूरपालने अपने मनमें विचार किया,—“ओह ! मेरे माँ-बाप भी कैसे मूर्ख हैं ! ऐसी रत्न-समान स्त्रीकी इन लोगोंने ऐसी दुर्गति कर रखी है ! महा, मेरी स्त्रीका मनोरथ कैसा प्रशंसनीय है ! सब स्त्रियोंमें यह स्त्री प्रशंसाके योग्य है । इसलिये अब मैं परदेश चलकर अपनी प्रियाके मनोरथकी सिद्ध करनेका प्रयत्न करूँगा ।”

ऐसा विचार कर, शूरपालने अपनी स्त्रीसे परदेश जानेकी अनुमति मांगते हुए कहा,—“हे प्रिये ! तुम चिन्ता न करो । मैं परदेश जा, धन उपार्जन कर, शीघ्रही लौटूँगा और तुम्हारी इच्छा पूरी करूँगा ।” ऐसा कह, उसके माथेपर अपने हाथसे जूड़ा बांध तथा अँगिया पहिना कर कहा,—“यह जूड़ा तुम मेरे आनेपर ही खोलना और यह अँगिया भी मेरे आये बिना न उतारना ।” अपनी स्त्रीसे यह बात कह, हाथमें तलवार लिये हुए शूरपाल घरसे बाहर निकला और परदेशकी ओर चल पड़ा । उसकी स्त्री थोड़ी देरके लिये हर्ष और विषादका अनुभव करने बाद अपने काममें लग गयी । प्रातः काल महीपाल आदि सब लोग, शूरपालको घरमें न देख, उसे चारों ओर खोजकर हार जानेपर उसकी स्त्रीसे पूछने लगे,—“हे भद्रे ! शूरपाल कहाँ गया ? क्या तुम्हें कुछ मालूम है ?” उसने कहा,—“मुझे कुछ भी नहीं मालूम ।” इसके बाद उसका कोई समाचार नहीं मिलनेके कारण उसके माता, पिता और भाई आदि सब लोग परस्पर विचार करने लगे,—“क्या शूरपालकी किसीने कोई दुःख पहुँचाया है, जिससे वह घरसे निकल भागा ?” पुत्रोंने कहा,—“पिता ! हम लोगोंने तो उसका कुछ भी नहीं बिगाड़ा ; क्योंकि प्रायः छोटा भाई सबको प्रिय होता है ।” इसके बाद फिर उन लोगोंने शूरपालकी स्त्रीसे पूछा,—“भद्रे ! कहीं तुमसे तो उसकी कुछ लड़ाई नहीं हुई है ?” वह बोली,—“मेरे स्वामीके साथ मेरा कभी झगड़ा नहीं हुआ । हाँ, उन्होंने जाते समय अपने हाथसे मेरे बालोंका जूड़ा

बाप दिया और कहा, कि इसे मैं ही आकर खोलूँगा । यह कह, वे कहीं चले गये, इसकी मुझे खबर नहीं है ।”

यह सुन, तीनों भाइयोंने अपने मनमें विचार किया,—“शायद माता-ने भोवनादिमें बहूका कुछ निरादर किया है, इसीसे यह इसे अपना ही भगवान समझकर परदेश चला गया है । कहा भी है, कि भगवानसे तिरस्कार पाये हुए मानी पुरुष माता, पिता, यन्धु, धन, धाम्य, गृह और स्त्री सबको दूरसे ही त्याग देने है । माता-पिता और स्वामीके किये हुए भगवानसे भी मान-रूप धनसे धनिक पुरुष देश छोड़ देने हैं । गुप्त जो शिष्यका भगवान करता है, वह शिष्यके लिये हितकारक होता है ; क्योंकि गुप्त पारण और स्मरण भादिके द्वारा शिष्यकी तर्जनाको सकारण कर देता है । फिर उसकी स्त्रीका भगवान, उसकाही भगवान है ; क्योंकि शरीरकी पीड़ासे क्या जीयको पीड़ा नहीं होती ? ज़रूर होती है ।” ऐसा विचार कर, वे सब उसकी खोज करने पर भी उसका समाचार न पाकर उसके विरहसे दुःखित होने हुए भी अपने-अपने काममें लग गये ।

इधर गुरुगाल, अपने घरसे बाहर हो कमलाः महाशाल नामक नगामें आ पहुँचा । वहाँ पहुँच कर, यका-माँरा होनेके कारण यह नगरके बाहर एक उद्यानमें एक मण्डूककी छायामें सो रहा । उसे गाढ़ी नींद आ गयी, दर उनके पुण्यके प्रभावमें उस वृक्षकी छाया मण्डूक ॥ जानेर भी उनके ऊपरसे नहीं हरी । इसी समय उस नगरका राजा पुत्रदेव अथर्वनाम ही मृत्युका प्राप्ति हुआ । तब प्रधान पुरुषोंने वैश्वदेव प्रभर किये, जो दो पक्ष तक मारी यन्त्रामें घूम फिरकर अन्तमें नगरके बाहर वहाँ पहुँचे, जहाँ गुरुगाल सोया हुआ था । गुरुगालका देखते ही हाथियोंने गऊँन किया, घोड़े दिनदिनाने लगे, उम्र पर भागसे भाग छत्र नन गया, कलहने स्वयं उमर घनिष्ठ किया और खंवर भागसे भाग दूखने लगे । इसे देखते ॥ जय-जय और मण्डूक-गीतका स्वर होने लगा । इस समय मन्त्री और सामन्तोंने उनके सब अंगों की परीक्षा की, तो उसके रूप-

पैरोनें चक्र, स्वास्तिक और मत्स्य आदि शुभलक्षण देखकर, उन्होंने सोचा,—“यह तो कोई बड़ाही महापुरुष मालूम होता है । इसके प्रभाव-से वृक्षकी छाया भी नहीं हटती । यह अपने पुण्योंके प्रतापसे आपसे आप राजा हो गया ।” वे सब सामन्त ऐसा विचार कर ही रहे थे, कि इसी समय शूरपालकी नाँद टूट गयी और वह सोचने लगा, कि यह मानला क्या है ? इसी समय प्रधान पुरुषोंने उसे बड़े आग्रहसे आसन पर बैठाकर ज्ञान तथा विलेपन कराया और वस्त्राभूषणोंसे उसका भूझार कर, अच्छेसे हाथोंपर बँटाया । उसके माथेपर छत्र लगाया गया और दोनों ओर चँवर डुलने लगे । इस प्रकार बड़े ठाट-बाटके साथ उन लोगोंने राजाका नगर-प्रवेश कराया । उसे देखकर नगरकी स्त्रियाँ उसको प्रार्थना करने लगीं । इस प्रकार भाँति-भाँतिके मङ्गलों-का अनुभव करते हुए राजा शूरपाल राजमन्दिरमें प्रवेश कर राजसभामें आ बैठा । मंत्रियों और राजसामन्तोंने आकर उसे प्रणाम किया । क्रमसे सारे नगरमें शूरपाल राजाका नाम फैल गया ।

एक दिन उसने अपने ज्ञानमें सोचा,—“मेरे जो यह राजलक्ष्मी पायी, उसका क्या फल हुआ ? कहा है, कि परदेशमें प्राप्त लक्ष्मीका कोई फल नहीं, क्योंकि उसे न तो शत्रु देखकर जलते हैं और न मित्र उसका उपयोग कर सकते हैं । इसलिये इस ङंगसे पायी हुई यह लक्ष्मी अच्छी नहीं है, क्योंकि अर्थात्क मेरी खोको भी इच्छा पूरी नहीं हो सको ।

ऐसा विचार कर उसने अपने हाथसे पत्र लिखकर अपने परिवार वालोंको यहाँ बुला लानेके निमित्त अपने सेवकोंको अपने घर भेजा । वे काञ्चनपुर पहुँचे सही पर बहुत खोलनेपर भी उसके परिवार वाले उन्हें नहीं मिले । इसी समय किसानों ने उन राजकर्मचारियोंके पास आकर कहा,—“हे भाइयो ! यहाँ वृष्टि नहीं होनेसे अकाल पड़ा हुआ है, इसीलिये महाराजके सेतोंको सारी फ़सल नष्ट होगी । सेतोंके सिवा जीविका-निर्वाहका और कोई साधन नहीं होनेके कारण दुःखों होकर महाराज यहाँसे बहो और चला गया है, किन्तु कहाँ गया है, यह हम

भाप पृथ्वीके पालक हैं और अन्यायका निवारण करने हैं। जो बुर्जन होते हैं, वेही सतियोंके शीलका क्षणभंग करनेको तैयार होते हैं। पर भापके सदृश मनुष्योंको तो ऐसा कदापि नहीं करना चाहिये। यदि भाप भी ऐसा नहीं करने योग्य कार्य करने लगे, तब तो 'जोही रत्नक, सोही मक्षक' वाली कहावत सच हो जायेगी। शत्रुमें कहा हुआ है, कि जो निर्लेज पुरुष परशुका सेवन करता है, वह अपने कुल, पराक्रम और चरित्रको कलङ्कित करता है। सारी दुनियाँमें उसकी बहनामीका नक्कारा धज जाता है।" और उसका महामूल्यवान् शीलरत्न धूलमें मिल जाता है।" जब उसने ऐसा कहा, तब उसके पास रहनेवाले राजपुरुषोंने उससे कहा,—“हे भद्र ! जिन हमारे स्वामीकी अन्य स्त्रियाँ स्वयं प्रार्थना करती हैं, वे जब स्वयं ही तुम्हारी प्रार्थना कर रहे हैं, तब तुम उनकी उपेक्षा क्यों कर रही हो ?” यह सुन, शीलमती बोली,—“मेरे शरीरका स्पर्श या तो मेरे स्वामी करेंगे भयवा अग्नि ही करेगी। मेरे जोते जो इसके कोई पर पुरुष हाथ नहीं लगा सकता।” इसके बाद राजाने उसके मनमें प्रतीति लगानेके लिये, उसको कुछ सङ्केतकी बातें कहीं, इसके बाद फिर कहा,—“हे मुन्हे ! तुम मेरे सामने बाँधें बराबर करछेदेखो और मुन्हे पहचानो। मैं काञ्चनपुरसे मागकर यहाँ चला आया था। उसी समय यहकि राजा अपुत्रक अयस्कमेंही मर गये थे, इसलिये पंचदिष्यमे मुन्हेही राजा बनाया। मैं यही तुम्हारा पति शूरपाळ हूँ।” राजाकी यह बात सुन, उसकी बातें विश्वास करने योग्य समझ सङ्केत वाक्योंका मनमें विचार कर विस्मित होती हुई उसने अपने स्वामीके सामने देखकर उन्हें पहचान लिया। उस समय शीलमती हँसे वैसेही खिल उठी, जैसे मेघकी देखकर म्यूँटे हँसिते हैं। इसके बाद राजाके पुष्पमसे दामिनीने उसे दंड उभय छाकाकर नहला दिया, सब अंगोंपर कुक्षुषका लेप कर दिया, राजाका दिया हुआ रोज़ाना कपड़ा पहना दिया और निम्नक जाति कीदह प्रकारके गृहकार्योंसे उसके शरीरका गृहकार-सम्पादन कर दिया। इनके बाद दामिनी शीलमतीको राजाके पास ले गयी। इसके बाद राजाने उसे

अपने भांध आसन पर बैठाया । उस समय मन्त्री और सामन्त आदिने उसे प्रणाम किया ।

उस दिन शीलमतीके साथ-साथ ऊँठ लेनेको शान्तिमती भी राजाके घर आयी हुई थी । जब राजाने कोधने आकर शीलमतीको ऐश्वर्यानेमें धन्द कर देनेकी आज्ञा दी, तब वह भागकर अपनी जगहपर चली आयी और अपने घरके लोगोंसे कहने लगी, - "शीलमतीने राजा की दी हुई जेनिया नहीं ली, इसीलिये राजाने कोधने मारे उसे फँद-खानेमें डाल दिया है ।" यह सुनते ही अपने कहा,—"जो हुआ, सो ठीक ही हुआ । बहुत कहने पर भी उसने अपनी हठ नहीं छोड़ी, इस-लिये उसे ऐसी सजा मिलनी ही चाहिये थी ।" यह कह, सब लोग अपने-अपने काममें लग गये ।

इसके बाद एक दिन राजाने महोपालको बुद्धिमत् सहित निमन्त्रित किया । तदनुसार वह अपने परिवारके साथ ठीक समय पर भोजन करनेके लिये राजाके घर आया । राजाने उन सब लोगोंकी स्नान करा, अच्छे-अच्छे वस्त्र पहना, योग्यतानुसार धष्ट आभूषणोंसे उन्हें भलंरुत कर दिया । यह देख, महोपालने सोचा,—“इस राजाने जो धन्युकी तरह हमारी इतनी स्वातिरदारी की, उसका क्या कारण है ? अथवा जिससे जो कुछ लेना होता है, वह निर्गुण मनुष्य भी लेही मरता है ।” महोपाल यही सोच रहा था, कि राजा उन सब लोगोंको मनोहर आसनों पर बैठा, उनके सामने बड़े-बड़े धाल रखवाकर आप भी उनके साथ ही उचित आसनपर बैठ गये । इसके बाद राजाके हुक्मसे धष्ट वस्त्र धारण किये हुई सती शीलमती स्वयं ही उन्हें नाना प्रकारके धष्ट भोजन परोसने लगी । तब राजाने उससे कहा, -“प्रिये ! बहुत दिनोंसे मनमें रखा हुआ अपना मनोरथ आज सफल कर ले ।”

इसके बाद सब लोग भोजन करके उठे । राजाने अपने पिताको उत्तम सिंहासन पर तथा भाइयोंको भी उचित आसनों पर बैठा कर, माता और भाभियोंको भी अच्छे-अच्छे आसन दिलवाये । इसके

बाद उन्होंने पिताको प्रणाम कर कहा,—“पिताजी ! उस दिन तुम्हारा जो पुत्र घरसे निकल आया था, मैं वही शूरपाल हूँ । यह राज्य तुम्हारा ही है । मैं तुम्हारा सेवक हूँ । मैंने तुम्हें पहचान कर भी जानबूझ कर तुम्हें मंज़ूरी करने दी, मेरो यह अविनय क्षमा करना ।” शीलमतीने भी सबको प्रणाम कर कहा,—“मैंने आप लोगोंके बचन नहीं मान कर आप लोगोंको दुखी किया, मेरा यह अपराध आप लोग क्षमा करेंगे । ससुरजी महाराज ! मैंने जो आपके कहनेसे भी अपनी भंगिया नहीं उतारी, यह अपने पतिकी आज्ञा उल्लंघन होनेके ही भयसे, इसका भीर कोई कारण नहीं है ।”

यह सब पातें सुन, महीपालने अत्यन्त हर्षित हो, अपने पुत्र शूरपालको पहचान कर कहा,—“हे पुत्र ! तुम्हें यह राजत्वभी तुम्हारे ही पुण्यके प्रभावसे प्राप्त हुई है, इसलिये तुम चिरकाल तक इसे भोग करो । तुम्हें वैद्य कर ही मैं अत्यन्त सुखी हो गया ।” यह कह, राजनीतिको जाननेवाले महीपालने स्वयं उठकर अपने हाथों शूरपालको उठाकर सिंहासन पर बैठा दिया और राज्य पर बैठे हुए पुत्रको पिता भी नमस्कार करता है, इसी नीतिके अनुसार महीपालने भी शूरपालको नमस्कार किया । इसके बाद महीपालने मधुर वचनोंसे शीलमतीसे कहा,—“पेटी ! इस संसारमें ही तू ही धन्य है, क्योंकि तेरे सारे असंभय मनोरथ सिद्ध हो गये । इसलिये तू क्षियोंमें रत्न है । तूने अपने शीलकी खूब रक्षा की और पतिकी आज्ञाका अक्षर-अक्षर पालन किया, इसलिये तेरे समान इस दुनियामें दुसरी कौन खरी है ?” जब महीपालने उसकी ऐसी प्रशंसा की, तब उसने कहा,—“पिताजी ! आपलोगोंने जो मेरी उपेक्षा की, वही मेरे लिये हितकारक हो गयी । उस दिन आपने मेरा अपमान नहीं किया होता, तो आपके पुत्र परदेश क्यों जाते ? उन्हें राज्य क्यों कर मिलता ? आपका गौरव कैसे बढ़ता ? मेरे मनोरथ कैसे सिद्ध होते ?” इसके बाद शूरपाल राजाने सब मन्त्रियों और सामन्तोंसे कहा,—“ये मेरे पिता और ये मेरे माई

हैं, यह मेरी माता और ये मेरी माभियाँ हैं । ये लोग मेरे पूज्य हैं, इस-
लिये तुम लोग इन्हें प्रणाम करो ।” यह सुन, आनन्दित होकर सब
सामन्त आदिने उन्हें नमस्कार किया, तब शूरपाल राजाने अपने
भाइयोंको अलग-अलग देश देकर उन्हें माण्डलिक राजा बना दिया ।
कहा है,—

“नापकृतं नोपकृतं न सत्कृतं किं कृतं तेन ।

प्राप्य वत्तानधिकारान् शत्रुषु निश्रेय बन्धुवर्गेषु ॥ १ ॥”

अर्थात्—“चंचल राज्यादि अधिकार पाकर जिसने शत्रुओंका
वपकार नहीं किया, मित्रोंका उपकार नहीं किया और बन्धुओंका
सत्कार नहीं किया, तो क्या किया ? कुछ भी नहीं किया ।”

शूरपाल राजाने अपने माता-पिताको अपने पास ही रखा और
अपनी आत्माको कृतार्थ मानते हुए अपने राज्यका पालन करने लगे ।
एक दिन उस नगरके बाहर वाले उद्यानमें धी ध्रुतसागर नामके सूरिका
समयसरण हुआ । उस समय उनके चरणोंको नमस्कार करनेके लिये
नगरके लोगोंको जाते देखकर शूरपाल राजाने मंत्रीसे पूछा,—“हे मंत्री !
ये लोग कहाँ चले जा रहे हैं ?” इसके उत्तरमें मंत्रीने राजाको सूरिके
आगमनका समाचार कह सुनाया । यह सुन, राजाने कहा,—“जय इस
नगरके लोग ध्यानके सूर्यके समान गुरुको नमस्कार करनेके लिये जा
रहे हैं, तब मुझे भी जाना चाहिये ।” मंत्रीने कहा,—“हे स्वामी ! यह
विचार बहुत ही उचित है ।” यस तुरतही राजा, माता-पिता और
प्रियाके साथ उद्यानमें आ, सूरिको प्रणाम कर, उनके पास ही उचित
स्थानपर बैठ रहे । उस समय सूरिने राजाको संसार-समुद्रके पार
उतारनेमें नौकाके समान धी सर्वज्ञ-भाषित जिनधर्मकी देशना कह
सुनायी । उसे सुन, प्रतियोध प्राप्त कर, राजाने गुरुके सामने ही धावक
धर्म अङ्गीकार किया और उन्हें प्रणाम कर घर चले आये । इसके बाद
राजा शूरपाल प्रतिदिन सूरिको प्रणाम करने जाते और धर्म सुन
जाया करते । एक दिन अवसर पाकर राजाने गुरुसे पूछा, “हे

अन्न-शय्य भी बच जाये—पास-पड़ो भी जो कुछ दाम-दमड़ा था, वह भी उड़ गया । उसने एक वष तक बिना धेतनके राजाकी सेवा की, पर उसने राजासे कुछ भी लाभ नहीं उठाया । तब उसने बड़े अफ-सोसमें पड़कर सोचा,—“राजाने पहले तो बड़ी उदारता भरी बातें कहीं, पर अब तो माहूम होता है, कि वे निरी छोपी बातें थीं । कहा भी है, कि—

असारस्य पदार्थस्य प्रायेणादम्बरो महान् ।

नहि तादृग् ध्वनिः स्वर्गो, वायुगः कांस्य भावने ॥ १ ॥”

अर्थात्—“अकसर देना जाता है, कि जिसके भीतर कुछ सार नहीं होता, उसका उपरसे बड़ा भारी जाडम्बर होता है, कौंसके वर्णनसे ऐसी ध्वनि निकलती है, वैसी सोनेसे नहीं निकलती ।

“क्रितने ही मनुष्य यारें बोलनेमेंही बहादुर होते हैं, काम करनेमें नहीं । शास्त्रमें कहा है, कि—

“अदातरि समुद्रोऽपि, किं कुर्वन्त्युपजीविकाः ।

किमुक्ं किं शुक्रः कुर्यात्, कलितेऽपि शुभ्रचितः ॥ १ ॥”

अर्थात्—समुद्रिशाली हो; पर दाता न हो, तो उसके सेवन क्या करे ? (सेवकों का दुःख-दारिद्र्य कैसे दूर हो ?) कले हुए किशुकके वृद्धको लेकर मूला तोता क्या करे ? (उससे तोतेकी मूल थोड़ेही मिटनेकी है ?)”

ऐसा विचारकर उसने फिर सोचा,—“इस कृपण राजाकी सेवासे तो मेरी खेती ही अच्छी है, कहा भी है, कि—

“वृक्षा जेमति वाञ्छित्ये, किंचित्किंचिच्च कप्ये ।

अस्ति नास्ति च मेवायां, भिन्नायां न च नैव च ॥ १ ॥”

अर्थात्—“लक्ष्मी व्यापारमें ही रहती है । थोड़ी-थोड़ी संती यारीमें भी रहती है । मेवासे लक्ष्मी होती है और नहीं भी होती । परन्तु भिन्नासे तो हरगिज होही नहीं सकती ।

“इसके अतिरिक्त खेती करनेमें घरवालोंसे विद्युद्भेदका भी डर नहीं रहता। यद्यपि योंही खाली हाथ घर लौटना बड़ी शर्मकी बात है, तथापि व्यर्थ यहाँ रहना किस कामका ?” ऐसा विचार कर वह उस स्थानसे चल निकला और बिना धर्म-पंचके ही रास्ता ते कराना हुआ रातके समय अपने घर आया तथा घरके बाहरवालों भीनसे उठकर कर खड़ा हो रहा। इतनेमें उसने अपनी छाँको, अपने बालकोंको, जो सुंदर पदार्थ खानेको माँग रहे थे, यह जवाब देने हुए सुना, —“पुत्रो ! तुम्हारे पिता राजाकी सेवा कर, बहुतसा धन कमा लायेंगे। तब मैं तुम्हें तुम्हारे इच्छानुसार भोजन दूँगा। तुम्हारे पिता बड़े अच्छे-अच्छे यत्न लायेंगे और मुझे गहने गढ़ा देंगे—सब कुछ अच्छा हो जायेगा ; इसलिये तुम रोओ मत।” यह सुन, ध्यायने सोचा,—“अहा ! मेरी स्त्रियोंके हृदयमें तो बड़ी-बड़ी आशाएँ हैं ! ऐसी हालतमें जब वह मुझे यों फटे हाल आया हुआ देखेंगी, तो उसको छाती फट जायेगी और वह मर जायेगी। इसलिये चाहे जितने दिन पोत जायें, पर मुझे धन लेकर ही घर आना चाहिये, नहीं तो नहीं।” ऐसा निश्चय कर वह पाँछे लीटा और बिना किसीको कानोंकान अपने भानेको खबर दिये चला गया। उस समय वह अपने मनमें विचार करने लगा,—

“निर्नितोऽसि नरः किं त्वं, विलीनोऽम्बोदरे न किम् ।

जीव रे निर्धनायत्न्य, जाता दत्तं दृषी तव ॥ १ ॥

नार्जिता क्लृप्ता नैव, धके भर्तव्य पोषयन् ।

दत्तं च देन नो ज्ञानं, तत्त्व उन्नम निरपेक्षम् ॥ २ ॥”

अर्थात्—“रे जीव ! तू दुर्लभ साइको हुआ ? नाके गर्नेमें ही नर क्यों न गया, जो तेरो ऐतौ दरिद्रावस्था हुई ? जितने धन नहीं कमाया; बिनका पालन-पोषण करना चाहिये, उन्हें नहीं पाला-पोता ; दोन-दुःस्तिषोंको दान नहीं दिया, उत्तम जन्म व्यर्थ हो गया ।

ऐसा विचार कर, वित्तमें दृढ़ता और साहसको धारण कर वह उत्तम रत्नोंकी प्राप्तिके निमित्त रोडपाचल-पर्वतको ओर चला गया।

मार्गमें भिक्षाटन करता हुआ वह रास्तेके लोगोंसे रोहणाबलकी राह मालूम करता हुआ कमराः उस पर्वतपर पहुँच गया । कहा भी है, कि—

“भोजनभारः समर्पणां, किं तूरं भ्यस्तायिनाम् ?

को विदेशः धुविधानां, कः परः शिष्यादिनाम् ।”

अर्थात्—“समर्थजनोंके लिये कुछ भी भारी नहीं है, उद्योगियोंके लिये कितनी भी दूरी हो ; पर वह जाना कुछ मुश्किल नहीं है । उत्तम शिष्याचार्योंको विदेश कौनसा है । और शिष्य उचन बोलनेवालेका पराया कौन है ?”

इसके बाद ध्याय, रोहणगिरिपर चढ़कर कुशलसे यहाँकी भूमि कोढ़, भबड़े-भबड़े रक्त निकाल, अपने पस्त्रके छोरमें बाँध, भीष माँग-माँग कर पैदल चला हुआ अपने घरकी ओर चला । रास्ता चलने-चलते वह एक दिन पिथामके लिये एक पेड़के नीचे बैठ गया । इसी समय उसने एक नुकीली दाढ़ीवाले बाघकी मुँह पीछाये अपनी ओर भ्रान्ति देखा । उसे देख, डरके मारे वह ज्ञान बचानेके लिये शीघ्रताके साथ उस पेड़ पर चढ़ गया । उस समय रक्तोंकी पोटली, जिससे उसने नीचे रख दिया था, भूमि पर ही पड़ी रह गयी । बाघ, कुछ देरतक उस पेड़के नीचे खड़ा रह कर, जगलमें निराश हो, जगलमें चला गया, परन्तु ध्याय उसके नयनों वृक्ष पर से नीचे उतरा नहीं। जगलमें वहाँ एक चन्दर भा पड़ूँचा और अपने वज्राल स्यमावके कारण चटपट उस रक्तोंकी पोटलीको मुँहमें दबाये हुए उठकर कुशल हुआ भाग गया । उसे पोटली देखे वागता देख, ध्याय चटपट पेड़से नीचे उतरकर उसके पीछे-पीछे दौड़ा, पर वह चन्दर एक वृक्षमें दूमरे वृक्षपर छलांग मारता हुआ चाड़ी देरमें कहीं भटकर हो गया । उस समय ध्यायने बोला,—“हे प्रोच ! जिसे निष्ठाविनयन कम करने दे, वही शयन मुक्तने पूर्ण क्रममें बन आया है, स्वीये विजयाने मुझे इस वृक्षपर ऐसा बना कर ले जा दे कि मैं जिमी क्रममें हाथ डालूँ। वही भिक्षु क्रम दे । परन्तु परम पुण्यरहित मानिषोंके

सारे उद्यम निष्फल हो जाते हैं, तथापि उन्हें पुरुषार्थका त्याग नहीं करना चाहिये ।”

इस प्रकार अपनी आत्माको आपही धैर्य देकर वह भागे पड़ा । कमसे वह जङ्गल पारकर एक गाँवमें पहुँचा । उस गाँवके बाहर एक योगीको घेठा देख, व्याघ्रने उसे प्रणाम किया । तब योगीने कहा,—“बेटा ! तेरा दारिद्र्य दूर हो ।” यह आशोर्थात् सुन, व्याघ्रने उसे अपनी पूरी राम कहानी सुनाकर कहा,—“स्वामी ! अब आपको कृपासे मेरी दारिद्र्यता अवश्य ही दूर होगी ।” इसके बाद योगीने उसे रसकूपके कस्यकी बात सुनायी और एक पहाड़की कन्दरामें ले जाकर उसे रसके कूर्पमें रस लानेके लिये लटकाया । इसी समय सुलसकी तरह उसे भी रस-कूपमें पहलेसे पड़े हुए किसी आदमीने उसके लिये रसकी तुम्बियाँ भर दीं और उस योगीकी दुष्टता बतला दी । इसके बाद व्याघ्र रससे भरी हुई तुम्बियाँ लिये हुए कूर्पके किनारे पहुँचा । जब योगीने उससे तुम्बियाँ माँगी, तब उसने नहीं दी । उस समय योगीने सोचा,—“पहले मैं इसे याहर तो निकालूँ, पीछे किसी-न-किसी उपायसे इसे धोखा देकर तुम्बियाँ हथिया लूँगा ।” यही सोचकर उसने उसे कूर्पसे याहर निकाला । इसके बाद वे दोनों पर्वतकी गुफासे याहर निकलकर गाँवके पास आ पहुँचे । वहाँ आकर योगीने उससे कहा,—“हे भद्र ! हमारा मनोरथ सिद्ध हो गया । इस रसको लोहेके पत्र पर लेपकर आगमें तपाकर मैं सोना बनाऊँगा । अब तुम निश्चिन्त रहो ।” यह कह, पहलेका धोड़ासा सोना, जो योगीके पास था, उसे व्याघ्रके हवालेकर योगीने कहा,—“बेटा ! तू यह सोना बस्तीमें ले जाकर बेच डाल । और उसी दामसे दो बख तथा उत्तम भाजन ला, तो हमलोग भोजन करें । एक बख मेरे लिये और एक अपने लिये लाना । धनका यही उपयोग है, कि खायें और दान करें ।” यह सुन, व्याघ्रने सोचा,—“यह योगी अवश्य ही मेरा हितैषी है, नहीं तो अपना सोना मुझे काहेको देता ?” ऐसा विचारकर, रसकी तुम्बियाँ योगीके ही पास छोड़कर वह सरल

चित्तसे वस्तीमें जा, पूरी-मिठाई आदि भज्जी-भज्जी खानेकी चीज़ बनवा, मिट्टीके बर्तनमें भर, और घस्त्र भी खरीद कर गाँवके बाहर हुआ । एषर योगी रसकी तुम्हियाँ लिये हुए उसे धोखा देकर चम्पत हो गया । यहाँ पहुँचकर, व्याघ्रने जब उसे नहीं देखा, तब सोचा,—“भोह ! उस दुष्ट योगीने तो मुझे धुव छकाया ! परन्तु कहा है,—

‘मित्रप्रदोर्ही कृतघ्नश्च, स्नेहीविन्यासघातकः ।

ते नरा नरकं यान्ति, यावच्चन्द्रदिवाक्यौ ॥ १ ॥’

अर्थात्—“मित्रप्रदोर्ही, कृतघ्न और स्नेहीके साथ विरगास-घात करनेवाले मनुष्य तपतकके लिये नरकमें पड़े रहते हैं, जबतक सूरज और चाँद पृथ्वी पर प्रकाश फैलाया करते हैं ।”

यह कह, भोजन और वस्त्र पुष्पीपर फेंक, मूर्च्छित हो जानेके कारण यह ज़मीनपर पड़ा रहा । कुछ देर बाद होशमें आनेपर उसने भाप-ही-भाप कहा,—“हा वैष ! क्या इस संसारमें तुम्हें मुष्कसा भमागा और न कोई न मिला, जो तुम मुझे ही इस तरह सब दुःखोंका भण्डार बनाये हुए हो ? एक तो मुझे निर्धनता सता ही रही थी । दूसरे, मैंने जो सेवा की, तो वह भी बेकार होगयी, फिर रख हाथमें भाकर जाते रहे और भबके सुवर्ण सिद्धिका रत्नभी मुट्ठीमें भाकर निकल गया ! मेरे लिये केवल दुःख परम्परा ही रखी है । इसलिये अब तो मेरा मर जाना ही मय्या है ।”

यहाँ सोचकर वह एक पेड़पर चढ़ गया और उसकी एक डालमें रस्मी बाँध, उसमें भज्जा गला फँसाना हो चाहता था, कि इतनेमें महीने भरके उपवासी, ईर्ष्यासमितिके शोधनमें तत्पर और वस्तीकी और माहारके लिये जाते हुए एक मुनिको देखकर उसने सोचा,—“मैं वृक्षसे नीचे उतरकर यह शुद्ध भोजन और वस्त्र इन्हीं मुनीभ्यरको दे दालूँ, तो इस दानके प्रभावसे शायद अमन्तरमें मुझे सुखकी प्राप्ति होगी ।” यह सोच, वृक्षसे नीचे उतर उसने मुनिको प्रणाम किया और उनके सामने वह भोजन-वस्त्र रख कर कहा,—“हे पूज्य ! क्या कर माय इस भोजन और वस्त्रको ग्रहण करें ?”

यह सुन, मुनिने उस चयालीस बाणोंसे रहित शुद्ध भोजनको देख, वर्तनसे निकालकर प्रदण किया और वस्त्रको भी कलानीय देखकर उसे भी ले लिया । इसके बाद उसने फिर मुनिको प्रणाम किया । मुनि अपने स्थानको चले गये । व्याघ्रने अपने मनमें सोचा, —“मैं भी धन्य हूँ, जो मुझे ऐसा सुभवसर हाथ लगा । बिना बढ़े भाग्यके ऐसा उत्तम भोजन वस्त्र यैसे मिलता और ऐसे स्थानमें ऐसे महामुनिका शुभागमन कैसे होता ? फिर मुझ विवेकहीनके ही मनमें दान देनेकी वासना कैसे उदय हो आती ? भतपय आज मेरा जन्म सफल हो गया । यह शुद्ध भावसे यहाँ सब सोच रहा था, कि इतनेमें उस वटवृक्षमें रहने वाली कोई देवी बोले उठे,—“देवी ! तेरे मुनिको दान देनेसे मैं यड़ी सन्तुष्ट हुई हूँ, इसलिये बता, मैं तेरा कौनसा मनोरथ पूरा करूँ ?” यह सुन, व्याघ्रने कहा,—“तुम चाहे कोई देवी क्यों न हो, पर यदि तुम मेरे ऊपर प्रसन्न हो, तो मुझे पारिभद्र नगरका राज दे डालो—साथही बहुतसा द्रव्य भी दो ।” देवीने कहा,—“हे महापुरुष ! तुझे सब कुछ मिलेगा । पहले तू इस चाक्री बचे हुए भयको खाकर अपनी जान तो बचा ले ।” देवीके इस आदेशको सुन, हर्षित होकर उसने भोजन किया । वस्त्र पहना और स्वस्थ हुआ । इतनेमें देवीके प्रभावसे यही बन्दर जंगल से आकर रत्नोंकी पोटली उसके पास रख कर फिर जंगलमें चला गया । उसी पुण्यके प्रभावसे वह यांगी भी रससे भरी हुई तुम्बियाँ लिये हुए आया और रससिद्धिने यागसे ढेर-का-ढेर सोना बनाकर व्याघ्रको दे गया ।

इधर पारिभद्र-नगरके राजा, किसी कारणसे श्वयोगसे मृत्युको प्राप्त हुए । उनके राज्यकी चलाने वाला एक भी पुत्र नहीं था । इसलिये देवी रत्नों और सुवर्णके साथ व्याघ्रको लिये हुई उस नगरके पास छोड़ गया और लोगोंसे कह गया,—“हे पुरवासिया ! मैं तुम्हारे लिये एक श्वयोग राजा ले आया हूँ और उसे पुरोके बाहर छोड़ आया हूँ । तुम लोग उसका बड़ी धूम-धामके साथ नगरमें प्रवेश कराओ ” देवीका

यह भावेश सुन, मन्त्री, सामन्त आदि पुरवासी बड़े सन्तुष्ट हुए और नगरके बाहर आये ।

यहाँ उन्होंने अपने ही नगरके रहनेवाले व्याघ्रको देखा । इसके बाद बड़ी धूम-धामके साथ उसे हाथी पर बैठाकर मन्त्री-सामन्त आदि उसे पुर-प्रवेश कराया । उस समय तक इस नगरमें पहलेसे बवा-बवा हो शुका था वह भी सुनो—

व्याघ्रकी स्त्री उसी बनियेकी दुकानसे बराबर भाटा-धावल लेती रहती थी, इसलिये धीरे-धीरे उस पर बनियेका बहुतसा लहना हो गया, इस कारण और बहुत दिनोंसे व्याघ्रका कोई समाचार नहीं मिला था, इसलिये भी—उस बनियेने व्याघ्रकी स्त्रीको बालकों सहित पकड़कर उस नगरके कोतवालेके घर बन्धक रख दिया था । यह समाचार सुन कर व्याघ्रने उस बनियेका लहना कोड़ी-कोड़ी शुका दिया और वस्त्रों सहित अपनी स्त्रीको मुक़्तदाकर राजमहलमें बुला लिया । इसके बाद व्याघ्र भी राजमन्दिरमें आया । मन्त्री, सामन्त आदि सब लोगोंने उसे प्रणाम किया । इसके बाद व्याघ्र राजाने सबके सामनेही अपनी महा आश्चर्यवायिनो कथा कह सुनायी । इसके बाद राजाने अपनी स्त्री और बच्चोंको अच्छे-अच्छे वस्त्रालद्वार देकर भूषणसुष्ट किया । इस प्रकार सत्याग्रहों दान देनेका प्रवृत्ति और तत्कालिक पत्र देखकर राजा निरन्तर मुयात्रोंका दान देने लगे । कहा भी है, कि—

“अये तेने लखे गुह, पात्र दाने मवाननि ।

राज बाध स्वयं दानि, विन्तारकनुगतिः ॥ १ ॥”

अर्थात्—“अबमें तेज, राजमें गुन बात, पात्रमें दान, बुझिमानने मान—इतनी अन्तुष अनी गतिके अनुसार आपने आप विन्तारको दान दोती है ।

अब अपने दुर्घाको वाइ कर, व्याघ्रराजा सब जानियोगर भेषा-भाव रखने लगे और छठ पूरक त्रिमका अर्द्धतक उपकार बन पड़्य, अर्द्धतक उपकार करने लगे ।

ज़िक्र आया है, यह पल्लेश्यावाला था । यह निरन्तर पराये धनका हरणकर अपनी जीविका निर्वाह करता था । एक दिन बैरसिंहके सैनिकोंने उसे बलपूर्वक मार डाला । चढ़ी मरकर कितने ॥ मशोंमें तिर्येब गतिमें भ्रमण करता हुआ इस भवमें तुम्हारे रूपमें प्रकट हुआ है । पूर्वभयमें तुमने पराया धन हरण किया था । इसीलिये तुम्हें इस भवमें धनकी प्राप्ति नहीं हुई । कहा भी है—

“अदत्तभासादि भवेद्वित्री, इतिभावाच्च कर्तानि पापम् ।

पापं हि कृत्वा भस्के प्रयाति, पुनर्द्वित्री पुनरेव पापी ॥१॥”

अर्थात्—“दान नहीं करनेसे मनुष्य दरिद्र होता है, दरिद्र होनेके कारण वह पाप करता है और पाप करते नरकको जाता है । वहसे निकलकर फिर दरिद्र और पापीही होता है ।

“बीघ-बीघमें तुम्हें धन मिलता रहा । पर यह भी नष्ट होता गया,— तुम्हारे पास नहीं रहने पाया । अश्वके सुपात्रको दान देनेके प्रभावसे ही, हे राजन् ! तुम्हारी गयी हुई लक्ष्मी और यह राज्य तुम्हें प्राप्त हुआ है । कहा भी है, कि—

“उपात्रदानेन भवेद्विनाश, धनप्रयोगेच्च करोति पुरयम् ।

पुरयप्रभारंश्च जयेच्च स्वयं, स्वयं उष्णानि प्रगृह्णी भवति ॥१॥”

अर्थात्—“सुपात्रदानके प्रभावसे मनुष्य धनाश्रय होता है । पन पाकर वह पुष्य करता है । पुष्यके प्रभावसे वह स्वर्ग जाता है और भवमें उसे बहुतों मुक्त मिलता है ।

इस प्रकार गुरुके मुंहसे माने पूर्व भयको बाध मुन, प्रतिबोध प्राप्त कर, सूरिकों प्रणाम कर, घर जा, अपने पुत्रको राज्य पर बैठ; व्याघ्र राजाने उन्हीं गुरुसे दीक्षा ग्रहण कर ली । इसके बाद चरित्रकी धाराधना कर, समाधि मरण द्वारा मृत्युको प्राप्त हो, यह देवलोकको चले गये । अतः आकर यह मनुष्य-क्रम प्राप्त कर, मोक्षको प्राप्त होंगे ।

महाशान्तिनाथ-वचनानि व्यास-कथा समाप्त ।

इस प्रकारकी कथा सुनाकर स्वामी धर्मशान्तिनाथने चक्रायुध राजासे कहा,—हे राजन् ! पहले कहे हुए चारहोंमें गृहस्थोंके लिये बतलाये गये हैं । चिवेकी मनुष्योंको उन प्रतीका पालन कर, अन्तमें संलेखना करनी चाहिये । गृहस्थ-धर्मका आराधन कर, बुद्धिमानोंकी अन्तमें सर्व-विरति ग्रहण करनी चाहिये । ऐसी शुद्ध संलेखना सिद्धान्त-ग्रन्थोंमें बतलायी गयी है, अथवा धायककी दर्शन (समकित) आदि ग्यारह प्रतिमार्ग बहन करनेको भी शुद्ध संलेखना कहते हैं । इन प्रतिमाओंका बहन न करे, तो अन्तमें सन्धारामें रह कर भी वीक्षा ग्रहण कर लेना चाहिये । इसके बाद अन्त समयमें वृद्धि पाते हुए शुभपरिणामके साथ गुरुके निकट त्रिविध अनशन ग्रहण कर, गुरुके मुंहसे आराधना ग्रन्थोंको सुनना चाहिये ।

“अब जांचोंको चाहिये, कि अपने मनमें निर्मल संवेग-रङ्ग लाकर शुद्ध मनसे इस प्रकार संलेखना करें और उसके पांचों अतिचारोंका वजन करें । उन अतिचारोंके नाम और अर्थ इस प्रकार हैं,—पहला—इहलोकाशंता-प्रयोग अर्थात् ‘यदि मैं मनुष्य-भव प्राप्त करूँ, तो अच्छा है, ऐसा मनमें विचार करना, पहला अतिचार है । दूसरा—परलोकाशंता-प्रयोग अर्थात् ‘परभवमें मुझे उत्कृष्ट देवत्व प्राप्त हो, तो ठीक है’ ऐसा विचार करना दूसरा अतिचार है । तीसरा—जोविताशंता-प्रयोग अर्थात् पुण्याधीन जन जो अपनी महिमा बखानते हों, उसे देखकर अधिक दिन जीनेकी जो इच्छा होती है, वही तीसरा अतिचार है । चौथा—मरणशंता-प्रयोग अर्थात् अनशन ग्रहण करने बाद क्षुधा आदि पीड़ासे जल्दी मर जानेकी जो अभिलाषा होती है, वही चौथा अतिचार है । पांचवां—कामनागाशंता-प्रयोग अर्थात् उत्तम शब्द, रूप, रस, स्पर्श और गन्धकी जो इच्छा होती है, वही पांचवां अतिचार है । पहले सुलसफो कथामें जो जिनशेखरका वृत्तान्त कहा गया है, उसे ही संलेखनाके विषयमें दृष्टान्त समझना ।” इस प्रकार संलेखनाके सम्यन्ध में धर्मशान्तिनाथ जिनेश्वरके कहे हुए धर्मोंको सुनकर, सारी सभाकी ऐसा आनन्द हुआ, मानों सब पर अमृत बरस गया ।

इसी समय चक्रायुध राजाने छट्टे होकर प्रभुकी घन्दना कर, दोनों हाथ जोड़े हुए यिनतो की,—“हे समस्त संशय-रुपी भन्धकारको नाश करनेमें उत्तम सूर्यके समान और तीनों लोकोंसे चन्दना किये जाते हुए श्रीशान्तिनाथ प्रभु ! तुम्हें नमस्कार है। हे प्रभु ! मेरी दुष्कर्म-रुपी बेड़ियोंको काट कर तथा राग-द्वेष-रुपी शत्रुका नाश कर, मुझे इस संसार-रुपी कारागृहसे मुक्त करो। हे जिनेश ! निरन्तर जन्म, जरा और मृत्युकी भागमें जलते हुए इस भय-रुपी गृहसे दीक्षा-रुपी करव-लम्बन देकर मुझे बाहर निकाल लो।” इस प्रकार श्रीशान्तिनाथसे यिनतो कर, भस्मन्त घैराग्य प्राप्त हो, चक्रायुध राजाने पैंतीस राजाओं-के साथ प्रभुसे दीक्षा ग्रहण कर ली।

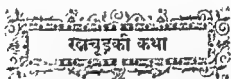
इसके बाद उन्होंने प्रभुसे पूछा,—“हे स्वामिन् ! तत्त्व क्या है ?” प्रभुने कहा,—“उत्पत्ति—यह पहला तत्त्व है।” तब बुद्धिमान् राजाने एकान्तमें जाकर विचार किया,—“ठीक है। समय-समय पर गरब तिर्यच, मनुष्य और देवगतिमें जीव उत्पन्न हुआ करते हैं, पर यदि इसी तरह समय-समय पर उत्पन्न हुआ ही करें, तो वे तीनों भुवनमें न समाएँ, इसलिये उनकी कोई-न-कोई और गति भवश्यक होगी।” ऐसा विचार कर उन्होंने फिर भगवान्से पूछा,—“हे भगवन् ! तत्त्व क्या है ?” प्रभुने दूसरा तत्त्व “विगम” बतलाया। यह सुन, उन्होंने फिर सोचा,—“विगमका अर्थ नाश है। हमका मतलब यही है, कि समय-समय पर जीवोंका नाश हुआ करता है। पर यदि योंही चिन्ताश हुआ करे, तो अन्त होसना हो जाये।” ऐसा विचार कर, उन्होंने फिर पूछा,—“हे भगवन् ! तत्त्व क्या है ?” तब भगवान्ने तीसरा तत्त्व “स्थिति” बतलाया। इससे समस्त जगत्का भौतिक-स्थिर-ज्ञान, चक्रायुध राजर्षिने इन तीनों पक्षोंके अनुसार द्वादशाङ्गीकी रचना की। इसी तरह अन्य पैंतीसों मुनियोने भी भगवान्के मुँहसे त्रिपदी सुन कर द्वादशाङ्गीकी रचना की। इसके बाद वे सब क्रिन्-स्वरके पाम गये, उन्हें इस प्रकार बुद्धि-वेगमें सम्यक् ज्ञान,

भगवान् आसनसे उठकर पड़े हो गये । इधर इन्द्र सुगन्धित वस्तुओं-से (चासक्षेपसे) भरा हुआ थाल लिये जिनेंद्रके पास आ पड़े हुए । इसके बाद भगवान्ने धीसंघको उसमेंसे चासक्षेप लेकर दिया । छत्ती-सों मुनियोने तीन बार भगवान्को प्रदक्षिणा की । इसके बाद उनके मस्तक पर धीसंघ तथा भगवान्ने चासक्षेप डाला । प्रभुने गणधरके पद पर स्थापित किया । इसके बाद भगवान्ने यमुतेरे पुरुषों और स्त्रियों को दांशा दी, जिससे स्वामोको साधु-साध्वियोंका बहुत बड़ा परि-वार प्राप्त हो गया । जो लोग नतिधर्मका पालन करनेमें असमर्थ थे, उन धावक-धाविकाओने जिनेंद्रके निकट धावकोंके वारह व्रत ग्रहण किये । इस प्रकार पहले समयसरणमें चार प्रकारके संघ उत्पन्न हुए ।

पहलो पोरशी पूर्ण होने पर धीजिनेंद्र उठ खड़े हुए और दूसरे प्रकारमें बने हुए देवच्छन्दमें विधाम करने गये । उस समय धी जिनेंद्रके पादपीठ पर बैठकर प्रथम गणधर चक्रायुधने दूसरी पोरशीमें सभाके समस्त व्याख्यान दिया । उस व्याख्यानमें उन्होंने जिन धर्ममें स्थिरताके निमित्त धीसंघको पापका नाश करनेवाली अन्तरङ्ग-कथा इस प्रकार कह सुनायी,—

“हे भव्यजोवो ! यह मनुष्यलोक नामका क्षेत्र है । इसमें शरीर नामका नगर है । इसमें मोह नामक राजा स्वेच्छा-पूर्वक विलास करता है । इस राजाकी पत्नीका नाम माया है । इनके पुत्रका नाम अनङ्ग है । इस राजाके प्रधान मन्त्रीका नाम लोभ है । सब धीरोंमें शिरोमणि क्रोध नामका महायोधा उस मोह राजाके पासमें रहता है । राग और द्वेष नामके दो अतिरथी योद्धा हैं । मिष्यात्व नामका माण्ड लीक राजा है । मान नामका बड़ा भारी हाथी इस मोहराजाकी सवारी-में रहता है । इस राजाके इन्द्रिय-रूपी अश्वों पर चढ़नेवाले विषय नामके सेवक हैं । इसी प्रकार उस राजाके बहुत बड़ी फौज है । उस नगरमें कर्म नामका किस्तान रहता है । प्राण नामका एक बहुत बड़ा व्यापारी है । मानस नामका तलारक्षक (कीतवाल) है ।

एक बार धर्म नामक राजाने मानस नामक नगर-कोतवालको गुह्य-पदेश-कारी द्वय देकर अपनी ओर मिला लिया और सेना सहित उस नगरमें प्रवेश किया । इस धर्म राजाके अज्ञुता नामकी रानी, सत्तोष नामका प्रधान मन्त्री, सम्यक्त्व नामका माण्डलिक राजा, महावत-कारी सामन्त, अणुवत-कारी पैदल सिपाही, मार्दव नामका गजेन्द्र, उप-राम आदि योद्धा और सत्चारित्र नामक रथपर भाङ्ग धृत नामका सेनापति है । ऐसे धर्मराजाने मोहराजको जीतकर उस नगरसे निकाल बाहर कर दिया । इसके बाद धर्मराजाने अपने सब सैनिकोंको आवा दी,—“इस नगरमें कोई मोहराजाको जरा सी भी जगह न मिलने दे ।” धर्मराजाकी ऐसी आवा चलमान होते हुए भी यदि कदाचित् कोई मोहके पया हो जाये, तो उसे कर्म-परिणति फिरसं-रास्तेपर ले भाती है । जैसे कि अनीतिपुरमें गये हुए रत्नचूड़ नामक बनियेको यमघण्टा नामको घेदयाने बुद्धि देकर विग्रहसे बचाया था ।” यह सुन, धीसहने प्रथम गणधरसे पूछा,—“यह रत्नचूड़ कौन था ? उसकी कथा कह सुनाइये ।” तब गणधरने नीचे लिखी कथा कह सुनायी —



इसी मरत-क्षेत्रमें समुद्रके किनारे घनाश्व मनुष्योंसे पूर्णताप्रतिष्ठि नामकी नगरी है । उस नगरमें रत्नाकर नामका एक सदाचारी, स्वर्मी-कन् और मर्माङ्ग-गुण सेट रहता था । उसकी पत्नीका नाम सरस्वती था । यह व्याप्य पुण्य, लावण्य, अंगुण्य और वाक्षिण्यादि गुणोंसे विभू-जित था । एक दिन सरस्वतीने रानके गिरने पर रत्नचूड़में मङ्गलेष्ट्या और नैवेद्य उजाग्य करने वाला एक रत्न अपने हाथमें आया हुआ देखा । आकर उत्तेजित होने पर वह रत्न अपने धर्मसे करी । रत्नको वह रत्न सुन, धर्मसे कहा — “रत्न ! इस रत्नके उजाग्यमें तुम्हें पुराणका

प्राप्ति हागी । यह सुन, सेठानी बड़ी हर्षित हुई । कमसे गर्भका समय पूरा होनेपर सेठानोके एक शुभलक्षण-युक्त पुत्र हुआ । स्वप्नके अनुसार ही उसका नाम रत्नचूड़ रखा गया । जब वह लड़का पाँच वर्षका हुआ, तब सेठने उसे विद्या-शालामें कलाभ्यास करनेके लिये भेज दिया । कमसे पुत्र युवा हुआ । अब तो वह विचित्र शृङ्गार कर उद्बुध वंश धारण किये, अपने समान वयसवाले मित्रोंके साथ नगरके उद्यान आदिमें मन-माने तौरसे क्रीड़ा-विलास करने लगा । एक दिन वह चौकपरसे घूमघूमकर धीरे-धीरे चला आ रहा था, इसी समय सामनेसे चली आती हुई राजाकी प्यारी वेश्या सीमाभ्यमञ्जरीके कन्धेसे वह टकरा गया । इतनेमें उस वेश्याने उसका चरित्र पकड़, क्रोधसे मिली हुई हँसीके साथ कहा, —“बाहजी सेठके बेटे ! विद्वानोंने ठोक ही कहा है, कि धन होनेपर लोग आँखें रहते भी अन्धे, यहरे और गूँगे हो जाते हैं । इसीसे तो तुमने इस नयी जवानोमें, दिन-दहाड़े चाँड़े रास्तेपर सामनेसे आती हुई मुझको नहीं देखा ! अरे भाई ! तुम्हें धनका इतना घमण्ड करना ठीक नहीं ; क्योंकि नीतिके जाननेवाले विद्वानोंने कहा है, कि बापकी कमाईपर कौन नही मौज करता ? पर तारीफ़ तो उसकी है, जो अपनी बाजू-कूबतकी कमाई पर मौज करता फिरता हो । नीतिशास्त्रमें कहा है—

“नातुः स्तन्यं पितुर्वित्तं, परेभ्यः क्रीडनार्थनम् ।

प्रातुं भोक्तुं च सातुं च, गाल्य एवोचितं यतः ॥१॥”

अर्थात्—“नाताका स्तन पान करना, पिताकी सम्पत्तिकी उपयोग करना और दूसरोंमें क्रीडाकी वस्तुएँ माँगना—ये सब काम लड़कोंको ही सोहते हैं ।” और भी कहा है, कि-

“नोन्वसवस्मिन् पुत्रो, लब्धिं भुञ्जेज्जो पिय ज्ञास्स ।

सो रत्नस्यो पुत्रो, पुत्रो सो वयरत्नस्य ॥ २ ॥

अर्थात्—“जो पुत्र सोलह वर्षकी उमर हो जानेपर भी पिताकी ही उपार्जित लक्ष्मीका उपयोग करना है, उसे सुनो । जो वही ही समझना चाहिये ।”

इस प्रकारकी बातें सुनाकर वह घेइया अपने घर चली गयी। उसकी बातें सुनकर सेठके लड़केने सोचा,—“भहा ! इस घेइयाने बहुत ही ठीक कहा । मुझे इसकी बातोंपर भ्रमल करना चाहिये, क्योंकि कहा है, कि—

‘बासादपि हितं वाच्यं—ममेष्यादपि काञ्चनम् ।

नान्धारप्युत्तमो विद्यां, चारुदुष्पुमारपि ॥ १ ॥’

अर्थात्—‘यदि बालक भी कोई हितभी बात कह दे, तो उस मान लेना चाहिये । विद्यामें भी यदि सोना पड़ा हो तो उठा लेना चाहिये । नीचके पासभी यदि उत्तम गिया हो, तो उससे ले लेनी चाहिये और नीच कुलमें भी यदि स्त्री-रत्न मिले, तो उसे पहन कर लेना उचित है ।’

इस प्रकार नौतिकी बातें मनमें सोचते हुए वह मुंह मलिन किये हुए घर आया । उसे उदास देख, उसके पिताने पूछा,—“पुत्र ! आज तुम्हारा यह सूझा हुआ चेहरा मुझे साफ़ बतला रहा है, कि तुम्हें किसी बातका सोच पैदा हुआ है । इसलिये तुम बतलाओ, कि तुम्हें किस चीज़की जरूरत है ? तुम्हें जो कुछ चाहिये, यह बतला दो, मैं तुम्हारी इच्छा अवश्य पूरी करूँगा, क्योंकि तुम मुझे प्राणोंसे भी बढ़कर प्यारे हो ।” यह सुन, तनिक मुश्कुराकर रत्नचूड़ने पिताने कहा,—“हे पिता ! यदि आपकी आज्ञा हो, तो मैं द्रव्य उपार्जन करनेके लिये पितृदेश जानेकी इच्छा करता हूँ । इसलिये आप मुझे जानेकी आज्ञा दीजिये ।” यह सुन, सेठ रक्षाकरने कहा,—“बेटा ! अपने घरमें धनकी क्या कमी है ? तुम इसीसे अपने सारे मनोरथ पूरे कर सकते हो । और यह भी जान रखो, कि परदेशका ज़ंझा बड़ा ही कठिन होता है । बड़े ही कठोर अनुष्णोंका काम परदेश सेवन करना है । तुम्हारा शरीर बड़ा ही कोमल है, इसलिये तुम भला कैसे परदेश जा सकोगे ? साथही जो पुण्य इन्द्रियोंका वशमें रख सके, स्त्रियोंको देखकर मोहित न हो सके, भिन्न-भिन्न तरहके लोगोंसे ठीक-ठिकानेके साथ बातें कर सके, यही परदेश जा

सकता है। इसलिये चेटा ! तुम परदेश जाकर क्या करोगे ? यह मैंने जितनी सन्पत्ति उपार्जन कर रखी है, वह सब तुम्हारी ही है।" ऐसा कहनेपर भी उसने अपनी हठ नहीं छोड़ी। नव पिताने उसे जानेकी आज्ञा दे दी। जिस कामको करनेके लिये आदमी निश्चय कर लेता है, वह मला कैसे नहीं होगा ?

इसके बाद रत्नचूड़ने अपने पितासे लाख रुपया अपने छाते नाम लिखवाकर लिया और उसीसे किरानामाल खरीद, एक भाड़ेके जहाजमें भरकर आप उसीपर सवार होने चला। उसी समय सेठने आकर उसे इस प्रकार शिक्षा दी "चेटा ! देखना, अनोतिपुर नामक नगरमें भूले भी न जाना, क्योंकि वहाँके राजा अन्यायी हैं, जिनके अधिकार नामक मन्त्री, सर्वप्रथम नामक कोतवाल और अशान्ति नामक पुरोहित हैं। वहाँ गृहीतमक्षक नामक सेठ, मूलनाश नामका उसका पुत्र, रणघण्टा नामकी वेश्या और यमघण्टा नामकी कुटनी है। उस नगरमें चोर, जुधारी और परस्त्रीप्रापी लोग बहुत रहने हैं। उस नगरके लोग सदा ऊँचे-ऊँचे मकानोंमें रहने हैं। यदि कोई अनजान आदमी वहाँ व्यापार करनेके लिये पहुंच जाता है, तो वहाँके लोग, जो लोगोंकी धानमें बड़े उत्साह हैं, उसका नवन हरण कर लेते हैं। इसलिये तुम सिर्फ उसी अनोतिपुर नगरको छोड़कर और जहाँ चाहो, वहाँ व्यापार करनेके लिये जा सकते ॥। देखा, मेरी यह शिक्षा कभी न भूलना।" इस प्रकार पिताकी शिक्षा निर-आंखोपर चढ़ा मांगलिक उरवार कर, वह सेठ-मुन शुभ-मुहूर्तमें घरसे बाहर निकला, उसके स्वजन उसे पहुंचाने वाले और शुभ शकुनोन्मत्त उन्मार्हित हांवा हुआ वह मनुष्यके बिनारे भाया। कहा है कि—

गोदन्तर्गतम् ८ दक्षिणवर्तम् ३३६ ॥ ३३६ ॥

चरु का विष्णुम् ८ दक्षिणवर्तम् ३३६ ॥ ३३६ ॥

उत्तरवर्तम् ३३६ दक्षिणवर्तम् ३३६ ॥ ३३६ ॥

उत्तरवर्तम् ३३६ दक्षिणवर्तम् ३३६ ॥ ३३६ ॥

अर्थात्—‘गौ, कन्या, गज, बाजा, दही, फल, फूल, ‘धधकती
हई अमि, बाहन, बासण-युगल, अर, हस्ती, रुपम, पूर्णकुम्भ, धव,
मोदी हई पृथ्वी, जलचर-युगल सिद्ध अन्न, शव, वेश्या, स्त्री, मांसता
पिण्ड तथा शिव और हितकारक वचन—ये सब चीजें याता करने-
ताओंको जाने समय मिलें, तो मगलकी सूचना देती हैं ।’

इसके बाद रत्नचूड़ जहाज़पर चढ़ा । उसके भारतीय-स्वजन उसे
घिंसा करके पीछे खींचे । इसके बाद वाल नानकर माँझियोंने जहाज़
चलाता शुरू किया । कूपस्लम पर घेठा हुआ आदमी मार्गका ध्यान
रखने हुए नायिकोंकी सूचना दिया करता और ये लोग भी उसकी
बुझाईके अनुसार पाछिऊन ठीपकी ओर जहाज़को लिये जाते थे ।
परन्तु जहाँ पहुँचना था, वहाँ न पहुँचकर यह जहाज़ होनहारके घर
वही रुककर रुक गया जहाँ भनीतिपुर नामका नगर था । उस जहाज़को
आने देखकर उस नगरके लोग बड़े हर्षित हुए और ऊँचेप्रदेश पर चढ़कर
उसकी ओर देखने लगे । उस ठीपका देखकर रत्नचूड़ तथा नायिकों-
ने किस्सासे पूछा—‘यह ठीप कौनसा है और इस नगरका क्या नाम
है ?’ उसने उत्तर दिया—‘यह कूट-ठीप कहलाता है और इस नगर-
का नाम भनीतिपुर है ।’ यह सुन, उस संदके पुत्रने अपने मनमें सोचा,—
‘जिस नगरमें आनेका पिताने मना किया था, वेश्ययोगसे यही नगर
मना हुआ’ यह प्रच्छा नहीं हुआ । पर भय क्या कई ! शत्रुन तो
प्रच्छा हुए थे तथा तो शत्रुनका * और मेरे चित्तमें उच्छाह भी मया
हूँ * इसलिये प्रश्न न करने शक्या होता है कि मुझे यहाँ मनमाना
राम होगा ।’

इसके बाद वह रत्नचूड़ भिड़ जहाज़में नीचा उतरा और सामन्त
‘नलव’ के साथ-साथ ही अपने साथ लाने देव यहाँ आने नीकरोंसे सब
काज उठा देने देव ही प्रभावका * आने नीकरोंका इत्तने कर भी दे
देव * देव ही देव प्रभावका वाक्य कृष्ण प्रभुके बाद रत्नचूड़के

कहा,—“हे धेष्टोपुत्र ! तुमने जहाँ और न जाकर यहाँ उतरकर बड़ा धनवान् काम किया । हम लोग तुम्हारे भग्ने ही हैं । हम लोग तुम्हारा सब माल लें लेंगे, तुम्हें बँचनेके लिये तरबूद मही करना पड़ेगा । यहाँ इन लोगों यह सब तरबूद लेंगे और जब तुम घर जाने लगोगे, तब जैसा माल रहोगे, वैसा माल तुम्हारे जहाज़में भर दिये ।” यह सुन, धेष्टोपुत्रने उनको बात मान ली । उन कपट-बुद्धि पनियोंने उसका सारा माल ले, आपसमें बाँट लिया और अपने-अपने घर चले गये । इसके बाद रत्नचूड़ पच्छे-मले कपड़े पहन, सुन्दर मल्लहार धारणकर, अपने गौकरोंके साथ नगरको और अन्यायी राजासे मिलने चला । रास्तेमें एक मोर्चाने सोने-चाँदीके लैंस टँके हुए दो जोड़े जूते उसकी नेंद किये । उन्हें लेकर उसने कहा,—“भाई ! इनके दाम क्या हैं ?” यह सुन, उसने बड़े दाम माँगे । तब रत्नचूड़ने सोचा,—“यह तो बड़े अन्यायकी बात कहता है ।” इसके बाद उसने उसे पान देकर कहा,—“हे कारांगर ! जब मैं जाने लूँगा, तब तुम्हें धुश कर दूँगा ।” यह कह, उसे बिदा कर, सेठ भागे पड़ा, इतनेमें उसे सामने ही कोई काना जुझारी मिला । उसने सेठसे कहा,—“सेठजी ! मैंने अपनी एक माँख तुम्हारे पिताके पास हजार रुपये लेकर बन्धक रखी थी, इसलिये अपने रुपये लेकर मेरी माँख वापिस कर दो ।” यह कह, उसने सेठको हजार रुपये दे दिये । यह सुन रत्नचूड़ने सोचा,—“यह तो एकदम बनहोती बात कह रहा है । तो भी जब यह धन दे रहा है, तब इसे ले ही लेना चाहिये ; फिर जो उचित मालूम होगा, वह करूँगा । यही सोचकर उसने हजार रुपये लेकर उससे कहा,—“जब मैं यहाँसे लौटने लूँगा, तब तुम मेरे पास आना ।” यह कह, वह भागे वड़ा ।

रत्नचूड़को देखकर, चार धूर्त्त आपसमें बातें करने लगे । एकने कहा,—“समुद्रके जलका प्रनाप और गंगाकी रेतकी कपिकाओंको गिनती नन्ते हाँ कोई बुद्धिमान् कर ले ; पर वह भी खोके हृदयको तह तक नहीं पहुँच सकता ।” यह सुन, दूसरेने कहा,—“वह तो किसीने

ठीक ही कहा है, कि लीके हृदयको कोई नहीं जान सकता, पर समुद्र-
के पानी और गंगाकी रेतका प्रमाण भी कोई नहीं कर सकता ।” यह
सुन, तीसरेने कहा,—“यह तो पूर्वसूरिका सुभाषित बिलकुलही भसल
मातृम होता है । तो भी वृहस्पति और शुक्राचार्य जैसे लोग कदापि
जान भी सकते हैं ।” इसके बाद चौथेने कहा,—“भरे ! गंगानदी तो
बुर है, पर तुम इस समुद्रके जलकी चाह तो इससे लगाओ ।” इस
प्रकार उन धूर्तोंने व्यर्थका विषाद कर अपनी धूर्त विद्यासे उस भेड़ी-
पुत्रको इस मामलेमें पेसा उत्साह दिलाया, कि यह इस कामको
करनेके लिये राजी हो गया । इसके बाद उन्होंने फिर उससे कहा,—
“सैठजी ! अगर तुम यह काम कर सोगे, तो हम अपना सारा धन तुम्हें
दे देंगे और यदि नहीं कर सकोगे, तो तुम्हारा सब धन हमसोग छे
लेंगे ।” यह कह, उन लोगोंने सैठके साथ बाज़ी लगानेके लिये उसके
हाथपर हाथ मारा । तत्कालीने भी उसके हाथपर हाथ मारा और
भागो बहा । इसके बाद वह मानने लगा, “भरे पिताने जैसा कहा
था, इस नगरके लोग ठाक घेरी ही हैं । फिर इन सब कामोंका निष्-
टारा कैसे होगा ? अच्छा रहा, पहले मैं गणपंटा नामकी बेइयाके घर
चलना है । क्योंकि यह बहूनोंका दिल बुरा करती और तरह-तरहके
कल्प करके जानती है, इसलिए यह मुझ कुछ भल्लू भल्लू सिखलावेगी ।”

यहाँ मानकर वह बेइयाके घर गया । उसने उठकर उसका स्वा-
गत किया और वह भाइयोंके साथ उसे बठनेके लिये भासन दिया ।
इसके बाद तत्कालीने तीन धूर्तोंका दिया हुआ धन उसके इधाले कर
दिया । इसमें वह बेइया बड़ी प्रसन्न हुई और कर्पण, उग्रचन, धान
और न इत भण्डारे इमन इसे बहुत सम्मानित किया । इतनेमें सन्ध्या
हो गया । इस समय सैठ इसका भुटायम संशय बड़ा और वह बेइया
भट्टीयार लम्बे नर प्रसन्न और विश्रुत पुरुषोंके योग्य, बातचीत
करने लगा । “तुम ही नगरमें बैठने इतने भली मारी रामचन्द्रानी
मुझका कहा है नगरमें नरपाया तुम इसी नगरकी रहनेवाली

हो, इसलिये यहाँ का हाल तुम्हें बखूबी मालूम है, इसलिये तुम्हों यत्नाओ, कि मैं इन ऋणियों का फ़ैसला किस तरह से करूँ ? इन मान-लोकों का निराशा हो जाने पर भी मैं तुम्हारे साथ रंगरसकी बातें कर सकता हूँ । मनी तो मैं बड़ी चिन्तामें हूँ ।" यह सुन, वह चतुर पत्निरिया बोली,—“हे सुन्दर ! सुनो, यदि कोई व्यापारी ईश्वरयोगसे यहाँ भा पहुँचना है, तो यहाँके लोग, जो ठग विद्यामें पूरे उत्साह हैं, उसे एकपायाँ लूट लेते हैं । इसके बाद वे ज़रनी लूटके धनका एक भाग राजाको, दूसरा भाग मन्त्रियोंको, तीसरा भाग नगरसेठको, चौथा भाग झोंतवालको, पाँचवाँ भाग पुरोहितको और छठा भाग मेरी माता यम-घंटाको दे जाया करते हैं । सब लोग उससे भाकर अपना परिवार हाल सुना जाया करते हैं । मेरी माता यड़ी बुद्धिमान है—सवाल-जवाब करनेमें बड़ी होशियार है । सब लोगोंको वहाँ कपट-विद्या सिखाया करती है । इसलिये मैं तुम्हें उताँके पास ले चलती हूँ । यहाँ तुम भी उसकी बातें सुन लेना ।” यह कह, रातके समय, उसकी उदारतासे प्रसन्न बनी हुई वह वेश्या, उसे खाँकी पोशाक पहनाकर, अपनी माँके पास ले गयी । वह प्रणाम कर माँके पास बैठ रही । माने पूछा—“देटी ! आज यह तेरे साथ कौन आया है ?” उसने कहा — “माता ! यह धींदल सेठकी पुत्री बनवती और मेरी प्रापप्रिय सखी है । यह मुझे एक दिन नगरमें मिली थी । उस समय मैंने इससे अपने घर आनेको कहा था । इसलिये यह कुछ बहाना करके घरसे बाहर हो, यहाँ मुझसे मिलने आयी है । मैं इसे तुम्हारे पान लेना भयो हूँ ।” यह कह, बड़ बहाँ बैठ रही । इनने वे चारों बनिचे जिन्होंने रत्न-चूड़का सारा माल ले लिया था, बुद्धियाने पान आये और उखित स्थान पर बैठ रहे । बुद्धियाने कहा — “व्यापारियों ! मैंने सुना है कि आज यहाँ कोई उहाड़ आया है ‘वे येले, ‘हाँ त्तम्भन’ एक एक वचिक पुत्र यहाँ आया है ।” उसने फिर कहा — “उमके आनेसे तुम्हें कुछ लाभ हुआ या नहीं ?” यह सुन उमने उससे उमका नारा माल ले

इसके बाद सेठके उस पुत्रने विधिपूर्वक अन्य स्त्रियोंके साथ भी व्याह किया । तथा अपनी भुजाओंके प्रतापसे उपाजन की हुई लक्ष्मीको सफल करनेके निमित्त उस नगरमें बड़ा भारी जिनवेत्य बनवाया । घिरकाल तक सुखभोग करनेके अनन्तर उसे पुत्र उत्पन्न हुआ । तब उसने सद्गुरुसे धर्म ध्येय कर, प्रतिबोध प्राप्तकर, वैराग्यके साथ संयम ग्रहण किया । और इसका त्रिकरण शुद्धि-पूर्वक पालनकर, भक्तमें समाधिमरण द्वारा मृत्युको प्राप्तकर, स्वर्गको गया । वहाँ विविध प्रकारके सुख भोगते हुए पुनः वहाँसे निकलकर यह क्रमसे मोक्षको प्राप्त होगा ।

इस कथाका उपनय इस प्रकार करना—मनुष्य जन्मको सुकुल मानो, पणिक-पुत्र को मध्यप्राणियों मानता, उसके पिताके स्थानमें धर्मका बोध करानेवाले दितकारक गुरुको समभजा, देशाके घञ्जकी जगह धन्दादि द्वारा उत्पन्न उरसाहको समभजा, क्योंकि धन्दा भी पुण्य लक्ष्मीकी पृष्टि करनेमें मदद पहुँचाती है ; मूलद्रव्यके स्थानमें गुरुका दिया हुआ चरित्र मानना ; अनीतिपुरमें जानेका जो निषेध किया गया था, उसे गुरुकी 'सारणा-वारणा' (विधि-निषेध) समभजा संयमरूपी जहाज़ पर चढ़कर मयसागर पार किया जाता है, ऐसा समभजा, नाविकोंके स्थानमें साधर्मिकों और मुनियोंको समभजा, मणिक-व्यताके नियोगके समान प्रसादको जानना, अनीतिपुरके समान दुष्कृतिका प्रयुक्त होना समभजा, धन्यायी राजाके स्थान पर मोहराजाको जानना, सौभागरी मातृ करोड़नेवाले चारों भूत बनियोंके स्थानमें चार प्रकारके कणायोंको जानना— ये ही विधिकक्षरी धनको हृदय कर लेते हैं, देशा विभवकी विराप्ताको समभजा । अम्मा (कुटनी) कर्मपरिप्लव है—वही पूर्व मयमें मय्युक्त कर्म करनेवालोंको सुवर्ण देती है । उसके प्रभावसे प्राणी समस्त अशुभोंका नाश कर फिर अन्नभूमिके मयान धर्ममार्ग पर आ जाता है ।

इसी प्रकार इस कथाका उपनय त्रिम प्रकार पर्यन्त हो सके,

वैसा, पण्डितगण धर्मको पुष्टि करानेके लिये विस्तार-पूर्वक घटित-
कर लेते हैं।

रत्नबद्ध-कथा समाप्त ।

इस प्रकार प्रथम गणधरने धोसंधको धर्मदेखना सुना, अपनी धिर-
वित द्वादशांशु प्रकट की तथा ध्रुवज्ञानकी धारण करनेवाले उक्त गण-
धरने इस प्रकारकी साधुसमाचारों कह सुनायो और साधुके सारे-
वृत्त्य प्रकाश किये ।

इसके बाद भगवान् धोशान्तिनाथने वहाँसे अन्यत्र विहार किया।
सूर्यकी तरह स्वामी निरन्तर भव्यजीव-रूपी कमल वनको विकसित
करने लगे। कितनोंनेही प्रभुके पास आकर दास्य ले ली, कितनोंने शुभ-
वासनासे प्रेरित हो, धावकधर्म भङ्गोकार किया, कितनोंने समन्वित
लान किया और कितने ही जीव भगवान्को देखना सुन, भद्रिक भाषो
हो गये—केवल भगव्य जीव पाकी रह गये, कहा भी है, कि—

सर्वस्वापि तनोनष्ट-मुदिते जिनभास्करे ।

कौयिस्य नानिरान्धत्वं न नन्वा नामनुषत् ॥ १ ॥

बन्दिनार्थि न तिष्ठन्ति, तथा कंदुस्यः क्वाः ।

तथा तिरितनन्वा नां विनेतार्थि न जायते ॥ २ ॥

पणेषुत्रिती धान्यं, न स्मादृष्ट्यर्थं नारं ।

शोधो न स्मादनन्वा नां, जिनंदनया तथा ॥ ३ ॥

जहाँतू—“विनेस्वर-स्त्री नृपके उदय होनेसे सबके अज्ञान-
स्त्री अन्धधरदा नाश हो गया ; रान्तु उल्लुङ्घी तरह जननोद्ध
अन्धारन ज्योत्स्ना त्यों बना रहा । जैसे कंदुकाके शने आगये
पकने पर भी नहीं पकते, जैसे ही विनेस्वर द्वारा भी जननो के
तिथि नहीं मिलती । जैसे शनी परतने पर भी उज्जरने सोच हुआ
धान नहीं उगता, जैसे ही विनेस्वरकी देखनासे भी जननोको रोष
नहीं होता ।”

जित्त-जित्त देखने धो शान्तिनाथ प्रभु विहार करने थे, परां-परां

लोगोंके सब उपद्रव शांत हो जाते थे । प्रभु जिस भूमिमें विहार करते वहाँसे सौ योजन पर्यन्तके लोगोंको भकास या महामारी आदिके उपद्रवोंसे उद्दिष्ट होनेकी नीयत नहीं आती थी, तथा पचीस योजन तक सब तरहके वृक्षोंमें फल-फूल भर जाते थे । लोग सुकसे निर्मय होकर पृथ्वीमें विहार करते रहते थे । श्रीजिनेश्वरका प्रभाव विभवके लिये विस्मयकारक होता है, वेसे जिनेश्वरका वर्णन मेरे जैसा भक्त दुर्दिवाला मनुष्य कहाँतक कर सकता है ? जिसके पद्मोपमाका आयुष्म हो और हज़ार जिह्वाएँ हों वही शायद उनके गुणोंका वर्णन कर सके । कहा भी है, कि—

“विज्ञाताति जिनेन्द्राद्यां, कोनियेव गुह्योत्तरम् ।

त एव हि विज्ञापयति, दिव्यज्ञानेन तं पुनः ॥ १ ॥

असितगिरिसमे स्वात्कण्डलं सिन्धुपात्रे,

स्रस्तस्वरपाका सेवनी पत्र गुर्वी ॥

लिकति यदि गृहीत्वा मारदा सर्वकाले ।

तदपि तव गुह्यावामीक पाई न याति ॥ २ ॥”

अर्थात्—“जिनेन्द्रोंके सब गुणोंको कौन जानता है ? वे ही दिव्यज्ञानके द्वारा अपने गुण समूहोंको जानते हैं । जंजन-गिरिके बराबर कण्डल सिन्धु-पात्रमें घोल कर, कस्पवृक्षकी शाखाकी कठम बना, पृथ्वीरूपी बड़ेसे कागज पर स्वयं मारदा । बिरकाल तक लिखती रहे, तो भी हे ईश ! वह तुम्हारे गुणोंके पार नहीं पहुँच सके ।”

इसी प्रकार भगवान् भी शान्तिनाथ जिनेश्वर समस्त भव्य जीवोंके उपकारके लिये पृथ्वीपर विहार कर रहे थे, वक्रायुध गणधर स्वयं जानते हुए भी भव्य जीवोंके प्रतिबोधके निमित्त भगवान् से अनेक प्रकारके प्रश्न किया करते थे और स्वामी उन सबके यथोचित उत्तर दिया करते थे ।

इस प्रकार पृथ्वीपर विहार करते हुए श्रीशान्तिनाथ भगवान्ने पासठ हज़ार मुनियोंको दोषा दी और एकसठ हज़ार छः सौ शीलवती साध्वियाँ बनायीं । श्रीसम्यक्त्व सहित धामकधर्मको धारण करने

वाले ; जाँवाजोव आदि तत्वोंके जाननेवाले; यज्ञ, यज्ञ और देवादि
दाय भी धर्मसे न टलनेवाले ; अस्थि तथा नञ्जा पर्यन्त जिन धर्मसे
वास्तव ; जिन वचनोंको ही तत्त्वज्ञान माननेवाले; चारों पर्वों पौष-
व्रतको ग्रहण करनेवाले और तदा निरवय आहारादि देकर मुनिपोंका
सन्मान करने वाले धर्मशान्तिनाथसे प्रतिबोध पाये हुए दो लाख नब्बे
हजार ध्यायक तथा विविध गुणोंको धारण करनेवालोंतोन लाख तिरा-
नवे हजार ध्यायिकारं हुए । जिन नई होते हुए भी जिनको नांति
अतन्त अवगत और वर्तमान स्वरूपको जाननेवाले अठ हजार चौदह
पूर्वों हुए । अतन्त ननुप-म्व ठकड़े स्वरूपान्-द्रव्योंको प्रत्यक्ष
देखनेवाले तीन हजार अवधिहानों हुए । दाईं दोरोंमें रहनेवाले संवा-
वान् जाँवोंके ननके पर्यायोंको जाननेवाले चार हजार ननपर्यवहानों
हुए । छः हजार वैश्विय लब्धिवाले मुनि हुए तथा दो हजार चारसौ
चाइ लब्धिवाले हुए । प्रभु शान्तिनाथका इतना बड़ा परिवार बंध गया ।

धर्मशान्तिनाथके शालनमें भगवान्का वैयाकृत्य करनेवाला और
धांतबंधके सनप्र विप्रोंके समूहका नारा करनेवाला 'गहड़' मन्त्रका
यज्ञ हुआ तथा भट्टजनोंको सहायता करनेवालों तिवाँयों नानको
शालनदेवों हुए । चक्रपुत्र राजाका पुत्र शोभावल नानक राजा भग-
वान्का सेवक हुआ । भगवान्का शरीर बालोंत घनपको ऊँचईका
था; उनके लुगका लाञ्छन था और पैरोंत लंबेको लो कमकी हुई करलौ
कान्ति थी, जिनको उपमा तंगों अगतने नही हो सकता । भगवान्का
अन्नसे हो चारों अतिशय उत्पन्न हुए थे, जो न्यारह कमके स्वरूपसे
उत्पन्न हुए थे । बाय ही उच्चोत अतिशय देवोंके किये हुए उत्पन्न हुए
थे । इस प्रकार सिद्धान्तमें बड़े हुए वर्तमान अतिशय सब जिनेश्वरोंके
होते हैं तथा तंगों अगतकों प्रभुता प्रकट करनेवाले उत्पन्न अगतक-
वृक्ष आदि अठ प्रातिहार्य भी होते हैं ।

धर्मशान्तिनाथ जिनेश्वर पचहत्तर हजार वर्ष गृहवास्तने रहे, एक वर्ष
उपस्थ अवस्थानमें रहे और एक वर्ष कम दवांत हजार वर्ष केवल-स्थान-

का पालन करते रहे। सब मिलाकर भगवान् की एक लाख वर्षों की आयु हुई। अन्तमें जगद्गुरु, अपना निर्वाणकाल समीप भाषा जान, समीप-शिखर-पर्यंतके ऊपर आरुढ़ हुए। इसी समय स्वामीके निर्वाणका समय समीप जान, 'सब देवेन्द्र भी वहाँ आये और उन्होंने मनोहर समयसरणीकी रचना की। उसी समयसरणीमें बैठकर जिनेश्वरने अन्तिम देशना दी। उसमें उन्होंने सब पदार्थोंकी अनित्यता प्रमाणित की। भगवान् ने भव्य प्राणियोंको लक्ष्यकर कहा,—'हे मध्य-जीवों! इस मनुष्य भवमें ऐसा काय करना चाहिये, जिससे इस असार संसारको छोड़कर मुक्तिपद प्राप्त किया जा सके।' इसी समय भी जिनेश्वरके चरणोंमें प्रणाम कर, प्रथम मण्डलमें पूछा,—'हे स्वामि! सिद्धिस्थान किस प्रकारका होता है, यह कहिये।' प्रभुने कहा,—

'सिद्ध-भूमि (सिद्धशिला) मोतीके द्वार, जलकी बूँद और चन्द्रमाकी किरणोंकी तरह उज्ज्वल, पैतालीस लाख योजनके विस्तारवाली (छप्पी, चौड़ी और गोल) श्वेतदंगकी है और उसका संस्मान झुले हुए छत्रकी तरह है। यह समग्र लोकोंके अग्रभागमें रहती है; मध्यभागमें भाठ योजन मोटी है; अनुक्रमसे पतली होती हुई अन्तभागमें सबकी तरह पतली हो गयी है। उसके ऊपर एक योजन लोकान्त है। उस अन्तिम योजनके अन्तिम कोशके छठे भागमें अनन्त सुखोंसे युक्त सिद्ध रहते हैं। वहाँ रहनेवाले जीवोंको जन्म, जरा, मृत्यु, रोग, शोक आदि उपद्रव तथा कषाय, धुपा और तुषा आदि नहीं व्यापते। वहाँ जो सुख मिलता है, उसकी कोई उपमा नहीं दी जा सकती। तो भी मुग्धजनोके समझनेके लिये उपमा दी जा सकती है। यह इस प्रकार है—

धी साकेतपुर नामक नगरमें शत्रुमर्दन नामक राजा राज्य करते थे। उन्होंने एक दिन विपरीत शिक्षावाले भक्ष्यपर सवारों की, जो उन्हें एक पड़े भयङ्कर घनमें ले गया। वहाँ थके और व्यास होनेके कारण राजा, मूर्च्छा आ आनेके कारण पृथ्वीपर गिर पड़े पासके ही पर्वत पर

भीलोंकी बस्ती थी । ये बन्धु-मूलक खानेवाले थे और गृहोंकी छालके
 पञ्च पदमने थे । सिंहातलकी ही ये अपना आसन और शय्या समझते
 थे । इस प्रकार हाँसे हुए ये भील अपनेकी अत्यन्त सुष्णी मानते थे
 और बड़ा करते थे, कि—“जोग जो भीलोंकी रहन-सहनकी अच्छी
 बतलाते हैं, यह कुछ असत्य नहीं है, क्योंकि उन्हें अपनेका पाना आ-
 सानाँने मिल जाता है, पानेके लिये कुछ परिश्रम नहीं करना पड़ता
 और सदा अपनी प्रियाके पास ही रहना होता है ।” इन्हीं भीलोंमेंसे
 कोई एक भील भूमता-किरता राजाके पास आ पहुँचा । भलद्वारोंसे
 यह पदप्रान कर, कि यह कोई राजा है, उसने अपने मनमें
 सोचा,—“अवश्यही यह कोई राजा मालूम पड़ता है और व्याससे व्या-
 सुल होकर गिर पड़ा है । यह अवश्यही पानाँके पिता भर जायेगा ।
 इसके मरनेसे सारी पृथ्वी स्यामो-मून्य हो जायेगी, इसलिये इसे पानी
 पिला कर जिला देना ही उचित है ।” ऐसा विचारकर उसने पत्थीका
 दोना बनाकर उसीमें जलाशयसे पानी भरकर राजाको ला पिलाया,
 जिससे ये स्वस्थ हो गये । इसके बाद होशमें आये हुए राजा मन-ही-
 मन उसका बड़ा उपकार मानते हुए उसके साथ यात्रे करने लगे । इसी
 समय उनके पीछे-पीछे आते हुए सैनिक भी वहाँ आ पहुँचे । सैनिकोंने
 राजाके आगे सुन्दर लड्डू और शीतल जल रथ दिया । राजाने उसमेंसे
 मोदक आदि निफाल कर पहले उस भीलकी खानेके लिये दिया, इसके
 बाद सुपासनपर बैठ अपने उपकारी भीलके साथ-साथ राजा अपने
 नगरमें आये । वहाँ पहुँच, उस भीलका खान करा, मनोहर वस्त्र पहना,
 भलद्वारोंसे सुसज्जितकर, चन्दनादिका विलेपन कर, दाल और भात
 आदि उत्तम भोजन खिलाकर राजाने उसे तेरह गुणोंवाला ताम्बूल उसे
 खानेको दिया । इसके बाद यह राजाकी आशसे सुन्दर महलमें मनोहर
 शय्यापर सोया, प्रसन्न राजाने उसकी सारी वस्त्रिता दूर की । इस
 प्रकार उस भीलकी बड़ा सुख मिला, तो भी वह अपने जङ्गलकी नहीं
 भूला । कहा भी है, कि—

अथ तदा शिरसां ध्यात्वा तदा शिरसां ध्यात्वा तदा शिरसां ध्यात्वा

अथ तदा शिरसां ध्यात्वा तदा शिरसां ध्यात्वा तदा शिरसां ध्यात्वा

अथ तदा शिरसां ध्यात्वा तदा शिरसां ध्यात्वा तदा शिरसां ध्यात्वा

और सज्जनोकी गोष्ठी—ये पाँचों चीज़ें दुःखमें ही छोड़ी जाती हैं—

अर्थात् बड़ी मुरिक्कासे छूटती या भूलती हैं।”

इसी तरह उस मीलकी बनका यह स्वयम्भू विहार और अपनी ली तथा परिवार विस्मृत नहीं होते थे, क्योंकि यदि जैट नन्दन-बनमें भी जा पहुँचे और कंकलि-वृक्षके पत्तियोंका भ्रमण करे, तो भी उसे अपनी मकमूमिकी याद बनी रहती है। इसी तरह उस मीलकी मनमें निरन्तर अपने स्थानादिका स्मरण बना रहता था, पर चूँकि उसके पास कदा सिपाहियोंका पहरा रहता था, इसीलिए वह अपने घर नहीं आ सका और कुछ दिनों तक वहीं पड़ा रहा। एक दिन वर्षा ऋतुमें मैदानोंकी ठण्ठ और चिड़लीकी कड़क सुन, उसे विरह सताने लगा। कहा भी है, कि—

“मेघपङ्क्तौ विदुःशिरसां केकिर्ना स्वरा ।

शुक्लस्य विरहाचांशमर्क्यो यमरवद्वत् ॥ ८ ॥”

अर्थात्—“मेघकी गर्जना, चिड़लीकी चमक और मोरकी शोर—

इनमेंसे प्रत्येक यमराजके दण्डकी तरह विद्योगीके लिये दुःस्वप्न होता है।”

उस समय उस विद्योग-भ्याकुल मीलने अपने मनमें सोचा,—“यदि मैं इन यमराजद्वारोंको यहाँसे लेता आऊँगा, तो पीछे मेरी कोख होने लगी, इसलिये मुझे यहाँसे नज़ा हो कर देना चाहिये।” ऐसा विचार कर, यमराजद्वार उतार, किसी तरह पहरेदारोंकी आँखें बचा, वह रातके समय राजमन्दिरसे बाहर निकला और धीरे-धीरे अपने जानको बचा गया। उस समय उसका बड़ा दुःख रूप देख, उसके परिवारके लोगोंने धाम्ध्यके साथ उससे पूछा,—“अरे! तू क्यों है?” उसने कहा,—“मैं तुम्हारा कुटुम्ब हूँ।” यह सुन, उसके परिवारवालोंने उसे पहचान कर पूछा,—“इतने दिन गुप्त कहाँ रहे? तुम्हारे शरीरकी काबि

ऐसी क्योंकर हो गयी है ?" इसके उत्तरमें उस भीलने अपना सारा हाल उनसे कह सुनाया और भोजन, वस्त्राभूषणका तथा शय्या आदिका जैसा सुख उसने अनुभव किया था, वह भी उन्हें बतलाया । भीलोंने उससे कहा,—“तुमने वहाँ जैसा सुख अनुभव किया था, वह दृष्टान्त सहित हमें बतलाओ ।” यह सुन, उसने उनकी जानी हुई चीज़ोंके साथ उपमा देते हुए कहा,—“स्वादिए कन्द और फलोंके समान लड्डू में खाया करता था । जैसे यहाँ हम लोग नीवार खाते हैं, वैसे वहाँ दाल-मात आदि खाया करता था । गुन्द्रीके पत्तोंकी तरह नागरयेल-पान मुझे खानेको मिलते थे । शाल्मलीवृक्षके चूर्णके समान सुपारीके चूर्णको मैं खाता था । चल्कलके समान मनोहर वस्त्र पहनता था । पुष्पोंकी मालाके समान गहने पहनता था । छिद्र-रहित गुफाके समान मन्दिरमें रहता था और रिक्तातलके समान विशाल शय्यापर सोया करता था ।” इस प्रकार उस भीलने उत्तमोत्तम पदार्थोंकी अन्य वस्तुओंके साथ उपमा देते हुए उन्हें अपने पेशो आरामका हाल कह सुनाया । इसी तरह मैं भी संसारमें रहने वाले जीवोंकी सिद्धि-सुखका वर्णन इस लोकमें मिलने वाली वस्तुओंके साथ तुलना करके कह सुनाता हूँ । जो सुख काम-भोगसे उत्पन्न होता है और जो सुख महान् देवलोकमें होता है, उससे अनन्तगुण अधिक सुख सिद्धोंको होता है और वह शाम्भत (अक्षय) होता है । भेद केवल इतना ही है, कि संसारका सुख पौंडगलिक और विनाशी है तथा सिद्धोंका सुख अपौंडगलिक (आत्मिक) अविनाशी (शाम्भत) है ।”

इतनी बातें कह, श्री शान्तिनाथ भगवान् उस स्थानसे उठकर उसी पर्वतके एक ध्येष्ठ शिखरपर चढ़ गये । वहाँ नौ सौ केवलियोंके साथ स्वामीने महोने भरका अनशन किया । उसी समय सभी सुरेन्द्र परिवार सहित, अत्यन्त प्रीति और भक्तिके साथ, उगनाथकी सेवा करने लगे । अन्तमें ज्येष्ठ मासकी कृष्ण चतुर्दशीके दिन, जब चन्द्रमा भरणी-नक्षत्रमें था, तब शुकृध्यानके बाँधे पदका ध्यान करते हुए स्वामीने मोक्ष-पद

प्राप्त किया। तब सभी सुरेन्द्र, अपने-अपने परिवारके साथ, धीशान्ति-
नाथ महाप्रभुके निर्याणका वृत्तान्त-ज्ञान, शोकसे अभुपात करने लगे
और प्रभुके गुणोंका स्मरण करते हुए उत्तर-धैर्यके रूपमें पृथ्वीपर
भाये तथा विलाप करने लगे,—“हा नाथ ! हे सत्येह-रूपी मन्त्रकारकी
मृत्यु करनेमें सूर्यके समान शान्तिनाथ मगधान् ! हमें स्थायी-रहित करके
तुम कहाँ चले गये ? हे नाथ ! अब तुम्हारे बिना हमें अपनी-अपनी
भावामें सबकी समझमें आने योग्य और सब जन्तुओंको हर्ष देनेवाली
देवता कौन सुनायेगा ? लोकको पीड़ा देनेवाले दुर्मिष्ट, बाढ़ और महा-
मारी भादि-उपद्रवोंकी अब किसके प्रभावसे शान्ति होगी ? तथा हे
स्वामी ! भयना देख-भय-सम्बन्धी कार्य छोड़, पृथ्वी-तल पर आकर अब
हम किसकी सेवा करेंगे ?” इस प्रकार विलाप कर सब रन्ध्रोंने हीरसा-
गरके जलसे स्वामीके शरीर-स्नान कर, नमून-यनसे मँगाये हुए हरि-
चन्दनके सुगन्धित काष्ठोंके प्रिलकर उसका भाग्यमन्त्र शरीरपर मन्त्रि-
पूर्वक छेककर, प्रभुके मुँहमें कर्पूरका घूर्ण डाला और देव-गुण्य वस्त्रों
उन्के शरीरको ढँक दिया। इसके बाद कृष्णगादकी सुगन्धले सब
निशामोंको धासित कर, मन्दार और पारिजात भादिके पुष्पोंसे प्रभुकी
पूजा कर, रखौंझड़ीभेठ शिविकामें उनके शरीरको फाँटपा। इसके बाद
नेत्रुत्प-काँष्ममें चन्दन काष्ठकी चिता बना, वे उस शिविकाको उसके
पास ले भाये और इन्के उठाकर चितामें डाल दिया। अन्य वैश्वानर
देवोंने अन्य मुनांश्वरोंका मन्त्रकार-कार्य भी उसी प्रकार किया। इसके
बाद मन्त्रिदुम्भारदेवोंने पूर्वकी ओर मुँह किये हुए उस चितामें अग्नि डाली
और वायुदुम्भार देवाने इस चिता कर मन्त्रि प्रज्वलित कर दी। इसके
बाद जब मन्त्रिदुम्भार शरीरके अधर-भास इन्ध हो गये, तब मन्त्रिदुम्भार
देवाने सुगन्धित और शोणित जलकी वर्षा कर, उस चिताग्रिके जल
कर दिया। इसके बाद जगन्नाथकी मन्त्रिसे प्रेरित होकर उनकी जग-
का शक्तिवा हाथ सुवर्णरत्न लगे, शीशकी दाहिनी हाथ चन्द्ररत्न लगे,
बायली हाथ ऐश्वर्यरत्न लगे और शीशकी बायी हाथ चन्द्ररत्न

ले ली । चाक्रीके भट्टाईस दाँत अन्य भट्टाईस इन्द्रोंके लिये । अन्य देवोंने भगवान्‌के शरीरकी हड्डियाँ ले लीं और बिद्याधरों तथा मनुष्योंने सब उपद्रवोंको शान्तिके लिये भगवान्‌की चिता-भस्म ले ली । इस प्रकार देव-न्द्रोंने जिनेश्वरके शरीरका संस्कार कर, उसी स्थानपर सुवर्ण-रत्नमय श्रेष्ठ स्तम्भ बना, उसी पर प्रभुकी सुवर्णमयी प्रतिमा स्थापित की और भक्तिके साथ उसकी पूजा की । इसके बाद नन्दोश्वर-द्वीपमें जा, वहाँकी यात्राकर, सभी सुर-असुर श्रीशान्तिनाथ परमात्माका हृदयमें ध्यान करते हुए अपने-अपने स्थानको चले गये ।

• भगवान् चक्रायुध भी अनेक साधुओंके साथ भव्य जीवोंके प्रतियोध देते हुए पृथ्वीपर विचरण करने लगे । उन्होंने भी कुछ काल व्यतीत होनेपर घाती-कर्मोंका क्षय कर, केवल ज्ञान प्राप्त किया । तदनन्तर देवेन्द्रोंसे पूजित होते हुए वे भी भव्य जीवोंके अनेक संशयोंको दूर करने लगे ।

इस भरत क्षेत्रके मध्य ऋण्डमें देवोंसे पूजित और जगत्‌में विख्यात कोटिशिला नामका एक उत्तम तीर्थ है । यहाँ बहुतरे केवलियोंके साथ पुण्यवान् धीचक्रायुध गणधर पधारे और वहाँ अनशन कर मोक्षको प्राप्त हुए । उस शिलाको पहले धीचक्रायुध गणधरने ही पवित्र किया । उनके बाद उस शिलापर कालक्रमसे करोड़ों मुनियोंने सिद्धिपद प्राप्त किया । उसके विषयमें कहा जाता है, कि—

“कोटिशिला तीर्थमें श्रीशान्तिनाथके प्रथम गणधरके सिद्ध होनेके बाद करोड़ों साधु सिद्ध हुए हैं । कुण्डुनाथके तीर्थमें भी पापको नाश करनेवाले करोड़ों साधु उस शिलातलपर सिद्ध हुए हैं । धीमल्लिनाथके तीर्थमें, मतोंसे शोभित होनेवाले छः करोड़ केवलो वहाँ निर्वाणको प्राप्त हुए हैं । धीमुनिसुवन स्वामीके प्रसिद्ध तीर्थमें तीन करोड़ साधुओंने वहाँ ब्रह्मपद प्राप्त किया है । नमिजिनके तीर्थमें विरुद्ध क्रियावाले एक करोड़ साधु-महात्मा सिद्ध हुए हैं । इसी प्रकार समय समयपर वहाँ बहुतसे साधु सिद्ध हुए हैं ।” कर्त्ता कहते हैं, कि वह

सब में से इस प्रथमों नहीं लिखा । जिन तीर्थद्वारों के तीर्थमें कमसे कम पूरे एक करोड़ साधु निरुद्ध हुए हैं, उन्हींका हाल यही लिखा है । इसीसे इसे कोटिशिखा कहते हैं । इस कोटिशिखा तीर्थकी निरन्तर अनेक कारण—गुनि, निरुद्ध, पक्ष, गुर और भगुरादि मन्त्रि-पूर्वक घट्टना करते हैं ।

इस प्रथमों में धीरान्तिनाथ प्रभुके चारहों भाषोंका हाल लिखा है, धीरान्तिनाथ चारहों प्रतीकी यात्रा काया सहित कतलायी है और प्रथम गणेशार नमस्कारपुत्रका दिया हुआ व्याख्यान भी लिख दिया है । इस प्रकार धीरान्तिनाथ जिनेश्वरका समग्र चरित्र मैंने वर्णन कर दिया ।

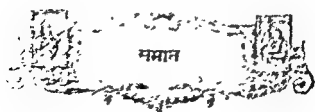
“वन्द्योत्तमोऽयं स्मरन्तु नाम्नि, शिरो वक्ष्यामि गुणान् नाम्नि ।

एगोऽन्तरात्तु कनकम् काम्नि, शिरो वक्ष्यामि स स्तोत्रम् नाम्नि ॥१॥”

अर्थात्—“जिनके स्मरणसे सारे जगत् नष्ट होने हैं, जिनके गुण सारे विश्व में भी नहीं समाने, जिनके भुगण लाभ्यन्त है, और जिनके शरीरों में काम्नि गुणोंके समान हैं, वे भी शान्तिनाथ परमात्मा भी सबके शरीरों में शान्ति कर । तद्वन्तु ।

॥१॥ ॥१॥ ॥१॥ ॥१॥ ॥१॥ ॥१॥ ॥१॥ ॥१॥ ॥१॥

॥१॥ ॥१॥ ॥१॥ ॥१॥ ॥१॥ ॥१॥ ॥१॥ ॥१॥



आदिनाथ-चरित्र

इस पुस्तकमें पहले तीर्थङ्कर श्रीआदि-
नाथ स्वामीका आदर्श एवं शिक्षाप्रद जीवन-
चरित्र दिया गया है। पुस्तकके भीतर नाना
भावोंके सतरह चित्र दिये गये हैं। जिनसे
भगवानका वह आदर्श जावन अपनी आंखोंके
सामने दीख आता है। भाषा बड़ीही सरल
एवं रोचक है। कथानुयोगका विषय भरा हुआ
है; इसलिये पढ़ना आरंभ करने के बाद पुस्तक
को छोड़ते नहीं बनती। इसकी एक-एक कथा
बड़ीही शिक्षाप्रद एवं रोचक है। इसके चित्र
अत्यन्त दर्शनीय हैं। मूल्य सुनहरी रेशमी
जिल्द ५) अजिल्द ४)।

मिलनेका पता—

पंडित काशीनाथ जैन

मुद्रक, प्रकाशक और पुस्तक विक्रेता

२०३ हरिनन्दन रोड, कच्छला ।

सय मैंने इस ग्रन्थमें नहीं लिखा । जिन तीर्थदुरके तीर्थमें कमसे कम पूरे एक करोड़ साधु सिद्ध हुए हैं, उन्हींका हाल यहाँ लिखा है । इसीसे इसे कोटिशिला कहते हैं । इस कोटिशिला तीर्थकी निरन्तर बनेक चारण-मुनि, सिद्ध, यक्ष, सुर और असुरादि भक्ति-पूर्वक वन्दना करते हैं ।

इस ग्रन्थमें मैंने श्रीशान्तिनाथ प्रभुके बारहों भायोंका हाल लिखा है, ध्रावकीके बारहों प्रतीकी बात कथा सहित बतलायी है और प्रथम गणधार नकायुधका दिया हुआ व्याख्यान भी लिख दिया है । इस प्रकार श्रीशान्तिनाथ जिनेश्वरका समग्र चरित्र मैंने वर्णन कर दिया ।

“यस्योपसर्गाः स्मरन्धनं यान्ति, विरे यदीयात्र गुणा न यान्ति ।

मृगांश्चतुर्मा कनकस्य कान्तिः, मेघस्य यान्ति स करोतु यान्तिः ॥१॥”

अर्थात्—‘जिनके स्मरणसे सारे उपसर्ग नष्ट होते हैं, जिनके गुण सारे विश्वमें भी नहीं समाते, जिनके मृगका लाम्बन है, और जिनके शरीरकी कान्ति सुवर्णके समान है, वे श्री शान्तिनाथ परमात्मा श्री संपके उपद्रवोंकी शान्ति करें । तथास्तु ।

ACCARCHAND BHAIRODAS SETHA
JAIN LIBRARY:
BIKANER, RAJPUTANA.



हमारी हिन्दी जैन साहित्यकी उत्तमोत्तम सचित्र पुस्तकें ।

			साजिस्	अजिस् ।
आदिनाथ-चरित्र	५)	४
शान्तिनाथ-चरित्र	५)	४)
शुक्रराजकुमार	१)
नलदम्पन्ती	✓	III)
रतिसार कुमार		III)
छदशंन सेठ	II)
सती चन्दनबासा	II)
कवचन्ता सेठ		II)
सती धर-चन्दरी	II)
अभ्यात्म अनुमः वागप्रकाश अचित्र		.	४।)	१०)
द्रव्यानुभव रत्नाकर	११)
स्वाध्याय अनुभव रत्नाकर	१३)
चंपक सेठ	सचित्र	छप रहा है ।		
उत्तमकुमार चरित्र	"	"		
पर्युषण पूर्व माहात्म्य	"	"		
रत्नसार चरित्र	"	"		

मिलनेका पता—परिचित काशीनाथ जैन

मुद्रक, प्रकाशक और पुस्तक विक्रेता

२०२ इण्डियन रोड, कलकत्ता ।

